CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कान्द-आगम-तन्त्र

लेखक
प्रो. शीतलाप्रसाद पाण्डेय

सम्पादक
डॉ. योगेशप्रसाद पाण्डेय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कान्द-आगम-तन्त्र

लेखक
प्रोफेसर शीतलाप्रसाद पाण्डेय
आचार्य एवम् अध्यक्ष
धर्मागम-विभाग,
संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान-सङ्काय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - 221005

सम्पादक
डॉ. योगेशप्रसाद पाण्डेय
पूर्व अनुसन्धाता,
वैदिक-दर्शन-विभाग,
संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान-सङ्काय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - 221005

प्रकाशक
प्रकाशन विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - २२१००५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ISBN : 81-85305-01-10

प्रकाशक:—
प्रकाशन विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी - २२१००५

●

© सर्वाधिकार लेखक

●

प्रकाशन वर्ष : २०२४

●

प्रथम संस्करण : २०० प्रतियाँ

●

मूल्य : ३५०.०० रुपये

●

सचलदूरभाष : 9452823899

●

मुद्रक
दी महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी
मो. नं. : 8318068717

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राष्ट्रपति पुरस्कृत
आचार्य विद्याभास्कर शास्त्री
डी.लिट्. (संस्कृत), पीएच.डी. (संस्कृत-हिन्दी)
शास्त्राचार्य (एवार), साहित्यरत्न (काशी)

निवास- 'शतायनम्' 57-ए, बैजालीनगर
इन्दौर- 452009 (म.प्र.)
मोबाईल- 94250-72151
ई-मेल- pratapbhaskar@gmail.com

दिनांक- _____

स्कान्दागमीया शुभतन्त्रविद्या
लोके प्रवृत्ता कथमित्यशेषम्।
व्युत्पत्तिपूर्णं प्रतिपाद्य पश्चात्
स्कान्दागमस्यास्ति च तत्त्वचर्चा।।
चक्रे ततो मन्त्रविचारणापि
सन्मूर्तिजा दिव्यकलाविलासः।
द्रव्याणि मूर्तीः प्रविधानहेतौ
संवर्ण्य मानं प्रतिमार्थमुक्तम्।।
प्रासादलक्षणमथालयकल्पनं वै
निर्माणरीतिरिह चोल्लसिता विभाति।
संकल्पितात्र विमला भगवत्प्रतिष्ठा
वृत्तिः पुनः पुलकितोत्सवपद्धतीनाम्।।
ख्यातस्ततः संस्नपनक्रमश्च
दीक्षाविधिः प्रोल्लसति क्रमेण।
प्रायः सुचित्तस्य विधानमुक्त्वा
ग्रन्थं सुधीः संवृणुते यथोक्तम्।।
श्रीशीतलाया विमलः प्रसादः
पाण्डेयवंश्यः शुभतन्त्रविद्याम्।
तेने मुदा लोकहिताय मन्ये
स्कान्दागमार्थं शुभकामना मे।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राक्कथन

अति प्राचीन काल से ही काशी को भारतीय चिन्तन तथा संस्कृति का साकार प्रतीक माना जाता है। निगमागमपुराणादि समस्त भारतीय विद्याओं का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र होने का गौरव भी काशी नगरी को प्राप्त है। आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश काशी से ही फैलता रहा है। मान्यता है कि महर्षि वेदव्यास जी ने अट्ठारह पुराणों की रचना काशी में रहकर ही की। उनका निवास स्थान ही आज व्यासकाशी के नाम से प्रसिद्ध है।

'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' का उद्घोष है कि निगम का प्रमाण और आगम का अनुष्ठान मनुष्य के आत्मिक उन्नयन के लिए आवश्यक है। मनुष्य के चतुर्दिक् विकास का, व्यष्टि से समष्टि के बोध का, खण्ड से अखण्ड का, सत् से भूमा तक पहुँचने का, ससीम से असीम होने का। शङ्कराचार्य का कहना है कि 'चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्'। विज्ञानभैरव की उक्ति है-

मानसं चेतना शक्तिरात्मा चेति चतुष्टयम्।
यथा प्रिये परिक्षीणं तथा तद्भैरवं वपुः।।[1]

अर्थात् संकल्पनात्मक मन, चेतनात्मक बुद्धि, प्राणनात्मक शक्ति तथा इनसे उपहित परिमित प्रमाता- ये जब चारों जब सब तरफ से विलीन हो जाते हैं तब वह भैरव-स्वरूप हो जाता है। अर्थात् इसी जन्म में स्वरूप-लाभ कर लेता है। वस्तुतः शक्ति भण्डार की चाबी तन्त्र और योगशास्त्र के पास सुरक्षित है।

स्कन्द का सर्व प्राचीन प्रामाणिक उल्लेख बौधायनधर्मसूत्र में हुआ है। यहाँ इनके पाँच नाम प्राप्त होते हैं- सुब्रह्मण्य, षण्मुढा, विशाख, जयन्त तथा महासेन।[2] दक्षिण में प्रचलित परम्परा के अनुसार शिव ने स्कन्द और नन्दी को शैवसिद्धान्त का ज्ञान दिया। इनके द्वारा दो भिन्न गुरु परम्परायें हो गयी, जिन्हें

---

1. विज्ञानभैरव - 135.
2. बौधायनधर्मसूत्र, 2/5/8.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कन्द-परम्परा तथा नन्दी-परम्परा कहा गया।[1] तिरुन्तिरम् में प्रथम बार 'चण्डमुगम'-'षण्मुख' को शिव का रूप बतात हुए कहा गया है- 'पिता परमेश्वर के अग्निमय नेत्र से निर्गत हुए छः स्फुलिङ्ग-जन्म हुआ, षण्मुख का स्कन्द-स्वामी का, पिता-पुत्र शिव तथा स्कन्द अभिरूप में स्थित हैं, पिता-पुत्र के एकाकार समझ लो।[2]

आजकल षण्मुखकल्प नामक एक ग्रन्थ प्राप्य है।[3] आज से सौ वर्ष पूर्व श्री आर.जी. भण्डारकर अपने प्रसिद्ध पुस्तक "वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर सिस्टम्स' में तान्त्रिक संस्कृति एक परिचय दिया था। प्रस्तुत कृति में वैष्णव, शैव तथा शाक्त का कुछ विस्तार के साथ ही गाणपत्य, सौर तथा स्कान्द परम्परा का कुछ पन्नों में प्रथम परिंचय कराया था। मेरी जानकारी में प्रस्तुत प्रयत्न के बाद तन्त्रागमशास्त्र पाञ्चरात्र शैवशास्त्र, बौद्ध आदि परम्पराओं स्वतन्त्र ग्रन्थ अवश्य लिखे गये, किन्तु स्कान्दागम परम्परा की कोई स्वतन्त्र कृति नहीं है। वर्तमान समय में भारतीय धर्मों पर वैदिक विधान की तुलना में तान्त्रिक अनुष्ठान का अधिक गहरा प्रभाव है। तन्त्रशास्त्र में समानरूप से मानवमात्र का अधिकार है- वैष्णव तथा शैव दोनों परम्पराओं में निर्दिष्ट है-

वैदिकं ब्राह्मणानां तु राज्ञां वैदिकतान्त्रिकम्।
तान्त्रिकं वैश्यशूद्राणां सर्वेषां तान्त्रिकं तु वा।।[5]

वस्तुतः धर्म-अधर्म उभयपक्षों की सुस्पष्ट निर्णय आगमशास्त्र ही दे सकता है-

आसमन्ताद् गमयति धर्माधर्मौ परं पदम्।
आगमस्तेन कथितः इति वेदविदो विदुः।।[6]

---

1. शैवपरिभाषा, प्रिफेस
2. तिरुमन्तिरम्, 2016.
3. संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ-265, उद्धृत, दिव्य प्रतीक, आचार्य कल्याणमल लोढा प्रकाशित, विश्वविद्यालय वाग्धारा, उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान विश्वविद्यालय, गाँधी-विद्या मन्दिर, सरदारशहर, राजस्थान, सन् 2007.
4. इण्डो आर्यन रिसर्च ग्रन्थमाला, 1913.
5. (क) सनत्कुमार संहिता,, ब्रह्मरात्र 4/69.
   (ख) विष्वक्सेनसंहिता, 39/316, (ग) शैवपरिभाषा मञ्जरी, 13/155.
6. आगमसुषमा, पृष्ठ-8, तिरुपति, 2005 ई.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदिकाव्य रामायण में भगवान् स्कन्द के जन्म का विवरण तो उपलब्ध है ही वहीं श्रीराम ने अगस्त्याश्रम में प्रवेश करते हुए विभिन्न देव स्थानों के पृथक्-पृथक् स्थानों में कार्तिकेय का पृथक् स्थान भी देखा था-

स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च।
स्थानं च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च।।
कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति।[1]

षण्मतस्थापन आचार्य शङ्कर का एक महत्वपूर्ण कार्य था। इस बात की अनुभूति होनी चाहिए कि शङ्कराचार्य केवल एक सिद्धान्तवादी नहीं थे। सही अर्थ में वे एक शिक्षक थे, एक गुरु थे जिन्होंने साधक की विचार-शक्ति को ही प्रबुद्ध नहीं किया, अपितु उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी उन्नत किया। भगवान् के अर्चन-पूजन के सन्दर्भ में आचार्य शङ्कर ने उस समय प्रचलित वेद सम्मत छः मतों को चुना। ये मत थे- शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य और कौमार। इन मतों के अन्तर्गत भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय थे। भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ थीं। उनमें आन्तरिक विरोध और विद्वेष था। आचार्य शङ्कर ने इन मतों और उनके विविध संप्रदायों में व्याप्त विरोधी तत्त्वों को दूर कर उन्हें समन्वित और परिष्कृत किया। तदनुसार शिव, विष्णु, अम्बिका, सूर्य, गणेश और सुब्रह्मण्य इन छः देवताओं की पूजा को मान्यता देकर वैदिकधर्मावलम्बियों में सामंजस्य स्थापित किया। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देश में सद्भाव एवं सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का सृजन हुआ और सारा भारतीय समाज एक सूत्र में बँध गया।

दक्षिण भारत में भगवान् सुब्रह्मण्य प्रत्यक्ष देव माने जाते हैं। यहाँ प्रत्येक गृह में भगवान् सुब्रह्मण्य की पूजा होती है। सुब्रह्मण्य का अवतार दैत्य वंश में उत्पन्न शूरपद्मासुर तथा उसके दोनों भाई सिंहमुखामुर एवं तारकासुर के वध के लिए हुआ था। सुब्रह्मण्य क्षेत्रों में छः प्रमुख माने जाते हैं। ये हैं- तिरुच्चेन्दूर, तिरुत्तनि, स्वामिमलै, पळनि, अळगरकोविल तथा कादिर्कामम्। कादिर्कामम् श्रीलंका में है। वहाँ जाना वर्तमान समय में संभव नहीं है, अतः उसके स्थान पर तिरुप्परकुंड्रम् को छठा स्थान मान लिया गया है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन कर नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञानपरम्परा पर विशेष बल दिया जा रहा है। उसका आधार तन्त्रागमीय/जातीय संस्कृति है। इसमें ही राष्ट्रीय अस्मिता है। राष्ट्र-रक्षा हेतु सेना में अग्निपथ योजना के अन्तर्गत अग्निवीरों की नई भर्ती योजना तथा काशी की धरती पर तमिलसमागम - ये तीनों प्रकल्पों के मूल में भगवान् स्कन्द ही हैं। वस्तुतः स्वामी

---

1. अरण्यकाण्ड, 12/20-2.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्तिकेय सेनाधिप हैं। सैन्यशक्ति की प्रतिष्ठा, विजय, व्यवस्था, अनुपालन इनकी कृपा से सम्पन्न होता है। ये इस शक्ति के अधिदेव हैं। धनुर्वेद पर इनकी एक संहिता का नाम मिलता है, किन्तु ग्रन्थ अप्राप्य है। ये यह भी द्योतित करते हैं कि समाज की विभिन्न जीवन प्रक्रियाओं तथा सामाजिक सम्बन्धों में मानवीय अस्मिता की जो सर्जनात्मक विशिष्ट दृष्टि है एवं उसके प्रेरक उपस्करण हैं उन नैतिक आदर्शों का समवाय रूप ही संस्कृति है। यदि सांस्कृतिक उन्मेष तथा मानवीय संस्कार समाज से सम्बन्ध रखते हैं, तो साहित्य से भी, जिसे चेनिंग ने 'राष्ट्र का मस्तिष्क, चिन्तन तथा हृदय' कहा है। संस्कृति, समाज एवं साहित्य ऐसा त्रिभुज है, जिसकी रेखाएँ अखण्ड तथा अकाट्य हैं। साहित्य संस्कृति की अभिव्यक्ति है। साहित्य श्रेयस् तथा प्रेयस् का समीकरण करता है। वस्तुतः इसे ही 'सनातन इतिहास' कहा जाता है।

जब मैंने महामना के विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु प्रवेश लिया था, उस समय त्रिमूर्ति आचार्य कमलेशदत्त त्रिपाठी, डॉ. बाबूलाल मिश्र तथा डॉ. रामनिवास तिवारी ने मुझे विद्यादान दिया था, उन सभी का इस अवसर पर सश्रद्ध स्मरण-वन्दन। डॉ. ऊर्मिला शर्मा, प्रो. कृष्णकान्त शर्मा तथा डॉ. अमलधारी सिंह जी की प्रेरणा कार्य सम्पन्न कराने में योगदान के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

'आशीर्मय-अभिमत' के प्रदाता पूज्य आचार्य मिथिला प्रसाद त्रिपाठी के चरणों में सश्रद्ध प्रणमाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

जन्मदाता-जनक एवं जननी को प्रस्तुत कृति समर्पित हैं। विविध-विधि से प्राप्त होने वाले सहयोग को परिभाषित करना एक कठिन कार्य है जिनका भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवदान प्राप्त हुआ है, उन सभी के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

प्रो. शीतलाप्रसाद पाण्डेय
आचार्य एवम् अध्यक्ष,
धर्मागम-विभाग,
संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान-सङ्काय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सन् २०२४ ई.
विक्रम संवत् २०८१
आशा-सदन
गणेशपुरी कालोनी,
लेन नं. १२, म.न. २
सुसुवाही, नासिरपुर रोड,
वाराणसी - २२१०११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रम

		पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन		अ-ई
अध्याय-१.	विषय-प्रवेश : आगम-तन्त्र व्युत्पत्ति-विमर्श	१-१९
	आगमों का रचनाकाल	२०-२२
	आगमों के भेद	२२-३५
	सौरागम	२३-२७
	वैष्णवागम	२७-३१
	वैखानसागम	२८-३०
	पाञ्चरात्रागम	३०-३१
	शैवागम	३१-३२
	शाक्तागम	३२-३३
	गाणपत्यागम	३३-३५
अध्याय-२.	स्कान्द-आगम	३६-९३
अध्याय-३.	स्कान्द-तत्त्वदर्शन	९४-११३
अध्याय-४.	मन्त्र-विमर्श मन्त्र, यन्त्र एवं मुद्रा विमर्श	११४-१२२
अध्याय-५.	प्रतिमा-विज्ञान या मूर्त्तिकला	१२३-१३३
अध्याय-६.	प्रतिमोपादान-द्रव्य	१३४-१३७
अध्याय-७.	प्रतिमा-मान	१३८-१४२
अध्याय-८.	प्रासाद-लक्षण आलय-कल्पन तथा निर्माण	१४३-१५७
अध्याय-९.	भगवत्-प्रतिष्ठा	१५८-१६०
अध्याय-१०.	उत्सव	१६१-१६८
अध्याय-११.	स्नपन	१६९-१७३
अध्याय-१२.	दीक्षाविधि	१७४-१७६
अध्याय-१३.	प्रायश्चित-विधान	१७७-१७९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-१४. स्कन्द-गवेषणा-सम्बन्धी १८०-१८२
प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य
कुमारतन्त्रम्
स्कन्दशारीरकम्
कार्त्तिकेयकथार्णवम्
कुमारम्
कार्त्तिकेय-चरित-तीर्थ एवं मन्दिर
स्कान्द/कार्त्तिकेय
ऑन कार्त्तिकेय
लार्ड षण्मुख
द मेनी फेसेस ऑफ मुरुकन
सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची १८३-१९०

परिशिष्ट-
विशिष्ट शब्द सूची १९१-१९६
षष्ठीकल्पः १९७-१९८
श्रीसुब्रह्मण्यकवच प्रारम्भः ११९-२०६
श्रीसुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्रप्रारम्भः २०७-२०९
सहस्रनामस्तोत्रप्रारम्भः २१०-२२१
स्कान्द यागः २२२-२२५
श्रीसुब्रह्मण्यहृदयस्तोत्रप्रारम्भः २२६-२२९
सुब्रह्मण्य षोडशाक्षरी मन्त्रः २३०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-१

विषय-प्रवेश

आगम-तन्त्र व्युत्पत्ति-विमर्श

भारतीय चिन्तन तथा साधना के दो आधारभूत स्रोत हैं, जो निगम, आगम अथवा तन्त्र के नाम से प्रख्यात हैं। दोनों ही परम्पराओं में भक्ति, ज्ञान तथा उपासना की स्रोतस्विनी अनादि काल से अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित हो रही है और आज भी उसी से साधनालोक को नित्य नयी दिशायें प्राप्त होती हैं। महाभारत का उद्घोष है कि श्रुति-प्रतिपादित प्रमाणों का विचार तथा आगमशास्त्र में बताये हुए मङ्गलमय साधनों का अनुष्ठान करने से मनुष्य जरा-मृत्यु के भय से रहित होकर सुख से सोता है।[1]

आगम और निगम दोनों शब्दों की व्याख्यायें भारतीयशास्त्र तथा आधुनिक नृतत्त्वशास्त्र अपने-अपने ढंग से करते हैं, परन्तु शब्दावली-भेद के बावजूद निष्कर्ष बहुत कुछ समान है। शास्त्र की दृष्टि से निगम कूटस्थ ब्रह्म की शुद्ध-विद्या है और आगम अधःस्थित पृथ्वी-विद्या। यह पृथ्वी-विद्या ही प्रकृति है और नृतत्त्व की भाषा में लोकविद्या है।[2] निगम के केन्द्र में 'सूर्य' है, जो ब्रह्म का प्रतीक है और आगम के केन्द्र में 'पृथ्वी' है, जो प्रकृति अथवा लोकजीवन का प्रतीक है। व्यवहार में शुद्ध रूप में हमें निगम या आगम प्राप्त नहीं होता, जो प्राप्त होता है, वह है वस्तुतः 'निगमागम'। उपनिषदों में निगम तत्त्व अर्थात् ब्रह्मविद्या का प्राधान्य है, तो तन्त्रग्रन्थों में आगम तत्त्व अर्थात् पृथ्वीतत्त्व या लोकतत्त्व का। वस्तुतः निगम की आध्यात्मिक विद्या को विज्ञान बनाने का श्रेय आगम को है।

संस्कृत वाङ्मय में 'आगम' शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में हुआ है, किन्तु प्रतीयमान विरोधों के होते हुए भी उनमें प्रायः एकरूपता है। आगम

---

1. श्रुतिप्रमाणागममङ्गलैश्च शेते जरामृत्युभयादभीतः—शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्व-219/46.
2. द्र. चिन्मय भारत, पृ. 54.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द 'आ' उपसर्ग के साथ 'गम्' धातु से निष्पन्न है, अर्थात् 'आ समन्ताद् अर्थं गमयति इति आगमः'। इसी प्रकार 'निगम' भी 'नि' उपसर्ग के साथ गम् धातु से निष्पन्न होने के कारण 'निःशेषेण अर्थं गमयति इति निगमः' दोनों का ही अर्थ किसी ज्ञान की पूर्ण अभिव्यक्ति है। गम् धातु गत्यर्थक होने के साथ ही साथ ज्ञानार्थक भी हैं—"ये गत्यर्थाः धातवः ते ज्ञानार्थाः"।[१] 'आ' उपसर्ग का अर्थ पूर्णता है। इस प्रकार आगम का अर्थ हुआ पूर्ण ज्ञान, पवित्र ज्ञान, स्वतःस्फूर्तज्ञान, विमलज्ञान, निराकुलज्ञान, गुह्याद्गुह्यतरज्ञान, शिवज्ञान, दिव्यशास्त्र, अवबोधरूपज्ञान और सिद्धान्त आदि।[२] इस प्रकार 'आगम' वह शास्त्र है, जिसके द्वारा सभी कुछ ज्ञात हो जाता है। 'उपासकाध्ययन' में आगम शब्द को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि हेय तथा उपादेय रूप से धर्मार्थकामादि चतुर्वर्ग समाश्रय पूर्वक त्रिकालगत अर्थों का ज्ञान कराने वाली विद्या आगम है।[३]

कुल्लूकभट्ट ने मनुस्मृति की टीका में दो प्रकार की श्रुतियों का प्रतिपादन किया है। वैदिकी श्रुति तथा तान्त्रिकी श्रुति।[४] यहाँ टीकाकार ने दोनों निगम तथा आगम को श्रुतिमूलक माना है। स्वयं मनु ने श्रुति का अर्थ वेद किया है।[५] अर्थात् वेद ही श्रुति है। अतः आगम की मौलिकता वेद से ही सिद्ध हो जाती है, दोनों ही अनादि हैं और दोनों के ही कर्ता का स्मरण नहीं है।

स्वामी करपात्री जी ने 'निगम' की परिभाषा करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि "सम्प्रदायाविच्छिन्ने सति अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं निगमत्वम्"— अर्थात् जिस वाणी या ज्ञानधारा की परम्परा अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप में चली आ रही हो और जिसके कर्ता का स्मरण न हो वही निगम है।[६] कुछ संशोधन के साथ यही परिभाषा आगम के ऊपर भी चरितार्थ होती है। आगम भी अविच्छिन्न परम्परा से प्राप्त होते हैं, किन्तु इसके कर्ता के विषय

---

1. जर्नल ऑफ् कर्नाटक यूनिवर्सिटी ह्यूमनिटीज– 1970, पृ0 29.
2. "आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः।" तत्त्ववैशारदी 1-7
3. हेयोपादेयरूपेण चतुर्वर्गसमाश्रयात्। कालो भयागतानर्थान् गमयत्यागमः स्मृतः।। उपासकाध्ययन, श्लोक 100.
4. टीका कुल्लूकभट्ट मनुस्मृति 2/1.
5. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो .....। तत्रैव.
6. सन्मार्ग, आगम विशेषांक, पृ0 1.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

में विभिन्न मान्यताएँ हैं। नैयायिक सामान्य पुरुष के द्वारा वेद की संरचना को असम्भव मानते हुए उसे भी ईश्वररचित ही मानता है और पुरुष शब्द का अर्थ अलौकिक पुरुष या सर्वशक्तिमान् ईश्वर करता है।

इस प्रकार आगम तथा निगम दोनों ही परमेश्वरकृत हुए। 'ईश्वरसंहिता' में भी इसी बात का प्रतिपादन किया गया है कि आगम का मूल वेद के सदृश ही है। ईश्वरसंहिता में तो यहाँ तक कहने का प्रयास किया गया है कि वेदरूपी महान् वृक्ष का यह मूल है, ऋग् आदि इसकी शाखाएँ हैं।[1] पौष्करसंहिता' में भी इसे इतिहास, पुराण तथा वेद-वेदान्त से युक्त माना गया है।

मूल शब्द से यह नहीं समझना चाहिए कि निगम की उत्पत्ति आगम से हुई है, बल्कि यहाँ मूल का अभिप्राय वेद का क्रियात्मक रूप अभिप्रेत है अर्थात् आगम के बिना निगम का लोकोपयोगी होना या व्यवहार में आना असम्भव है। आगम परम्परा भी इस विचार से असहमत नहीं है। 'कुलार्णवतन्त्र' में कृतयुग में आचार का मूल श्रुति को बताया गया है तथा वही त्रेता में स्मृति, द्वापर में पुराण तथा कलियुग में आगम के रूप में प्रतिपादित है।[2] इससे इतना स्पष्ट है कि सिद्धान्त तथा व्यवहार या आचार दोनों ही साथ-साथ चलते हैं, क्योंकि कोरा सिद्धान्त कभी उपयोगी नहीं होता। भर्तृहरि ने आगम का बीज वेदों में ही माना है।[3] उनका कहना है कि पूर्वागमों के उच्छिन्न हो जाने पर तथा वेद में ही बीजरूप में सन्निविष्ट रहने के कारण उन्हीं के आधार पर आगमान्तरों का निबन्धन किया जाता है। अतः आगमों के प्रवाह से ही अनादिता सिद्ध हो जाती है। आगम का मौलिक अर्थ परम्परा प्राप्त ही है और परम्परा का स्रोत वेद या निगम ही है। गुरु-शिष्य परम्परा रूप से जो शिष्ट परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आती है, उसी को आगम कहते हैं। वाक्यपदीय के टीकाकार वृषभदेव ने "यो असौ शिष्टानाम् अविच्छिन्नः उपदेशः"[4] तथा 'अनादिः अगृह्यमाणकारणाचारोपदेशागमः"[5] कहकर इसी

---

1. ईश्वरसंहिता – 1-24.
2. कृते श्रुत्यक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः। द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः।। कुलार्णवतन्त्र, उद्धृत, भारतीय दर्शन, पं0 बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 664.
3. वाक्यपदीय–ब्रह्मकाण्ड - 134, टीका, पृ0 51-52.
4. वाक्यपदीय–वृषभदेव–1/27.
5. वाक्यपदीय–वृषभदेव–1/27.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात का प्रतिपादन किया है। इतना ही नहीं वाक्यपदीयकार ने यह दृढतापूर्वक प्रतिपादित किया है कि आगम के अतिरिक्त केवल तर्क से धर्म की व्यवस्था नहीं हो सकती, क्योंकि ऋषियों का ज्ञान भी आगमपूर्वक ही है।[१]

वेदों में "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति", "स्वर्गकामो यजेत", "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" आदि वाक्य मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा प्रणीत हैं। इन वाक्यों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" से लेकर "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" तक का बोध कोई भी व्यक्ति कैसे प्राप्त करे ? इसकी जिज्ञासा हो जाती है। इस जिज्ञासा को अधिक स्पष्ट रूप से "स्वर्गकामो यजेत" का 'यजेत' शब्द व्यक्त करता है। भावनाद्वय से समन्वित इस शब्द के लिए द्रव्य, देवता, मन्त्र तथा विधि की अपेक्षा होती है। ये विधियाँ भी किसी न किसी साधक ऋषि के प्रयोग-विज्ञान से सिद्ध हैं। जैसे कोई वैज्ञानिक H_2O से पानी को पहचानता है अथवा जैसे कोई विधायिका अपने द्वारा बनाये गये कानून को लागू कराने लिए नियम, उपनियम बनाती है, उसी प्रकार साधक ऋषि ने स्वानुभूत स्वर्गकामना की सत्याभिव्यक्ति के लिए द्रव्य, देवता और मन्त्र आदि का अनुभूत प्रतिपादन किया। इस प्रकार जिस भाँति मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने ब्रह्माण्ड में व्याप्त नित्य मन्त्र का साक्षात्कार किया, उसी भाँति उसके प्रयोग का अभ्यास भी किया तथा उसका प्रयोगात्मक स्वरूप स्थिर किया। मूलतः यही आगम है अर्थात् निगम सिद्धान्त पक्ष है तथा आगम उसका क्रियात्मक स्वरूप। अन्तर केवल इतना ही है कि आगम रूप दृष्ट ज्ञान का क्रियात्मक स्वरूप किसी व्यक्ति द्वारा उपस्थापित किया गया माना जाता है, जब कि निगम क्रियात्मक स्वरूप रहित दृष्ट ज्ञान की अभिव्यक्ति है।

देवसूरि ने अपने 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' में आगम की परिभाषा देते हुए बताया है कि 'आप्तवचनाद् आविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः'[२] अर्थात् किसी आप्त पुरुष द्वारा अर्थ विशेष का परिज्ञान कराने वाले ज्ञान का नाम आगम है। यहाँ आप्त पुरुष का अभिप्राय है स्वदृष्ट ज्ञान का उपदेशक, क्योंकि 'सांख्यसप्तति' की जयमङ्गला व्याख्या में यह कहा गया है कि रागद्वेष से रहित अपने कर्म में लगे हुए अजातशत्रु तथा सज्जनों द्वारा पूजित व्यक्ति को ही आप्त

---

1. न चागमादृते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते। ऋषीणामपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम्।। वा०प० 1/141
2. प्रमाणनयतत्वालोकालंकार– 4-1.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहते हैं।[१] इसमें 'स्वकर्मणाभियुक्तो' शब्द महायान बौद्ध धर्म के 'महायानार्थकोविदम्' विशेषणधारी कल्याण मित्र की भाँति है। चरकसंहिता में कहा गया है कि "जिनका सर्वविषयों में तर्करहित, निश्चयात्मक ज्ञान रहता है, जो त्रिकालदर्शी हैं,जिनकी स्मरणशक्ति कदापि नष्ट नहीं होती हो, जो रागद्वेष के वश में नहीं होते और जो पक्षपातशून्य हैं, वे ही आप्त हैं"[२] इन वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निगम का व्यवहार पक्ष ही आगम है।

माना यह गया है कि वेद अपौरुषेय हैं, जबकि आगम पौरुषेय हैं। पुरुष विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण 'ऋजु' अथवा कुटिल अनेक मार्गों से अपना लक्ष्य प्राप्त करता है[३], अत: कभी-कभी वह दृष्ट रूप में वेद के विरुद्ध भी चला जाता है, साधक निरन्तर अभ्यास से स्वयं ही समाधान करता है और इसी अवस्था में उसे विरुद्ध भी जाना पड़ता है, किन्तु आध्यात्मिक धरातल अथवा मानसिक पृष्ठभूमि में निगम तथा आगम दोनों में कोई भेद नहीं है। दोनों ही शिष्य-परम्परा से समन्वागत होते हैं। एक श्रुतिपरम्परा से प्राप्त है और दूसरा प्रयोगात्मक विधि से ।

वाराहीतन्त्र में सात लक्षणों से युक्त क्रियाओं को आगम माना गया है।[४] धर्म एवम् आध्यात्मिक ज्ञान का यह दावा होता है कि वह अनादि अथवा ईश्वर से समुद्भूत है। भारतीय परम्परा में भगवान् शंकर को समस्त विद्याओं का मूल स्रोत माना जाता है। अस्तु, आगम को अपनी त्रैकालिक सत्यता प्रतिपादित करने के लिए भगवान् के मुख से नि:सृत माना जाता है।[५]

आगम का अर्थ 'परमज्ञान' भी होता है।[६] अपने स्वरूप का ज्ञान जिस ज्ञान से होता है, उस ज्ञान को भी आगम कहते है। स्वरूप का अभिप्राय है

---

1. स्वकर्मण्यभियुक्तो यो रागद्वेषविवर्जितः। निर्वैरः पूजितः सद्भिः आप्तो ज्ञेयः स तादृशः।। सांख्यकारिका 5, टीका जयमंगला।
2. चरकसंहिता, विमानस्थान 4/4
3. रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।। शिवमहिम्नः स्तुतिः-7.
4. सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां समर्चनम्। साधनश्चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च।। षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः। सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तं त्वागमं तद्विदुर्बुधाः।। वाचस्पत्यम्, पृ0 618.
5. आगतं शिवक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजानने। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।। –सर्वोल्लासतन्त्र 1/15.
6. "आगमो ज्ञानमित्युक्तम्" आगमरहस्य, उद्धृतत्रिपुरार्णवतन्त्रभूमिका, पृ0 4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पारमेशस्वरूप से अभेद-विमर्शन।[१] स्वरूप ज्ञान का अभिप्राय है शिवोऽहं की भावना। स्वच्छन्दतन्त्र में लिखा है कि प्रत्यक्ष, अनुमान, अनुभव तथा अर्थि-प्रत्यर्थिभाव से प्रवर्तित ज्ञान ही आगम है।[२] अर्थि-प्रत्यर्थि का अभिप्राय है द्रष्टा तथा वक्ता दोनों में अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव। सभी शास्त्र शब्दात्मक हैं, क्योंकि विश्व में कोई भी ऐसा ज्ञान नहीं है, जो शब्दात्मक न हो।[३] हाँ यह निश्चित है कि सभी अनुभवात्मक ज्ञान शब्द रूप में अभिव्यक्त नहीं होते। अभिप्राय यह है कि इस अनुभूत ज्ञान का कोई न उच्चारक है और न कोई प्रतिहन्ता।[४] इस प्रकार आगम वह ज्ञान है, जो आत्मदर्शन की ओर प्रेरित करता है। डा० एच०वी०ग्लासेम्पा का यह मानना है कि संसार के सभी दृश्य पदार्थ तथा उनका स्वरूप एक पूर्णता है। इसका छोटा से छोटा भी बड़े से बड़े भाग को प्रभावित करता है, क्योंकि ये एक रहस्यमय सूत्र से संग्रथित हैं। विश्व की नित्य सत्ता इससे कभी अलग नहीं होती, तान्त्रिक दर्शन का यही मूलाधार है।[५] इससे भी यही अभिप्राय निकलता है कि विश्वात्मक सत्ता के साथ जीवात्मा का अभेद ज्ञान ही आगमिक या तान्त्रिक ज्ञान है।

आगम शब्द अपनी वैचारिक यात्रा में विविध सोपानों से होता हुआ कभी वेद, कभी शास्त्र, कभी शब्द के प्रमाणभूत तत्त्व के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है, जैसा कि विविध शास्त्रों में इस शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है। निगमागम शब्द की व्याख्यायें निरुक्त से लेकर काव्यग्रन्थों तक बिखरी पड़ी हैं।

इन विविध व्याख्यानों में 'निगम' अनादि श्रुतिपारम्पर्यात्मक 'वेद', तार्किक निगम तथा वाणिज्य की दृष्टि से संघात्मक रूप चले आते 'निगम' के

---

1. आसमन्तात् गमयति अभेदेन विमृशति पारमेशस्वरूपमिति आगमः, तत्रैव
2. गृह्यते ह्यनुमानेन प्रत्यक्षानुभवेन च। अर्थि - प्रत्यर्थिभावेन आगमेन तु लभ्यते।। स्वच्छन्दतन्त्र-4/339.
3. न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
   अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।—वाक्यपदीयम् 1/115.
4. नास्योच्चारयिता कश्चित् प्रतिहन्ता न विद्यते। स्वयमुच्चरते हंसः प्राणिनामुरसि स्थितः।। -तत्रैव 7/59
5. The Notion that the whole universe with the totality of its phenom ena forms one single whole, in which even the smallest element has an effect upon the largest, because secret threads connect the smallest item with the eternal ground of the world. This is the proper foundation of all tantric Philosophy.: H.V. Glasenappa, "Tantrismus and Schaktismus", *Ostasiatische Zeitschrist*, Vol. 22, p. 120, Berlin, 1936.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ में प्रयुक्त है।[१] दूसरी ओर 'आगम' 'आगमन' एवम् 'आगत' परम्परा के अर्थ में प्रयुक्त है।[२] अतः निष्कर्ष रूप में वह पारम्पर्य प्राप्त ज्ञान आगम है, जो गुरु-शिष्य पद से चला आया है। उस ज्ञान को निबद्ध करने वाले ग्रन्थ भी उपलक्षण से 'आगम' कहलाते हैं।[३] आचार्य रामेश्वर झा ने "समन्ताद् गमयन्नर्थमागमः परिभण्यते" कह कर यह प्रतिपादित किया है कि आगम विमर्श रूप है।[४]

'आगम' शब्द ने इन सभी उपर्युक्त प्रयोगों में भी अपनी मौलिकता बनाये रखी और दार्शनिकों ने इसे प्रमेय की सिद्धि के लिए एक सफल प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित किया। परवर्ती बौद्धों ने भी बुद्धवचन को आगम कहकर इसे प्रामाणिक माना है।[५] इस प्रकार आस्तिक तथा नास्तिक दोनों ही प्रकार के दार्शनिकों ने इसे एक ऐसे प्रबल प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित किया है, जहाँ प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणों की गति नहीं है।[६] सम्प्रदायसिद्ध अनेक विद्वानों ने इसी आधार पर इसे सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त कराने के साधन के रूप में

---

1. क. निगमाः पूर्ववणिग्वेदनिश्याध्वरवणिक्पथाः - हैमः।
   ख. न्यायमतसिद्धे पञ्चावयवन्यायमध्ये चरमावयवे निश्चयार्थे निगमशब्दप्रयोग : तर्कसंग्रहः
   ग. वाणिक्पथं पुरं वेदोनिगमाः–अमरकोशः
   घ. निगमशब्दो वेदवाची यास्केन तत्र तत्र 'निगमो भवति' इत्येवं वेदवाक्यानामवतारित्वात्। –ऋग्वेदभाष्यभूमिकायाम्।
   ङ. निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्, इति भागवते–1-3
   च. नित्यता निर्मुक्ते निखिलनिगमान्तस्तुतपदे नित्ये निगमयममापि स्तुतिमिमाम् –सौन्दर्यलहरी–100
2. "श्रुतवन्तो वयं धीराणां धीमतां वचनम्। ये आचार्या नोऽस्मभ्यं तत्कर्म च ज्ञानं च विचचक्षिरे व्याख्यातवन्तस्तेषामयमागमः पारम्पर्यागत इत्यर्थः"–ईशावास्योपनिषद्भाष्ये–10
3. क. प्रज्ञा विवेकं लभते भिन्नैरागमदर्शनैः–वाक्यपदीय 2/484 क.
   ख. आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः–रघुवंश 1/15.
   ग. न्याये चतुर्विधं प्रमाणं स्वीकृतमस्ति चतुर्थमागमप्रमाणम–तर्कसंग्रहः।
4. आन्तरं चित्स्वभावस्य शब्दनं यद्विमर्शनम्। अन्तरङ्गस्वरूपं तत् प्रत्यक्षस्यापि जीवितम्।। यद् यद् विमृश्यते तेन तत्तदेव भवेद् ध्रुवम्। आगमः स विमर्शो हि प्रोच्यते मुख्यतो बुधैः।। उपयोगितया तत्र उपचारेण कथ्यते। शब्दोऽप्यागमशब्देन विमर्शजनकत्वतः।। –सन्मार्ग, आगम विशेषांक, पृ0 60.
5. बोधिचर्यावतार 9/42 टीका प्रज्ञाकरमति।
6. प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।। तैत्ति0 भाष्यभूमिका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वीकार किया है।[१] दार्शनिक प्रस्थानों के अन्तर्गत प्रमाणों की परिगणना के प्रसंग में आगम का आप्तोपदेश के रूप में न केवल उल्लेख ही हुआ है, अपितु उसकी अनिवार्य स्वीकृति भी देखी जाती हैं। आगम की व्याख्या चार प्रकार से सम्भव है— (१) आप्तोपदेशात्मक आगम (२) अनिबद्ध-प्रसिद्धिरूप आगम (३) निबद्धप्रसिद्धिरूप आगम एवं (४) प्रतिभात्मक आगम। सामान्यजन की प्रज्ञा मलिन मान्यताओं एवं पक्षपात से संवलित होने के कारण जनता के जीवन में प्रमाण रूप से प्रतिष्ठित नहीं होती, किन्तु वक्तव्य वस्तु का जिसे निर्बाध एवं पूर्ण बोध है, उस आप्त के उपदेश की प्रामाणिकता के प्रति किसी को सन्देह नहीं होता।[२] पृथक्-पृथक् प्रसिद्धियों के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् आप्तता देखी जाती है। पाणिनि और वररुचि आदिकों की आप्तता व्याकरण में प्रसिद्ध है, किन्तु अक्षपादादिकों की नहीं। इस प्रकार ज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की आप्तता प्रसिद्ध है। यही चरणाप्तवाद या शास्त्राप्तवाद है। पुरुषाप्तवाद की व्याख्यागत उपलब्धियों को जब लोक में पूर्ण समादर प्राप्त हो जाता है, तब पुरुषाप्तवाद ही लोकाप्तवाद के रूप में परिणत हो जाता है। 'आगम' शब्द के मूल में 'परम्परा-ख्याति' की प्रधानता है। इन सबका आदिस्रोत प्रतिभा अथवा पराशक्ति का विमर्श है।[३]

पूर्व विवरण से यह स्पष्ट है कि आगम शास्त्र तथा प्रमाण दोनों हैं। शास्त्र का अभिप्राय ज्ञान की उस समग्रता से है, जिसके द्वारा अनुशासन के साथ ही साथ व्यवहार तथा अभ्यास की सीमा भी निर्धारित की गयी हो। यदि आगम के इतिहास पर एक विहङ्गम दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि प्रारम्भिक काल में वेदविहित कार्यों के अतिरिक्त योगक्षेम के लिए वेदबाह्य प्रक्रियाएँ भी प्रचलित थीं, जिसमें वैदिक मन्त्रों के आधार पर नये मन्त्रों की भी रचना की गयी थी, जो स्वर आदि के नियमों से रहित थे।[४] अतः विद्वानों ने आगम के दो

---

1. आज्ञा वस्तु समन्ताच्च गम्यते त्यागमो मतः।–पिंगलमत, पाण्डुलिपि, दरबार पुस्तकालय, नेपाल, उद्धृत टी०एस०आर०एल०, पृ० 2
2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग–2, वि० 3, पृ० 102.
3. "प्रतिभानलक्षणा इयं शब्दभावनाख्य-आगम एवेति" ई०प्र०वि०वि०, पृ० 93
4. क.वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः। न तु कल्पैर्विना केचिद् मन्त्रब्राह्मणामात्रकात्।। मीमांसादर्शनम् तन्त्रवार्त्तिक 1/3/6/527, कुमारिलभट्ट, भाग 1, तारा प्रिण्टिंग वर्क्स, वाराणसी, 1984, पृष्ठ 457.

   ख. स एवं श्रुतिमन्त्रः स्याद्वेदस्वरविवर्जितः। तान्त्रिकं मन्त्रमित्युक्तं तदेव श्रुतिचोदितम्।। पराशरसंहिता-12.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रधान भेद किये–(१) वैदिक (२) अवैदिक। निगम सम्प्रदाय-निष्ठ उपासना आदि पद्धति को वैदिक माना गया तथा अनादिकाल से ही बौद्ध तथा जैन आदि निगमविरुद्ध प्रस्थान मानने वालों की परम्परा को अवैदिक। अस्तु, उनकी पूजापद्धति को भी अवैदिक ही कहते हैं। तन्त्रवार्तिक में आगमों की एक लम्बी एवं विशद सूची के साथ ही साथ उनके कार्यकलापों का विवरण प्राप्त होता है।[४] वाचस्पति मिश्र ने सांख्यतत्त्व- कौमुदी में शाक्यादि तन्त्रों को तन्त्राभास स्वीकार किया है।[२] वीरमित्रोदय आदि प्रबन्धों में अधिकारि-भेद के आधार पर सभी आगमों को प्रमाण माना गया है।[३] पराशरमाधवीय में वैदिक भक्तिमार्गीय आगमों की संख्या छः बतायी गयी है—शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक, स्कान्द।[४] लक्ष्मीतन्त्र की भूमिका में आगमों के दो भेद स्वीकार किये गये हैं—वैदिक एवं अवैदिक। वैदिक में निगम, इतिहास, पुराण एवं आगम। आगम के तीन भेद—शैव, शाक्त एवं वैष्णव किये गये हैं। पुनः शैव के चार, शाक्त के दो एवं वैष्णव के भी दो भेद किये गए हैं। अवैदिक में बौद्ध आदि आते हैं।[५]

'आगम' का एक दूसरा पक्ष प्रचलित भाषा में 'तन्त्र' कहा जाता है। वैसे सामान्य व्यक्ति के लिए तन्त्र शब्द का प्रयोग जादू, टोना, अभिचार आदि के प्रतीक रूप में होता है। इसका प्रधान कारण है—तन्त्र की पारिभाषिक शब्दावली के ज्ञान का अभाव एवं उसमें प्रवेश करने की क्षमता का अभाव। इस प्रकार की अज्ञानताओं ने भ्रान्तियाँ पैदा कर दी हैं। अगेहानन्द भारती आदि विद्वानों के अनुसार पारिभाषिक शब्दावली का अभाव या यों कहिये कि इस प्रकार के शब्दों का परिज्ञान न होना, जो तन्त्र के वास्तविक अर्थ को अभिव्यक्त कर सके[६], तान्त्रिक विश्वास और आगम

---

1. सांख्ययोगपाञ्चरात्रपाशुपतशाक्यग्रन्थपरिगृहीतधर्माधर्मनिबन्धनानि विषचिकित्सावशीकरणोच्चाटनोन्मादनादिसमर्थकतिपयमन्त्रौषधिकादाचित्कसिद्धिनिदर्शनबलेन-अहिंसा-सत्यवचनदमदयादि–श्रुतिस्मृतिसंवादिस्तोकाथगन्धवासित-जीविका-प्रायार्थान्तरोपदेशीनि, यानि च बाह्यन्तराणि म्लेच्छाचारमिश्रकभोजनाचरणनिबन्धनानि, तेषामेवैतत्श्रुतिविरोधहेतुदर्शनाभ्यामनपेक्षणीयत्वं प्रतिपाद्यते– मीमांसादर्शनम् तन्त्रवार्तिक, तत्रैव, पृष्ठ 328.
2. शाक्यभिक्षुनिर्ग्रन्थसंसारमोचकादीनामागमाभासाः परिहृता भवन्ति।–सांख्यतत्त्वकौमुदी, श्लोक 5 की व्याख्या।
3. दर्शनोदयः, लक्ष्मीनिवासपुरम्, मैसूर 1933, पृष्ठ 455
4. शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा। स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि।। -पराशरमाधवीये. 68 पु0
5. लक्ष्मीतन्त्र, उपोद्घात, पृ0 1
6. The Tantric Tradition, Agehanand Bharati, P. 13.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की आलोचना–भ्रान्ति का मुख्य कारण है। तन्त्र शब्द "तनु विस्तारे" धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ होता है कि मूल वस्तु का अत्यधिक विस्तार करना। वाचस्पति मिश्र, आनन्दगिरि, गोविन्दानन्द ने इस शब्द की निष्पत्ति 'ततृ' धातु से माना है, जिसका अर्थ है व्युत्पादन अर्थात् ज्ञान का मूल स्रोत।[१] यहाँ तक कि ईशानशिव ने अपने 'ईशानशिव-गुरुदेवपद्धति' में भी तन्त्र की निष्पत्ति ततृ धातु से ही माना है।[२] अजितागम में तत्त्व तथा मन्त्र के विस्तार बताने वाले ज्ञान को तन्त्र माना गया है।[३] विष्णुसंहिता में तन्त्र का अर्थ भय से रक्षा करना है।[४] तन्त्र का उद्देश्य साधक की सर्वदा रक्षा करना है, इस बात का उल्लेख नेपाल के दरबार पुस्तकालय में प्राप्त 'पिंगलमत' में किया गया है।[५] सामान्य रूप से तन्त्र शब्द का प्रयोग उन प्रत्येक दार्शनिक तथा वैज्ञानिक निबन्धों के लिए था, जिनमें किसी विषय का वर्णन क्रमबद्ध तथा विस्तारपूर्वक किया गया हो। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इस शब्द का अर्थ संक्षिप्त करना माना है, जिसका अभिप्राय है मन्त्र या किसी सिद्धान्त को बीजगणितीय सूत्र की तरह से उपनिबद्ध करना, जिससे अन्यन्त विस्तृत अर्थ भी संक्षिप्त रूप से अधिगत हो जाय।[६] डॉ० एस०एन० दासगुप्त ने यह माना है कि तन्त्र साहित्य की यह विशेषता है कि उसने भारतीय संस्कृति के उन सभी परिणामों का समावेश किया है, जो वैदिक काल से चले आ रहे थे और जिन्होंने अपने-अपने ढंग से विरोधपरिहार किया।[७] सुश्रुत के अनुसार तन्त्र आयुर्वेद का अपर पर्याय है।[८] वास्तव में तन्त्र का शाब्दिक अर्थ शक्तिस्वातन्त्र्य और चेतना का विकास है।

---

1. श्री आशुतोष मुखर्जी सिलवरजुवली वाल्यूम्स 2, भाग 1, पृ0 253, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता.
2. ईशानशिवगुरुदेवपद्धति–तन्त्रीति धातोरिह धारणार्थता भाग 3, पृष्ठ 28.
3. अजितागम, वाल्यूम 1, क्रियापाद, पटल 1, श्लोक 115, पृष्ठ 10.
4. क. विष्णुसंहिता, अध्याय-2, श्लोक 10, सम्पादक प0म0टी0 गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम् 1926.
   ख. तनुते त्रायते नित्यं तन्त्रमित्थं विदुर्बुधाः–काशिकावृत्ति.
5. "तन्यते ज्ञायते नित्यं तन्त्रमित्थं विदुर्बुधाः"–पिंगलमत, (Mss. D.L. Nepal) Quoted in TSRL.
6. शक्ति एण्ड शाक्त, सर जान वुडरफ, प्रकाशित गणेश एण्ड कम्पनी, तृतीय संस्करण, मद्रास, 1929, पृ0 50.
7. श्री आशुतोष मुखर्जी सिलवरजुबली वाल्यूम तृतीय भाग, 1, पृ0 254.
8. इत्यष्टाङ्गमिदं तन्त्रमादितः प्रकाशितम्।। सुश्रुत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र शब्द का प्रयोग शास्त्र अर्थ में भी मिलता है। शङ्कराचार्य ने सांख्यदर्शन के लिए तन्त्र शब्द का प्रयोग किया है।[1] विभिन्न कोशकारों ने तन्त्र शब्द के विविध अर्थ बताये हैं—१. कुटुम्बभरणादिकृत्य २. सिद्धान्त ३. औषधि ४. प्रधान ५. परिच्छेद ६. वेदशाखाभेद ७. हेतु ८. उभयार्थक प्रयोग ९. इतिकर्तव्यता १०. तन्तुवाय ११ राष्ट्र १२. परछन्दानुमान १३. स्वराष्ट्रचिन्ता १४. प्रबन्ध १५. शपथ १६. धन १७. गृह १८. वयनसाधन १९. कुल २०. शिवादिशास्त्रभेद।[2]

वस्तुतः भावी विश्व की रूप-रेखा जहाँ बनती है या तानी जाती है, वह सूक्ष्मकृतिसम्पन्न अभेद का रूप वस्तु-तत्त्व रूप ही तन्त्र है। बाद में वही वस्तुतत्त्व, जब कुछ पूर्व दशा से उन्मिषित होता है, तब भेद और अभेद रूप को प्राप्त करके भावी प्रसार अथवा फैलाव का मध्यावस्थात्मक ठाठ तन्त्र कहलाता है और भेदात्मक पूर्ण प्रसार तो तन्त्र ही है। इस प्रकार तन्त्र की त्रिधा स्थिति संभव है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर तन्त्रालोक में बताया गया है कि भैरव अभेद दशा है, शिव भेदाभेद दशा और रुद्र भेद दशा है। पीछे कहा गया कि त्रिक ही तन्त्र का सार है।[3] यही बात वेद के लिए भी प्रसिद्ध है। ऋक्, यजुः और साम यह त्रयी वेद का सार है। ऋक् अभेदावस्था है, यजुः भेदाभेदवस्था है और साम भेदावस्था। सूर्य के रूप में त्रयी तप रही है। सूर्य के अन्तराल में अधिष्ठाता रूप से विद्यमान पुरुष यजुः, मण्डल ऋक् है और साम है सूर्य की त्रिभुवन व्यापिनी रश्मिमाला।[4]

'आगम' की ही भाँति तन्त्रशास्त्र का मूल ऐतिह्यात्मक है। निरुक्तकार तो उसे इतिहास ही मानते हैं।[5] यह कभी-कभी शिव-शक्ति के संवाद के रूप में माना जाता है और कभी-कभी साक्षात्कार के रूप में। रुद्रयामलतन्त्र में यह उल्लिखित है कि देवी ने स्वयं ही इस शास्त्र का प्रणयन किया है। अतः इस शास्त्र को आगम न कहकर निगम कहा जाता है।

---

1. 'स्मृतिश्च तन्त्राख्या परमर्षिप्रणीता', ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य 2/11
2. वाचस्पत्यम्–पृ0 3223.
3. जज्ञे तत्रैव रुद्रशिवभैरवाख्यामिदं त्रिधा। वस्तुतो हि त्रिधैवेयं ज्ञानसत्ता विजृम्भते। भेदेन भेदाभेदेन तथैवाभेदभागिना।। -तन्त्रालोकटीका, प्र0आ0, पृ0 45.
4. सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता ऋचो, यजूंषि, सामानि। सा या वागसौ स आदित्यः। मण्डलमेवर्चः, अर्चिः सामानि, पुरुषो यजूंषि।–शतपथब्राह्मण 10.
5. तन्त्रेतिहासमाचक्षते–निरुक्त 2/5/24/2.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्करराय के अनुसार तन्त्र की एक परम्परा है। इस पवित्र शास्त्र का सर्वप्रथम उपदेश पूर्णब्रह्म ने स्वच्छन्द को किया, जो भैरव तथा उसके पश्चात् क्रमशः अनाश्रित ईश्वर, देवी, सदाशिव, ईश्वर, विद्येश्वर तथा श्रीदण्ड से होते हुए यह शास्त्र पृथ्वी पर अवतरित हुआ।[१] शारदातिलक के टीकाकार राघवभट्ट ने भी तन्त्रों को स्मृतिशास्त्र मानकर उन्हें वेद के तृतीयकाण्ड, उपासनाकाण्ड के अन्तर्गत स्वीकार किया है। श्रीकण्ठाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर शैवभाष्य लिखते हुए तन्त्रों को वेदवत् प्रमाण स्वीकार किया है, क्योंकि तन्त्र और वेद दोनों के निर्माता शिव हैं। अतः दोनों समान रूप से प्रामाणिक हैं। दोनों में अन्तर मात्र इतना ही है कि वेद त्रैवर्णिकों के लिए हैं, किन्तु तन्त्र में सभी वर्णों का प्रवेश मान्य है।[२] इससे यह नहीं समझना चाहिए कि तन्त्र में अधिकारी का विचार नहीं है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि तन्त्र में भी अधिकारी का बड़ी गम्भीरता से विचार किया जाता है। बिना योग्यता के साधक इसमें पारंगत नहीं हो सकता और यह काम गुरु की दीक्षा से ही सम्भव है। जैसे वैज्ञानिक यन्त्र सामने रहने पर भी जब तक उसका ज्ञाता प्रयोग करने की शिक्षा नहीं देता, तब तक उसका प्रयोग अत्यन्त हानिकारक होता है, वैसे ही तन्त्र की स्थिति है। बिना योग्य गुरु से दीक्षा लिए साधक अपने साध्य को कथमपि नहीं प्राप्त कर सकता।

तन्त्र एवं वेद दोनों का सिद्धान्त अनेक आधारभूत स्थलों पर समरूपता का आभास कराता है। दोनों में अध्वर की निर्वाहयित्री त्रयी है— वाक्, प्राण तथा चित्त। इस त्रयी के पूर्ण सहयोग से ऊर्ध्व गति प्राप्त होती है। वाक् की मुख्यता से मध्यमा और सत्त्वविशाला बुद्धि के स्पन्दनों के प्राधान्य से वह पश्यन्ती है। स्थूल-सूक्ष्म और कारणभूमि पर्यन्त इन तीनों की गति है। अव्यक्त समता तथा समग्रता की कारणभूमि इन तीनों से परे है। वह परम कारणता का स्थल है। इस परास्थल पर परम तत्त्व स्वयं ही सब कुछ है। परमतत्त्व वेद तथा तन्त्र दोनों का उद्भावक है। इन दोनों में जिस पारस्परिक भेद का प्रतिपालन होता है, उसे मात्र देश-कालजनित दृष्टिकोण ही मानना चाहिए।

---

1. योगिनीहृदयतन्त्रम् 1/1-3. टीका भास्करराय.
2. ब्रह्मसूत्र श्रीकण्ठभाष्य–2/2/28.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रयी वाक् प्राणचित्तानां निर्वाहयति याऽध्वरम्
वाङ्मुख्या वैखरी तत्र प्राणमुख्या च मध्यमा ।
सत्त्वविशालधीमुख्या पश्यन्ती च पराऽपरा
क्रियादिभ्यः स्वतन्त्रा या सप्तर्षिश्च परो यतः ।।[1]

निष्कर्ष रूप से तन्त्र सार्ववर्णिक एवं सार्वभौम होने पर भी अधिकारी का ध्यान रखता है। पाञ्चरात्र ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वेद की लुप्त शाखा से इस शास्त्र का प्रणयन हुआ।[2] अत्यन्त प्राचीन काल से ही शिष्ट जनों में तन्त्रों का आदर था। ऐसी ख्याति है कि बहुत से देवगण भी तान्त्रिक साधना के द्वारा सिद्धि लाभ करते थे। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, स्कन्द आदि सभी श्रीमाता के उपासक थे। अनेक ऋषियों के नाम हैं जो शिवज्ञान के प्रणेता थे, उनमें उशना, दधीचि, नकुलीश, सनत्कुमार प्रमुख हैं।

जयद्रथयामल के मङ्गलाष्टक में तन्त्रप्रणेता अनेक ऋषियों के नाम हैं, जैसे—विष्णु, कश्यप, सनक, गौतम, विश्वामित्र आदि। वैदिक कर्मकाण्ड को कुछ लोगों ने तान्त्रिक अथवा आगमिक साधना की तैयारी माना है। कौल लोगों ने वेदाचार को सातवाँ आचार माना है, जो कुलाचार की आधारशिला है।[3] तान्त्रिक धर्म को वेद का सार अथवा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व माना गया है, जिसे भगवान् शिव ने वेदरूपी समुद्र का विवेकात्मक ज्ञान से मन्थन करके प्रादुर्भाव किया है। शुक्रनीति सार के अनुसार तन्त्र अथर्ववेद का उपवेद है।[4] उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि तन्त्रों और वेदों के विचारों में साम्य है। यद्यपि वेद एक है, किन्तु विभक्त होकर त्रयी और 'अनन्ता वै वेदाः' हो जाता है। यह वेद का ही वाक्य है। तन्त्र भी यही कहता है "आगमो ज्ञानमित्युक्तमनन्ताः शास्त्रकोटयः"[5]।

अवश्य ही तन्त्र की अपनी एक अलग मौलिक दृष्टि है, जो वेद से इतर प्रतीत होती है। उसका कारण तान्त्रिक साधना का अपना वैशिष्ट्य है। कुछ भी हो ये दोनों मिलकर भारतीय संस्कृति के अभिन्न अङ्ग हो गये हैं। तान्त्रिक और

---

1. जपसूत्रम्, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती, सम्पादिका– डॉ0 प्रेमलता शर्मा, भारती विद्याप्रकाशन, वाराणसी, 1966, भाग 1, पृ0 69.
2. मेडिवल लिटरेचर, गोंडा, पृष्ठ 49.
3. History of Dharmasastra – P.V. Kane, Vol. 2 p. 1051.
4. "अथर्वणं चोपवेदस्तन्त्ररूपः स एव हि" शुक्रनीतिसार, 4.3.39.
5. स्वच्छन्दतन्त्र, पटल 4/340.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैदिक आदि सांस्कृतिक धारायें भारतीय संस्कृति को विशालतम बनाती हुई उसे पूर्णता देती हैं। तान्त्रिक साधना का मूल उद्देश्य प्रागैतिहासिक काल में शत्रुविनाश के लिए किया गया प्रयोग था। वैदिक यागों में 'श्येन' या अभिचारादि याग की प्रक्रियायें इसी उद्देश्य से प्रवर्तित होती थीं, किन्तु कालान्तर में इनका निषेध कर दिया गया।

अरब समुदाय में तान्त्रिक प्रक्रिया को 'तसव्वुफ' कहते थे। प्रोफेसर राममूर्ति त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक में इसकी जिस सामान्य प्रक्रिया का उल्लेख किया है, वह भारतीय तान्त्रिक एवं यौगिक पद्धति से अद्भुत साम्य रखती है।[१] मतङ्गपारमेश्वर तन्त्र में तन्त्रशास्त्र के चार पादों का उल्लेख है, जिनका नाम क्रमशः विद्या, क्रिया, योग और चर्या दिया है। टीकाकार रामकण्ठ ने प्रथम दो के स्थान पर उपास्या तथा सिद्धि—नामोल्लेख किया है।[२] तन्त्र को पूर्ण स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए विद्वान् साधकों ने इसका सम्बन्ध वेद से जोड़ा है। नेपाल के दरबार-पुस्तकालय में 'प्रायश्चित्तसमुच्चय' नामक एक हस्तलिखित प्रति है, जिसे 'वाथुलमहातन्त्र' का अंश माना जाता है। इसके रचयिता ईश्वरशिव के शिष्य हृदयशिव हैं। ग्रन्थ में तान्त्रिक अथवा आगमिक संस्कारों का उल्लेख है, जिनकी तुलना वैदिक संस्कारों से की जा सकती है।[३] एक दूसरा ग्रन्थ जयाख्यसंहिता भी उपलब्ध है, जिसके रचयिता का नाम चक्रदत्त है। इस ग्रन्थ में भी श्राद्ध आदि का विधिवत् उल्लेख है।[४]

शक्तिसंचय की प्रक्रिया में तन्त्र का मूल ढूँढने वाले विद्वानों में डा० फ्रेजर का नाम उल्लेखनीय है, इन्होंने एक उद्धरण में इस बात का उल्लेख किया है कि सेमेटिक लोगों में यह प्रथा प्रचलित थी कि मोमबत्ती या प्लास्टिक में शत्रु का आकार बनाकर उसमें नाखून अथवा पिन चुभाकर कष्ट देने का कार्य किया जाता था।[५] डा०जे०जे०मोदी ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है कि

---

1. तन्त्र और तसव्वुफ–प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1989, पृष्ठ 37-38.
2. दि तन्त्राज स्टडीज आन देयर रिलीजन एण्ड लिटरेचर, डॉ० चिन्ताहरण चक्रवर्ती पृष्ठ 3.
3. तत्रैव, पृष्ठ 5.
4. तत्रैव, पृष्ठ 5.
5. तत्रैव, पृष्ठ 8.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ईरान में प्राचीन काल में आपत्तियों के निवारणहेतु नाखून तथा बाल कब्र में डाले जाते थे। जरथूस्तेनामेह में उल्लेख है कि जूरोस्टर जादूगर था। यूनान तथा रोम में भी इस प्रकार की प्रथायें प्रचलित थीं।[१]

तन्त्र के विकास का दूसरा मूल स्रोत लोग लिङ्गपूजा को मानते हैं। ब्राउन की यह मान्यता है कि आदिवासी लोगों में लिङ्गपूजा का महत्त्वपूर्ण प्रचलन था।[२] ई०एच०हार्ट लैण्ड ने भी अपने शोधपूर्ण कार्य में यह मान्यता दी कि धर्म के इतिहास में लिङ्गपूजा का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।[३] डॉ० वाल का तो यहाँ तक कहना है कि मिस्र, यूनान, रोम तथा आधुनिक ब्राह्मणों की शिवपूजा एवं ईसाइयों की रहस्य-पूजा का मूल भी लिङ्गपूजा पर आधारित है।[४] कुछ विद्वानों का मानना है कि आर्यों में लिङ्गपूजा का प्रचलन अनार्यों से हुआ है।[५] सामशास्त्री के अनुसार तान्त्रिक पूजा का प्रादुर्भाव ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व हुआ था। इनका कहना है कि ईसा के पूर्व की छठी शताब्दीयों में जो सिक्के प्राप्त हुए हैं, उनसे तान्त्रिक पूजा के संकेत मिलते हैं।[६]

वेद से तन्त्र का विकास मानने वाले लोगों का निम्नलिखित तर्क है-

१. तैत्तिरीय आरण्यक तथा ऋग्वेद के मन्त्रों में फट्, खट्, आदि शब्दों का मिलना इस बात का संकेत देता है कि तान्त्रिक पद्धति प्रचलित थी।[७] ओंकारोपासना को भी ह्रींकारोपासना मानकर उपनिषदों में भी तन्त्र का बीज माना गया है।[८]

२. वामदेव्य उपासना जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है तथा इस प्रकार का जो वक्तव्य ऐतरेय आरण्यक में है, उससे माना जाता है कि मैथुनी साधना का प्रचार वैदिक काल में था।[९]

---

1. तत्रैव, पृष्ठ 8.
2. तत्रैव, पृष्ठ 8.
3. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम, 9 पृ0 815-31.
4. दि तन्त्राज स्टडीज आन देयर रिलीजन एण्ड लिटरेचर, पृष्ठ 9.
5. दि तन्त्राज स्टडीज आन देयर रिलीजन एण्ड लिटरेचर, पृष्ठ 10.
6. इन्डियन ऐंटिक्वेरी–1906, पृ0 277 एफ.
7. तैत्तिरीय अरण्यक 4, 27, वाजसनेयीसंहिता, 7, 3.
8. छान्दोग्य उपनिषद, 2, 13, 1-2.
9. शतपथ ब्राह्मण 5, 4, 5 एफ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. सौत्रामणी तथा वाजपेय यज्ञ में इन्द्र, अश्विनीकुमार तथा सरस्वती को सोमरस पिलाया जाता था। यह मादक होता था। एग्लिंग ने यह उल्लेख किया है कि अतिरात्र अश्वमेध में लोग रात भर शराब पीते तथा आनन्द मनाते थे। अनेक यज्ञों में तथा प्रधानतया अश्वमेध यज्ञ में विभिन्न प्रकार के पशुओं की बलि दी जाती थी।

४. 'शिश्नदेवाः' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। असुरों को शिश्नदेव कहा गया है। इस आधार पर लोगों का यह मानना है कि लिङ्गपूजा ऋग्वैदिक काल में भी प्रचलित थी।[१]

५. वैदिक षट्कर्म तथा संग्रहणी नामक यागों को भी तन्त्र का मूल माना गया हैं।[२] अथर्ववेद में भी कौशिकसूत्र के आधार पर अभिचार, स्त्रीकर्म, साम्मनस्य तथा पौष्टिक आदि क्रियाओं को तान्त्रिक क्रियाओं के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।[३]

डा० सदाशिव अम्बादास डांगे महोदय ने भी अपने विद्वत्तापूर्ण लेख में वैदिक एवं तान्त्रिक तत्त्वों के सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए प्रायः वेदों की महानग्नी परम्परा एवं पञ्चमकार की साधना को तन्त्र की उत्पत्ति का मूल माना है।[४]

'लोकायत' के रचयिता डॉ० चट्टोपाध्याय ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मातृपूजा तथा मिथुनाचार का प्रादुर्भाव प्रारम्भिक कृषि सम्बन्धी अर्थोपार्जन प्रक्रिया से है, जो वेद की पशुपालन-व्यवस्था के विपरीत है। इसी सर्जनात्मक क्रिया के प्रतीकभूत तत्त्वों का इसमें समावेश किया गया है।[५]

जिस प्रकार सिद्धान्त एवं व्यवहार को काल की दृष्टि से अलग नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार साधना के सिद्धान्त तथा व्यवहार को भी अलग मानना समीचीन नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ में ही मनुष्य ने जब अपने

---

1. शतपथ ब्राह्मण 5, 1, 2, 10, 19.
2. ऋग्वेद, 7, 21, 3,5.
3. अथर्ववेद 3, 2, 5 कौशिकसूत्र 35, 28.
4. डॉ0 सदाशिव अम्बादास डांगे–सन्मार्ग का वेद विशेषांक, 1979.
5. लोकायत, डी0पी0 चट्टोपाध्याय, नयी दिल्ली 1959, पृ0 232.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिन्तन को कार्यरूप में परिणत किया होगा और दूसरों को कार्य करने की प्रक्रिया बतायी होगी, तभी से तन्त्र की उत्पत्ति मानना युक्तिसङ्गत है। शाङ्खायनश्रौतसूत्र में बहुतों के उपकारक उपदेश को ही तन्त्र माना गया है।[१]

भारतीय लिङ्गपूजा को पाश्चात्य दृष्टि से देखना युक्तिसंगत नहीं है। किसी को देवता मानने का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि उसकी पूजा ही की जाती हो। जैसे—अतिथिदेव, पितृदेव इत्यादि। सायणाचार्य ने शिश्नदेव की व्याख्या में इसको स्पष्ट किया है कि असुर लोग अत्यधिक कामसेवक थे। इसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि ऋग्वेद काल में लिङ्गपूजा प्रचलित थी, लिङ्ग शब्द का अर्थ वहाँ प्रतीक या चिह्न है। अखिल ब्रह्माण्ड को अण्डाकार मान कर उसी के प्रतीकभूत शिवपूजा को भारतीय परम्परा में लिङ्गपूजा माना गया है।

कतिपय विद्वान् वैदिक घटनाओं को आर्थिक अथवा कृषि-सम्बन्धी क्रियाओं से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। यह विचारणीय है कि वैदिक काल मानव सभ्यता के चरम विकास का काल है। यह अवश्य है कि वेदों में सभी बातों का विस्तृत उल्लेख नहीं है। ऋग्वेद में उल्लिखित 'सिरीस्तन्त्रम्' का अभिप्राय यह है कि वैदिक काल के लोगों ने कृषि का विस्तार किया।[२] इसी प्रकार अथर्ववेद में उल्लिखित 'तन्त्र' का करघा आदि अर्थ इस बात का द्योतक है कि घरों में कपड़ा आदि का निर्माण होता था।[३] अतः इस आधार पर यह मानना कि मातृपूजा तथा लिङ्गपूजा का प्रादुर्भाव कृषिसम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है, समीचीन नहीं लगता, क्योंकि वैदिक काल में केवल पशुपालन का ही सर्वप्राधान्य रहा और बाद में कृषिकार्य प्रारम्भ हुआ, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपनी प्रसन्नता तथा अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न माध्यमों से करता है, क्योंकि वह चेतन है, जड नहीं। अतः मैथुन आदि जीवमात्र की स्वाभाविक अन्तःप्रवृत्ति है, न कि कृषि आदि से उत्पन्न कोई आर्थिक व्यवस्था की उपज। आगमशास्त्र का उद्घोष है कि मोक्ष कोई अन्य वस्तु नहीं है, वह भोग से ही सुलभ है और इनका अनुवर्तन करने से एक ही जन्म में मुक्ति हो जाती है।[४]

---

1. "यत् सत्कृतं बहूनामुपकरोति तत् तन्त्रमित्युच्यते" शांखायनश्रौतसूत्र–1,16,1.
2. सिरीः सारिणो भूत्वा तन्त्रं कृषिलक्षणं तन्वते विस्तारयन्ति कुर्वन्ति। —ऋग्वेद 10,71,9.
3. तन्त्रमेके युवती। अथर्ववेद, 10, 7, 42, 2क पाणिनि– 5, 2, 7.
4. "परमार्थसार पर योगराज" की टीका, पृष्ठ 195.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगम और तन्त्र आजकल भारतीय वाङ्मय की एक विशेष शाखा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। विण्टरनित्ज का कहना है कि सही-सही कहा जाय तो 'संहिताएँ' वैष्णवों के, 'आगम' शैवों के और 'तन्त्र' शाक्तों के पवित्र ग्रन्थ है।[१] इस सन्दर्भ में यह कहना समुचित होगा कि 'आगम' शब्द से आजकल शैव और वैष्णव दोनों ही आगमों का बोध होता हैं। उसी तरह 'संहिता' शब्द से केवल वैष्णवागमों का ही बोध नहीं होता। पौष्करसंहिता के अनुसार कोई भी ग्रन्थ १२००० श्लोकों से युक्त होने पर संहिता कहा जाता है।[२] 'संहिता' शब्द का प्रयोग प्राय: वेद तथा आगम दोनों के लिए है, किन्तु इसका सर्वमान्य प्रयोग वेद के लिए ही है।[३] इस सन्दर्भ का उल्लेख करते हुए श्री एस०सी०नन्दीमठ ने कहा है कि 'संहिता' शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग प्राय: हुआ है, वह वैदिक संहिताओं से भिन्न है, किन्तु जिस प्रकार वैदिक संहिताओं को माननेवाले उन संहिताओं को पूज्य मानते हैं, उसी प्रकार इन आगम संहिताओं को मानने वाले आगमानुयायी आगम संहिताओं को पूज्य मानते हैं।[४] विण्टरनित्ज ने भी इसी बात को आगे मूल एवं टिप्पणी में कहा हैं कि इन शब्दों में स्पष्ट भेद करने वाली कोई रेखा नहीं है।[५] इस विवेचन से स्पष्ट है कि संहिता शब्द आगम तथा निगम दोनों के लिए ही प्रयुक्त है। अत: दोनों का प्रयोग दोनों ही परम्पराओं के लिए प्राप्त है।

'आगम' और 'तन्त्र' के सम्बन्ध पर विचार करना भी आवश्यक है। 'आगम' एक व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत 'तन्त्र' भी आते है। 'हिन्दू तान्त्रिज्म' डॉ० संयुक्तागुप्ता तथा डर्क जेन, ह्वेन्स ट्यून, गोड्रिअन के ग्रन्थ में 'तन्त्र' के कुछ व्यापक स्वरूपों का प्रतिपादन किया गया है—

१. तन्त्र के सिद्धान्त ने वैदिक साधना के साथ ही वैयक्तिक मुक्ति के लिए एक समानान्तर मार्ग प्रशस्त किया, क्योंकि वैदिक साधना को प्राचीन माना जाता था।

---

1. प्राचीन भारतीय साहित्य (हिंदी संस्करण) भाग–1, खण्ड 2, पृष्ठ 245 प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, सन् 1966.
2. पौष्करसंहिता 40/156.
3. जर्नल आफ कर्नाटक यूनिवर्सिटी एण्ड ह्यूमनिटीज, 1970, पृ0 33.
4. जर्नल आफ कर्नाटक यूनिवर्सिटी एण्ड ह्यूमनिटीज, 1962, पृ0 2.
5. प्राचीन भारतीय साहित्य (हिन्दी संस्करण) पृ0 245, मूल एवं टिप्पणी.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. तान्त्रिक पद्धति आध्यात्मिक अभ्युत्थान के साथ ही साथ सांसारिक सुखों को भी अपना उद्देश्य बनाती है। अतः साधना की उपलब्धि का अभिप्राय ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों ही प्रकार का सुख है। इसमें देवत्वप्राप्ति भी एक उद्देश्य माना जाता है।[१]

डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने 'तन्त्रों' के दो मोटे भाग बताये हैं— शास्त्रानुवर्ती (आर्थोडाक्स) और शास्त्राननुवर्ती (हिटरोडाक्स) प्रथम में आगम, यामल, डामर, इनसे सम्बद्ध साहित्य हैं और द्वितीय में कुलाचार, वामाचार, सहजयान और वज्रयान तन्त्रों को माना है।[२] डॉ०जेम्स एच. कजिन्स का कहना है कि तन्त्र एक प्रायोगिक तथा प्रदर्शनशील मनोविज्ञान पर आधारित है, इसे वैयक्तिक भक्ति ने विशदीकृत किया तथा दैनिक जीवन में इसका प्रयोग कर इसे प्रयोगशील बनाया। तन्त्रशास्त्र मानवता की आवश्यकताओं के विकास पर एक महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है, जिसकी पूर्ति विभिन्न प्रकार के तान्त्रिक संस्कारों के द्वारा होती है।[३]

इस प्रकार आगम, जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, निगम का ही व्यवहार पक्ष है, अतः दोनों ही समानान्तर चलते हैं। दूसरे शब्दों में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। वैदिक कर्मकाण्ड जहाँ एक ओर साधक को तैयार करते हैं, वहीं दूसरी ओर आगम क्रिया-कलाप उसमें आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों का निवारण करते हैं, एक ओर दिव्यानुभूति की पृष्ठभूमि है तो दूसरी ओर अनुभव का योगदान। एक ओर शब्दब्रह्म है तो दूसरी ओर मूर्ति ब्रह्म। वस्तुतः निगम तथा आगम भारतीय ज्ञान की दो आँखें हैं। ये दोनों आगम और निगम साधना रूपी रथ के दो पहिए हैं, जिनके सहचार बिना अभीष्टसिद्धि संभव नहीं है।

---

1. हिन्दू तान्त्रिज्म, संयुक्तागुप्ता एण्ड डर्कजेन, ह्वेन्सट्यून, गोड्रियन, 30 जे0 बर्लिन,1976, पृ0 6-7.
2. स्टडीज इन दि तन्त्राज़, प्रबोधचन्द्र बागची, 45-55.
3. The Tantrasastra being based on an experimental and demonstrable psychology and vivified by the breath of personal devotion and made practical by the application in daily life, is bound to exert an ever increasing influence on humanity as it rises towards the needs which the shastra supplies, including a ritual."– Shakti and Shakta, by Sri John Woodroffe, Pub. Ganesh & Co., Third Edn., 1929, P. 669.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगमों का रचना-काल

'आगम' एक व्यापक संज्ञा है। 'तन्त्र' आगमिक साहित्य के अन्तर्गत हैं। आगम के क्रियात्मक पक्ष पर बल देने के लिए 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग कालान्तर में व्यापक रूप से हुआ है।[१] आगम कब लिखे गये? यह अत्यन्त विवादास्पद प्रकरण है, फिर भी आगमों की लेखनशैली एवं आन्तरिक संघटना पर विचारोपरान्त डॉ. वी.वी. रमनशास्त्री का मानना है कि मध्य-एशिया के डॉ. स्टेन के अनुसन्धान द्वारा यह प्रमाणित होता है कि शैवागमों का समय प्रथम बौद्ध सभा के पूर्व का है। रौरवागम पर आधारित 'शिवज्ञानबोधम्' के अनुवादक जे.एम. नल्लस्वामिन् का कहना है कि ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा के पक्ष में याज्ञिक नीति परित्यक्त हो गयी, तो याज्ञिक आधार का प्रतीकवाद और अधिक आध्यात्मिक अभिप्राय से सम्पन्न हो गया। वह आगमों का समय हो सकता है।[१] श्री पी.टी. श्रीनिवास आयंगर का मत है कि शिवमन्त्रों की छाया तैत्तिरीयसंहिता में प्राप्त होती है, लेकिन तान्त्रिक स्वरूप वैचारिक रूप में ईसवी प्रारम्भिक शताब्दियों में आया।[३] श्री मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री का विचार है कि पाञ्चरात्रागम ईसवी चतुर्दश शतक से पूर्व के हो सकते है। श्री आर.आर. दिवाकर महाशय का कथन है कि शैवागम आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व के विरचित है।[४] प्रोफेसर मसहरु अनेत्सकी ने तान्त्रिक पूजा के प्रमाण में राजतरंगिणी से अशोक के समय को उद्धृत करते हुए प्रमाणित किया है कि तन्त्र नागार्जुन से भी पहले था।[५] शबरभाष्य में देवपूजा को याग कहा गया है।[६] आगमों में भी देवपूजा में अन्तर्याग और बहिर्याग शब्द प्रचलित है। पाणिनि बुद्ध से प्राचीन है, यह निर्विवाद है। अस्तु, आगमों में प्रचलित पूजादि को पाणिनि से पूर्व मानना समुचित है।

वास्तुशास्त्र के लेखकों का मत है कि वास्तुविद्या-विषयक शास्त्र शैवागमों से प्राचीन नहीं है। वास्तुविद्या की परम्परा हडप्पा और मोहनजोदड़ों

---

1. 'सन्मार्ग', आगम विशेषांक, 1980, पृ. 85.
2. शिवसूत्रविमर्शिनी का अंग्रेजी अनुवाद, प्रारम्भिक टिप्पणी.
3. आध्रसंवत्सरादिसंचिका, संस्कृतवाङ्मयचरितम्, पृ. 71.
4. वचनशास्त्ररहस्य, पृ. 289-299.
5. हिस्ट्री ऑफ रिलीजन इन ऐंश्येण्ट इण्डिया.
6. शबरभाष्य, 4/2/2/27-28.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की संस्कृतियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। अतः शैवागमपरम्परा वेद के समकालीन ही नहीं, अपितु उससे भी पूर्व स्वीकार की जा सकती है। हडप्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाइयों से उपलब्ध अवशेषों से इसकी पुष्टि की जा सकती है।

विद्वानों के विचारोपरान्त अभिलेखीय और साहित्यिक प्रमाण भी आगमों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में परीक्षणीय है। पाँचवीं शताब्दी के कांची के शिलालेख में २८ शैवागमों का उल्लेख है।[१] वाराणसी के दैनिक समाचारपत्र 'आज' ५ फरवरी, १९७२ से पता चलता है कि मथुरा संग्रहालय में २३०० वर्ष प्राचीन मौर्य-शुङ्गकालीन यक्षी-प्रतिमा (मनसा देवी) है, जो मथुरा से २० कि.मी. दक्षिण की ओर 'झांग का नगला' नामक गांव से मिली है। उदयपुर के पुरातत्त्व-संग्रहालय में सन् ४९० ई. का एक शिलालेख सुरक्षित है, जिसमें देवी की स्तुति की गयी है। इस प्रकार शाक्त तन्त्र भी अत्यन्त प्राचीन है।[२]

महाभारत में वर्णित है कि सत्ययुग में रुद्र ने योग में निविष्ट होकर तन्त्रशास्त्र बालखिल्य ऋषियों को बताया।[३] एतावता महाकाव्य काल में आगम प्रचलित थे। महर्षि बादरायण ने वेदान्तसूत्रों में पाञ्चरात्र और पाशुपतों का खण्डन किया है।[४] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कण्वाश्रम में तपस्वियों को वैखानस कहा गया है।[५] तिरुमूलर के तिरुमन्दिरम् में आगम का वर्णन मिलता है।[६] भारविकृत किरातार्जुनीय,[७] आनन्दगिरि का शङ्करविजय,[८] मनुस्मृति पर कुल्लूकभट्ट की टीका[९] आदि में भी आगमों का दिग्दर्शन प्राप्त है।

इनके अतिरिक्त यतीन्द्रमतदीपिका नामक वैष्णवदर्शन ग्रन्थ में भी

---

1. साउथ इण्डिया इन्स्क्रिप्शन्स, भाग 1, पृ. 15.
2. एपिग्राफिया इण्डिका, वा. 30, आ. 4, पृ. 120-137 पर विवरण के साथ प्रकाशित है.
3. महाभारत, शान्तिपर्व, 257+27. 4. वेदान्तसूत्र, 5/5.
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अङ्क.
6. तिरुमन्दिरम्, 7/276.
7. किरातार्जुनीयम्, 5/18/22.
8. शङ्करविजय, अध्याय 7-9.
9. मनुस्मृति, 1/10.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाशुपत की चर्चा उपलब्ध है।[१०] सर्वार्थसिद्धि नामक जैनदर्शन में जैनागम का प्रमाण स्वीकृत है।[११]

वाक्यपदीयम् भर्तृहरिकृत वैयाकरण दर्शन में आगम का पूर्ण अस्तित्व प्रतिपादित है।[३] पेरिस के प्रोफेसर फिल्लीओजात (Filliozat) ने अपने निबन्ध में संस्कृत ग्रन्थों का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि आगम, दक्षिण एवं पूर्व एशिया में विस्तृत रूप से बिखरे हुए थे।[४]

आगमों के भेद

तन्त्रागमीय साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है।[५] संख्या में कितने तान्त्रिक सम्प्रदाय आविर्भूत हुए और पश्चात्काल में कितने विलुप्त हुए यह कहना कठिन है। उपास्य-भेद के कारण उपासना प्रक्रियाओं में भेद तथा आचारादि भेद होते हैं। साधारणतया पार्थक्य का यही कारण है। शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, स्कान्द तथा सौर- ये प्रधान रूप से मान्य है।[६] विष्णुसंहिता में तन्त्र के शैव, वैष्णव, ब्राह्म, सौर और कौमार भेद निर्दिष्ट हैं-

तच्छैववैष्णवब्राह्मसौरकौमारभेदतः।
पञ्चधा भिद्यते तन्त्रं वक्त्रृणां च विशेषतः।।

विष्णुसंहिता, २/२०

इन सम्प्रदायों में भी अनेक अवान्तर भेद-प्रभेद हैं।

---

1. यतीन्द्रमतदीपिका, 30-31.
2. सर्वार्थसिद्धि, 2/20.
3. वाक्यपदीय द्वितीयकाण्ड, 488-89.
4. जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, 1972-77, वा. 42-46, पृ. 145-153.

5.a. Prineiples of Tantra, Woodroffe, Vol. I, p. 390-398.
b. Introduction of the Pancaratra, F.O. Schrader, p. 3-4.
c. तन्त्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पं. गोपीनाथ कविराज, पृ. 59-72, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 2003 ई.

6.क.शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा। स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि।।-
- पराशरमाधवीये, पृ. 68.1.

ख. गणेशं गाणेशाः शिवमिति च शैवाश्च विवधा रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं-विष्णुभजकाः।
वदन्त्येकं शाक्ता जगदुदयमूलां परशिवां न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्म सकलम्।।
- पुष्पदन्त कृत गणेशमहिम्नः स्तोत्रम्-2.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तिसंगमतन्त्र में "शाक्तं शैवं गाणपत्यं वैष्णवं सौरबौद्धकम्"[१] तथा "शाक्तं शैवं वैष्णवं च सौर गाणपतमेव च। बौद्धं च देवदेवेशि दर्शनानि च षट्क्रमात्।।"[२] इत्यादि वचन उपलब्ध होते हैं।

साधना का आरम्भ सृष्टिकाल से ही शुरु हो जाता है। गणेशसहस्रनाम में शाक्त, विनायक, सौर, जैन तथा आर्हत आगमों का उल्लेख है-

शाक्तं वैनायकं सौरं जैनमार्हतसंहिता।
सदसद् व्यक्तमव्यक्तं सचेतनमचेतनम्।।[३]

डॉ. बलदेव उपाध्याय ने तन्त्रों के तीन प्रमुख भेदों का प्रयोग किया है जो है- ब्राह्मण तन्त्र, बौद्ध तन्त्र तथा जैन तन्त्र। ब्राह्मण के उपास्य देवता के भिन्नता के कारण वैष्णव आगम, शैवागम तथा शाक्तागम में विभाजित है। दार्शनिक सिद्धान्तों के कारण भी आगम द्वैत प्रधान अद्वैत एवं द्वैताद्वैत तीन प्रकार के हैं।[४] अप्पयदीक्षित ने 'शिवार्कमणिदीपिका' में शैवागम के दो भेद बताये हैं- वैदिक तथा अवैदिक। वैदिक तंत्र वेदाधिकारियों के लिए तथा अवैदिक तन्त्र अवैदिकों के लिए स्वीकृत है।[५] दोनों ही प्रामाणिक हैं।

सौरागम-

प्रत्यक्ष देव के रूप में भुवन भास्कर भगवान् सूर्य नारायण सम्पूर्ण जगत के परम आराध्य हैं। सूर्य निगम-आगम-संस्तुत तथा ज्ञान-विज्ञान-सम्मत देवाधिदेव परम देवता हैं। उन्हें लोकजीवन का साक्षी तथा सांसारिक प्राणियों की आँखों का प्रकाशक कहा गया है इसीलिए उनको "लोकसाक्षी" और "जगच्चक्षु" कहते हैं। सभ्यता के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद के अनुसार भगवान् सूर्य सभी रथावर-जङ्गमात्मक विश्व की अन्तरात्मा हैं।[६] सूर्य का उद्गम विराट् पुरुष भगवान् के नेत्र से हुआ है।[७] सूर्य शब्द 'सृगतौ' या 'षू प्रेरणे' से वयप् प्रत्यय होने पर निष्पन्न होता है। 'सरति-आकाशे-इति सूर्यः' जो आकाश में निराधार भ्रमण करता है अथवा 'सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति' जो (उदय होने से) सम्पूर्ण जगत् को अपने-अपने कर्म में प्रवृत कराता है वह सूर्य है।

---

1. शक्तिसंगमतन्त्र, 1/5/6.
2. तत्रैव, 2/4/3.
3. गणेशसहस्रनाम, 130.
4. भारतीय दर्शन, पृ. 448.
5. 'शिवार्कमणिदीपिका', 2/1/28.
6. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च, ऋग्वेद, 1/115/1, यजुर्वेद, 7/42.
7. 'चक्षोः सूर्यो अजायत', ऋग्वेद, 10/90/13.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्योपनिषद् में सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति में एकमात्र कारण सूर्य को ही बतलाया गया है और उन्हीं को सम्पूर्ण संसार की आत्मा और ब्रह्म बतलाया गया है- "सूर्याद् वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। असावादित्यो ब्रह्म"[१]। यहाँ यह उल्लिखित है कि सम्पूर्ण संसार की सृष्टि तथा पालन सूर्य ही करते हैं। सम्पूर्ण संसार का लय भी सूर्य में ही होता है तथा जो सूर्य है वही मैं हूँ अर्थात् सम्पूर्ण संसार की अन्तरात्मा सूर्य ही है।[२] सूर्यतापिन्युपनिषद् का उद्घोष है कि सूर्य त्रिदेवात्मक तथा प्रत्यक्ष देवता है।[३] वाल्मीकि रामायण में तो भगवान् सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, महेन्द्र, कुबेर, यम, सोम, वरुणादि कहा गया है-

'एष ब्रह्मा विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः।।[४]

संस्कृत-साहित्य में सूर्यदेव के अनेक पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं। ये नाम देवता के विभिन्न गुणों को प्रदर्शित करते हैं। अमरकोष में सूर्य के सैंतीस नामोल्लेख निर्देशित हैं- अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, त्विषांपति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, व्रघ्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व।[५] शतपथ ब्राह्मण में द्वादश आदित्यों का उल्लेख हैं, जिनके नाम क्रमशः- धाता, मित्र, अर्यमा, उषा, शक्र, वरुण, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, अंशुमान् तथा विष्णु हैं।[६] ये ही द्वादश आदित्य संवत्सर के बारहों महीनों के पृथक्-पृथक् अधिपति हैं। "अदितेरपत्यः पुमान् आदित्यः" की व्याख्या के अनुसार माँ अदिति से उत्पन्न हुए सारे देवता आदित्य कहे जाते हैं। किन्तु कालान्तर में आदित्य संज्ञा केवल सूर्य में रूढ़ हो गयी। अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के

---

1. कल्याण सूर्य विशेषांक, पृष्ठ-4.
2. सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि च। सूर्ये लयं प्राह्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च।। 1/4.
3. एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रूद्र एव हि- सूर्योपनिषद्भास्करः। त्रिमूर्त्यात्मा त्रिदेवात्मा सर्वदेवतयो रविः।। सूर्यतापन्युपनिषद् 1/6.
4. वाल्मीकिरामायण, युद्धकाण्ड, 105/8.
5. अमरकोष, 1/3/28-31.
6. शतपथब्राह्मण, 1/2/8.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'शत्रुनाशन' सूक्त में सूर्य की पाँच शक्तियों- संतप्त शक्ति, हरण शक्ति, परिज्वलन शक्ति, शोकाभिभव शक्ति तथा पराविभूत शक्ति के नाम से उनमें अन्तर्निहित शक्तियों का स्वरूप वर्णित है।[१]

वेद सामान्य रूप से निगम के नाम से विख्यात है। निगम या वेद में सूर्य प्रमुख है। सूर्य को त्रयी-वेदत्रय का रूप ही कहा गया है।[२] आगम में वही बिन्दु, प्रकृति या शब्दब्रह्म के रूप में विख्यात है। शब्दब्रह्म के वाच्यतत्त्व सदाशिव या पञ्चमुख महेश्वर की तुलना वेद में निर्दिष्ट 'आदित्य' से हो सकती है। छान्दोग्योपनिषद् का उद्घोष है- 'आदित्य' देवमधु है, द्युलोक तिरछा बाँस है, अन्तरिक्ष मधुमक्षिकाओं का छत्ता है और किरणें बच्चे हैं। आदित्य के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं की किरणों से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इतिहास पुराणात्मक पुष्प रस प्रवाहित होता है। ऊर्ध्वगत रश्मियों से गुह्य आदेशात्मक मधुकर एवं ब्रह्म (प्रणव) तत्त्वात्मक पुष्प का रस प्रवाहित होता है। आदित्य के पूर्वादि मुखों को अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम एवं ब्रह्मा के नाम से अभिहित किया गया है। ये अग्नि सदाशिव के सद्योजात, तत्पुरुष, वामदेव, अघोर तथा ईशान मुख हैं।[३] आदित्य या सदाशिव के ईशानात्मक ऊर्ध्वमुख से निर्गत गुह्य आदेश ही आगम है। यही निगमागमोक्त आदित्योपासना की साम्यावस्था है।

महाभारत का समुद्रघोष है-

सर्वरोगैर्विरहिता सूर्यपापविवर्जिताः।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः।।[४]

---

1. अथर्ववेद, 2/21/1-5.
2. सैषा त्रयी एव विद्या तपति, शतपथब्राह्मण, 10/5/2/2.
3. असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवंशोऽन्तरीक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः। छा.उ.3/1। तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्यः। ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एवं पुष्पं वा अमृता आपः 3/2। अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्य यजूंष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पम् 3/2/1। अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः। तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन। अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन। अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीव्यन्ति वरुणमुखेन। अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत्त उपजीवन्तिसोमेन मुखेन।
   अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन। छान्दोग्योपनिषद् अध्याय 3, खण्ड 1-10.
4. महाभारतवनपर्व, 3/67

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अजितमहामहातन्त्र में सूर्यस्थापनविषय का निर्देश करते हुए कहा गया है-

अष्टमूर्तेः शिवस्येतन्मूर्तयोऽष्टौ प्रकीर्तितः।
सूर्यचन्द्रमसावात्मा महाभूतानि पञ्च च।।
एतास्वष्टसु सूर्योदयमग्रिमा मूर्तिरुच्यते।
सूर्यमर्त्या शिवो लोकान् सृजत्यवति दीत्तया।।[1]

सूर्यगायत्री का स्वरूप निम्नवत् है-

पद्महस्ताय विद्महे रथारुढाय धीमहि।
तन्नः सूर्य प्रचोदयादिति।।

तन्त्रसारसंग्रह में मार्ताण्डभैरव का विशद-विवेचन किया गया है।[2]

१. वैदिक अष्टाक्षर मन्त्र- ॐ घृणिः सूर्यं आदित्यः।

२. लक्ष्मी प्राप्ति के लिए- (क) ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः श्रीं।

(ख) ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्यः ह्रीं क्लीं श्रीं ॐ प्रयच्छ मे लक्ष्मीम्।

३. सूर्य गायत्री- ॐ सप्ततुरंगाय विद्महे, सहस्रकिरणाय धीमहि, तन्नो रविः प्रचोदयात्।

इनके वैदिक मन्त्र, यन्त्र और तान्त्रिक बीज मन्त्र प्रसिद्ध हैं। अतः उनका यहाँ तन्त्रमिश्रित वैदिक मन्त्रों वाले सर्व रोग निवारक १. तृचाकल्प और २. हंसकल्प के २४-२४ नमस्कारों के प्रयोग दे रहे हैं। ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनका प्रयोग करने से बहुत ही लाभ होता है।

सौर-साधना के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ साम्बपञ्चाशिका में उपर्युक्त विवेचन का समर्थन अधोलिखित रूप से किया गया है-

यत्रारूढं त्रिगुणवपुषि ब्रह्म तद्बिन्दुरूपं
योगीन्द्राणां यदपि परमं भाति निर्वाणमार्गः।
त्रय्याधारः प्रणव इति यन्मण्डलं चण्डरश्मे-
रन्तः सूक्ष्मं बहिरपि बृहन्मुक्तये तत्प्रपद्ये।।[3]

अर्थात् त्रिगुणवपु, सर्वज्ञ, अव्याकृत, जगत्कारणरूप जिस सूर्यमण्डल में बिन्दुरूप शब्दब्रह्म सन्निविष्ट है जो जो श्रेष्ठ योगियों के हृदय में ब्रह्माकार

1. अजितमहातन्त्र, 2-3
2. तन्त्रसारसंग्रह, पटल 25.
3. साम्बपञ्चाशिका-7.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में परिणत बुद्धि-वृत्ति के लिए तथा मध्यम योगियों को अर्चिरादि पथ से ब्रह्मलोक पर्यन्त निर्वाण मार्ग के रूप में शोभित होता है, वेदत्रयी का आधारभूत प्रणव ही जिसका सूक्ष्म मण्डल है, सम्पूर्ण जीवों के अन्तःकरण में इन्द्रियों के पकड़ से बाहर अतिसूक्ष्म रूप में वर्तमान और बाह्याकाश में स्थूल तथा व्यापक रूप में अवस्थित उस सूर्यमण्डल के अविद्या नाश के लिए मैं शरणापन्न होता हूँ।

सूर्य की उपासना भारतीय जीवन का अनिवार्य अङ्ग है। सूर्य से सम्बन्धित वैदिक मन्त्रों के समूह को 'सौर' शब्द की संज्ञा दी गयी है। "तृचभास्कर"[1] में सूर्योपासना के प्रधान कृत्य 'तृचार्घ्यदान' पर विशद विवेचन किया गया है। तृचभास्कर में सूर्यसम्बन्धी सभी साहित्यों की गम्भीर गवेषणा है।

वैष्णवागम-

तान्त्रिक दर्शन एवं साधना के इतिहास में वैष्णवागम का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इस आगम में एकमात्र भगवान् विष्णु (सशक्तिक) ही परम आराधनीय, वन्दनीय, पूजनीय, भजनीय, कीर्तनीय तथा शरण ग्रहण करने योग्य निरूपित किये गये हैं, अतः यह आगम वैष्णवागम के नाम से प्रसिद्ध है।

वैष्णवागम के अनुसार सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही ब्रह्मवाचक सभी नामों के वाच्य हैं। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण निराकार रूप में हैं, उसी प्रकार सगुण साकार रूप में भी है। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मा प्रभु की ही शक्ति से व्याप्त है। उन्हीं के उन्मेष और निमेष मात्र से संसार की उत्पत्ति तथा प्रलय होते हैं और वे ही जगत् पालन करने वाले हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी तथा निर्गुण- सगुण दोनों से विलक्षण भी हैं। व्यापक होते हुए भी वे एक देश में अवतरित होते हैं। इस प्रकार विचारदृष्टि से जो निर्गुण हैं, भावदृष्टि से वे ही सगुण बन जाते हैं।

इस प्रकार सर्वातिशायी विष्णु, नारायण अथवा वासुदेव की प्राप्तिविषयक आराधना- प्रक्रिया का प्राधान्येन निरूपण करने वाले भक्तिपरक शास्त्र वैष्णवागम पद से अभिहित होते हैं। वैष्णवागमों की भी दो प्रमुख शाखाएँ हैं-

(१) वैखानस-आगम (२) पाञ्चरात्र-आगम।

---

1. तृचभास्कार, श्रीमद्भास्कररायप्रणीत, गायकवाड ओरियेण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1982 ई.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैखानसागम-

वैखानस-आगम वैखानस-सूत्रमूलक है । वैखानस वैष्णव के सारे संस्कार तथा धार्मिक कृत्य एवं गृह विधान वैखानस-सूत्रों और शास्त्रों के आधार पर विहित होते हैं। इसमें लक्ष्मीविशिष्ट नारायण की उपासना होती है। इसीलिए इनका अभिमत लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत कहलाता है।

वैखानस आगम का अपना वैशिष्ट्य है कि यह आगम और निगम की शृङ्खला को जोड़ने वाली पहली कड़ी है तथा वैदिक वर्णाश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत तृतीय वानप्रस्थ आश्रम से इसका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा है। प्रो० जे० गोण्डा का मानना है कि पाञ्चरात्र-मतानुयायियों की भाँति वैखानस-मतावलम्बियों ने तमिल भाषा का प्रयोग नहीं किया है। ये विशुद्ध रूप से संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं। स्त्री तथा शूद्रों को भी यहाँ वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ, जो कि पाञ्चरात्र आगम में तमिल आलवारों के माध्यम से उनको मिला था। अत्रि, मरीचि, भृगु और काश्यप के ग्रन्थों को वे ३-४ शताब्दी की रचना मानते हैं, जबकि त्रिरत्न के नाम से प्रख्यात सात्वत, पौष्कर तथा जयाख्य पाञ्चरात्रसंहिताओं का काल इसके बाद का माना जाता है।[१]

सभ्यता के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद,[२] शुक्लयजुर्वेद,[३] सामब्राह्मण (ताण्ड्यब्राह्मण)[४] तथा तैत्तिरीयसंहिता[५] में वैखानस ऋषियों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन स्थलों में इनके सिद्धान्तों के साथ-साथ इनके जीवन-वृत्त के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। सायणाचार्य ने 'वेदार्थप्रकाश' में तथा 'पदार्थवृत्ति' की टीका में, भरतस्वामी ने "वैखानसाः शतसंख्यका मन्त्रदृश ऋषयः"- ऐसा अर्थ किया है।[६]

वैखानस शब्द की निष्पत्ति 'खन्' धातु से भी मानते हैं, जिसका अर्थ गहराई तक खोदना होता है अर्थात् 'गूढार्थ-प्रकाशन' के लिए आत्मनिरीक्षण करने वाले महर्षि का नाम विखनस माना गया है।[७] श्रीमद्भागवतपुराण के गोपीगीत में विखनस का नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया गया है। यहाँ

---

1. मिडीवल रिलीजियस लिटरेचर इन संस्कृत, पृष्ठ 142.
2. ऋग्वेद, 9/66.
3. शुक्लयजुर्वेद
4. ताण्ड्यब्राह्मण, 14/4/7, 14/8/28.
5. तैत्तिरीयसंहिता, 7/1/4/3.
6. सामविधानब्राह्मण, 1 प्रपा0, अनुवाक 1-7.
7. खनित्वा चात्मनात्मानं धर्मादिगुणसंयुतम्। ध्यानमाविश्य योगेन ह्यासीद् विखनसो मुनिः।। विशेषेण खनेद्यस्माद् भावनान् मुनिसृष्टये। नाम्ना विखनसो लोके स आसीदण्डजप्रियः।। –समूर्तार्चनाधिकरण, भूमिका, पृष्ठ 19.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विखनस शब्द का अर्थ ब्रह्मा है या इस नाम से एक मुनि को ही विखनस कहा गया है।[१] आनन्दसंहिता के अनुसार मुनि विखनस ने जो ब्रह्मा थे, वैखानस सूत्रों की रचना की। यह वैखानससूत्र यजुर्वेद की एक शाखा के अनुसार था तथा इसने विष्णु की उपासना का मार्ग प्रशस्त किया था।[२]

बौद्धों के मज्झिमनिकाय में 'वेखणससूत्त' उपलब्ध है। यहाँ वेखणस (वैखानस) तथा बौद्ध का ज्ञान विषयक संवाद होता है।[३]

वैखानस ग्रन्थ के अनुसार इनकी परिभाषा अधोलिखित है—

विहङ्गरूपो भगवान् यां वाचमसृजद्विभुः।
तां वाचमखनद् ब्रह्मा तस्माद्विखनसो मुनिः।
नाम्ना विखनसं प्राहुः यं च वैखानसं तथा।।[४]

अर्थात् विहङ्गरूपी भगवान् जिस वाणी का सर्वत्र विस्तार करते हैं, उस वाणी का ब्रह्मा के द्वारा खनन किया गया, उसकी लोक में विखनस मुनि (ब्रह्मा) के द्वारा स्थापना की गयी, उसे ही वैखानस कहा जाता है।

वैखानसागम ग्रन्थों की सूचियों की विवेचना के आधार पर विस्तृत समीक्षा कर डॉ० राघवप्रसाद चौधरी महोदय ने निष्कर्ष रूप से कुल साठ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इनमें पूर्ण या अपूर्ण रूप में उपलब्ध ग्रन्थों की संख्या सत्रह है। इन सत्रह ग्रन्थों में मुद्रित आठ पूर्ण हैं तथा दो अमुद्रित ग्रन्थ प्रायः पूर्ण हैं। अवशिष्ट सात अमुद्रित ग्रन्थों के केवल कुछ अंश उपलब्ध हैं।[५]

वैखानस आगम कोश एकादश खण्डों में राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति से प्रकाशित है।

इस आगम साहित्य का बहुत बड़ा अंश अप्रकाशित ही है। जो कुछ देश या विदेश से प्रकाशित है वह पर्याप्त नहीं माना जा सकता। यह एक

---

1. श्रीमद्भागवतपुराण, 10/31/4.
2. आदिकाले तु भगवान् ब्रह्मा तु विखना मुनिः।
   यजुःशाखानुसारेण चक्रे सूत्रं महत्तरम्।।
   वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्तसमन्वितम् । विमानार्चनकल्प, पृष्ठ 3-4.
3. मज्झिमनिकाय, हिन्दी अनुवाद, अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि प्रकाशन, सारनाथ, द्वि०सं० 1964, पृष्ठ 326.
4. समूर्तार्चनाधिकरण, परिशिष्ट, अनुबन्ध–क, अध्याय 3/5-6.
5. संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास, तन्त्रागम, एकादश खण्ड, सम्पादक, प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, निबन्ध डॉ० राघवप्रसाद चौधरी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1979, पृष्ठ 36.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन्त सम्प्रदाय है। इनके सारे क्रियाकलाप ग्रन्थों के आधार पर सम्पादित होते हैं। सम्प्रति वैखानस विधान से आन्ध्रप्रदेश में तिरुपति के बालाजी मन्दिर में अर्चा सम्पादित होती है।

पाञ्चरात्रागम-

पाञ्चरात्र आगम के अनुयायी साधक- भक्त सात्वत, भागवत, एकान्तिन्, ऐकान्तिन् तथा पञ्चकालज्ञ कहलाते हैं। पाञ्चरात्र आगम का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। जाहिर है जो समृद्ध होगा उसमें भेद भी सम्भव है। डॉ० श्रेडर के अनुसार पाञ्चरात्र संहिताओं की संख्या २१० है।[१] पं० वी० कृष्णामाचार्य ने लक्ष्मीतन्त्र के उपोद्घात में पाञ्चरात्र ग्रन्थों की संख्या २१९ बताई है।[२] ईश्वरसंहिता और पारमेश्वरसंहिता के अनुसार इस आगम के चार भेद हैं- आगमसिद्धान्त, मन्त्रसिद्धान्त, तन्त्रसिद्धान्त और तन्त्रान्तरसिद्धान्त।[३]

पाञ्चरात्र शब्द का अनेक प्रकार से अर्थ किया गया है। 'पञ्चरात्र' दो शब्दों के मेल से बना है— 'पञ्च' तथा 'रात्र'। 'पञ्च' शब्द का अर्थ सुस्पष्ट है पाँच संख्या,[४] रात्र शब्द प्रचलित रात्रि शब्द का अन्य रूप माना जाता है। 'रा' धातु से निष्पन्न 'त्रिप्' प्रत्यययुक्त शब्द से रात्रि शब्द बनता है,[५] जिसका अर्थ दिन न होना या प्रकाशाभाव माना जाता है। रात्रि शब्द से लाक्षणिक अर्थ में आनन्द की प्राप्ति भी मानी जाती है अर्थात् वह अवस्था जिसमें आनन्द प्राप्त हो।[६]

अहिर्बुध्न्यसंहिता में मोक्षप्रदायक परमात्मा के पाँच स्वरूपों का उल्लेख करते हुए पाञ्चरात्र को मोक्षदायक पद्धति बताया गया है। परमात्मा के ये पाँच स्वरूप क्रमशः पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी तथा अर्चा हैं।[७]

---

1. इण्ट्रोडक्शन टू पाञ्चरात्र, पृ0 3-4.
2. लक्ष्मीतन्त्र, उपोद्घात, पृ0 10-13.
3. चतुर्धा भेदभिन्नोऽयं पाञ्चरात्राख्य आगमः।
   पूर्वमागमसिद्धान्तं द्वितीयं मन्त्रसंज्ञितम्।
   तृतीयं तन्त्रमित्युक्तमन्यत्तन्त्रान्तरं भवेत्।।
   (ई.स., 21/260-61, पारमेश्वरसंहिता, 19/260-61)
4. 'संख्या पूर्वरात्रे बहुलम्' लिंगानुशासनम्, 131.
5. 'राशादिभ्यां त्रिप्' उणादिसूत्र, 507.
6. नामलिंगानुशासनम्, 1.4.4 टीका भानुजी दीक्षित।
7. तत्परं व्यूहविभवस्वभावादिनिरूपणम् । पञ्चरात्राह्वयं तन्त्रं मोक्षैकफलदायकम्।।
   अहिर्बुध्न्यसंहिता, 11/63/4.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत के नारायणीयपर्व में प्रयुक्त शब्द भी नारायण का सम्बन्ध पञ्चयज्ञों तथा पञ्चरात्रों से स्थापित करता है।[१]

एकमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च।
परस्पराङ्गान्येतानि पञ्चरात्रं च कथ्यते ।।[२]

पाद्मसंहिता के चर्यापाद की भूमिका के पृष्ठ २८ में आगमशास्त्र, नाट्यशास्त्र, शिल्पविद्या, आयुर्वेद तथा ज्योतिष के सम्मिलित स्वरूप का निदर्शन पाञ्चरात्रशास्त्र में होता है-

आगमे भरते शिल्पं वैद्य ज्योतिषमेव च।
पञ्चशास्त्राणि संयोगात् पाञ्चरात्रमिति स्मृतम्।।

श्री वेदान्तदेशिक ने विभिन्न आगमादि ग्रन्थों के आधार पर निष्कर्ष रूप में पञ्चरात्र पद का स्वरूप बताते हुए कहा है कि श्री विष्णु की अनन्य भाव से भक्ति का उपदेशक शास्त्र पाञ्चरात्र है।[१] षड्विधाशरणागति इस दर्शन की मुख्य उपलब्धि है। इसमें द्वादश आलवार सन्तों-भक्तों की विशेष प्रतिष्ठा है।

पाञ्चरात्र परम्परा की उपासना पद्धति दक्षिण के श्रीरङ्गम आदि देवालयों में प्रचलित है। वैष्णावगम परम्परा ईश्वर, जीव तथा प्रकृति—इन तत्त्वों को स्वीकार करती है तथा श्री महाविष्णु के दिव्य मङ्गल विग्रह की भक्ति अर्चना के सिद्धान्त को स्वीकार करती है।

शैवागम

इस परम्परा में भगवान् सदाशिव की ही प्राधान्येन आराधना-उपासना होती है। भगवान् शिव से सम्बद्ध होने के कारण ही ये आगम शैवागम कहलाते हैं। शैवागम मुख्यतः (१) भेदप्रतिपादक, (२) भेदाभेद-प्रतिपादक तथा (३) अभेदप्रतिपादक- इस प्रकार से तीन रूपों में प्रविभक्त हैं, इन्हें क्रमशः शिव, रुद्र तथा भैरव के नाम से पुकारा जाता है-

तन्त्रं जज्ञे रुद्रशिवभैरवाख्यमिदं त्रिधा।
वस्तुतो हि त्रिधैवेयं ज्ञानसत्ता विजम्भृते।।
भेदेन भेदाभेदेन तथैवाभेदगामिना।

(तन्त्रालोक, जयरथ टीका, १/१८)

शैवागम के मुख्य रूप से चार भेद हैं-

१. पाशुपत, कालामुख व कापालिक मत- इनके संस्थापक लकुलीश या नकुलीश हैं। गुजरात एवं राजपूताना में इस सम्प्रदाय के

---

1. पञ्चयज्ञं पञ्चकालकर्तृपक्षे पञ्चरात्रिकम्, महाभारत, नारायणीयपर्व, 12/338/4.
2. मोक्षधर्मपर्व, 12/336/76.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुयायी मिलते हैं। इस आगम का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पाशुपत सूत्र' पर कौण्डिल्यकृत भाष्य है।[१] कापालिक्स एण्ड कालामुखस् सम्प्रदायों के लिए डॉ. डेविड एण्ड लोरेंजन का ग्रन्थ उल्लेखनीय है।[२]

२. शैव सिद्धान्त- दक्षिण का तमिल प्रदेश इस सिद्धान्त का प्रमुख प्रचार-प्रसार केन्द्र है। तमिल भाषा में शैव सिद्धान्त का प्रामाणिक ग्रन्थ तिरुमूलर द्वारा रचित 'तिरुमन्दिरम्' है। भगवान् शंकर के पञ्च मुखों से (सद्योजात, वामदेव, अघोर, ईशान और तत्पुरुष) अट्ठाईस तन्त्रों का उद्भव हुआ था। अनेक उपागमों से इनकी संख्या दो सौ आठ हो जाती है। प्रमुख ग्रन्थ तत्त्वप्रकाश भोजदेव, नादकारिका रामकण्ठ, श्रीकण्ठ का रत्नत्रयअष्टप्रकरण के नाम से विख्यात है।

३. वीरशैव मत- कर्नाटक प्रदेश में पल्लवित होने वाले इस सिद्धान्त को लिंगायत या जंगम के नाम से भी जाना जाता है। वाराणसी के जंगमवाड़ी में इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित साधक अनुयायी रहते हैं। प्रमुख ग्रन्थ श्री शिवयोगी शिवाचार्य की 'सिद्धान्तशिखामणि' हैं। यहाँ से इस सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ- मुकुटागम, किरणागम, पारमेश्वरागम प्रकाशित हैं।

४. प्रत्यभिज्ञा मत- काश्मीर में उगने वाला यह अद्वैत, दर्शन, स्पन्द, विज्ञान तथा षड्धर्मशास्त्र आदि नामों से सुविख्यात है। दुर्वासा ऋषि आदि आचार्य थे। दुर्वासा ने 'त्र्यम्बकादित्य' नामक मानस पुत्र उत्पन करके इस शास्त्र का प्रचार कराया। सोमानन्द की शिवदृष्टि, उत्पलदेव की ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका एवं अभिनवगुप्त का तन्त्रालोक, परमार्थसार, ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी, क्षेमराज का प्रत्यभिज्ञाहृदय आदि प्रमुख हैं।

कश्मीर की शैव संस्कृति में कुल और क्रम-मत पर सद्यः प्रकाशित डॉ. नवजीवन रस्तोगी की कृति विशद प्रकाश डालती है।[३]

शाक्तागम-

भगवती आदिशक्ति जगज्जननी के आराधना विषयक आगम शाक्तागम कहलाते हैं। शाक्त तन्त्रों की संख्या चौंसठ मानी गयी है-

---

1. सम्पादक- आर.अनन्त कृष्णशास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, 1940 ई.
2. हिस्ट्री ऑफ शैवकल्टस् इन नार्दन इण्डिया, डॉ. वी.एस. पाठक, अविनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980 ई.।
3. प्रकाशक- डी.के. प्रिण्टवर्ल्ड (प्रा.) लि., श्रीकुञ्ज एफ.52, बालीनगर, रमेश नगर मेट्रो स्टेशन, नई-दिल्ली, 015, 2011 ई.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनम्।

(सौन्दर्यलहरी, ३१)

चतुःषष्टी च तन्त्राणि मातृणामुत्तमानि च।

(कुलचूडामणितन्त्र, १/४)

चतुःषष्टिश्च तन्त्राणि मातृणामुत्तमानि तु।

(नित्याषोडशिकार्णव)

कहीं-कहीं विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता तथा अश्वक्रान्ता- इन नामों से पृथक्-पृथक् चौंसठ भेद किये गये हैं। इस प्रकार शाक्तागमों का भी अत्यधिक विस्तार है।

'शक्तिक्रीडा जगत्सर्वम्'- सम्पूर्ण जगत् शक्ति की क्रीडा (लीला) है। शाक्त तंत्र का कामाख्य, काञ्ची तथा काश्मीर प्रमुख केन्द्र हैं। इन 'स्थलों' की पूजा में भी पर्याप्त मतभेद हैं। 'शक्तिसंगम तन्त्र' के कालीखण्ड में बताया गया है कि पञ्चमकारों का निवेश केवल कामाख्या में प्रचलित था, केरल में इसके स्थान पर दुग्ध आदि अनुकल्पों का प्रयोग था। काश्मीर में इन द्रव्यों की भावना मात्र से कार्य सम्पन्न हो जाता था।[१] काशी तीनों प्रमाणों का मध्य बिन्दु है। शाक्त तन्त्र का सम्बन्ध अथर्ववेद के 'सौभाग्य काण्ड' से जोड़ा जाता है। शाक्तागम के **दक्षिणाचार** तथा **वामाचार**- ये दो प्रमुख भेद हैं। महर्षि अगस्त्य का शक्तिसूत्र त्रिपुरा सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। श्रीविद्या का प्रधान ग्रन्थ 'परशुरामकल्पसूत्र' है।

गाणपत्यागम-

भारतीय धर्मोपासना के इतिहास में श्रीगणेश का सर्वप्रथम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ के जनजीवन में भगवान् गणपति की उपासना अनादि काल से चली आ रही है। निगमागम साहित्य में गणपति के विराट् और सर्वाकर्षक रूप रूपायित हुए हैं। भारत के नगरों, गाँवों तथा घरों में गणपतिमूर्तियाँ प्रतिमों तथा चित्र पूजित-अर्चित होते हैं। गणपति स्वतन्त्रता के आराध्य देव हैं। लोकमान्य तिलक ने गणेशोत्सवों के माध्यम से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए देश की जनता को 'गणपति वप्पा मोरया' के बुलन्द जयघोष से आवाहित किया था।

गणेश, गणपति, विनायक, सुमुख, एकदन्त, गणाधिप, हेरम्ब, लम्बोदर, विकट, धूम्रकेतु, गजानन, विघ्नेश, परशुपाणि, गजास्य, शूर्पकर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा मूषकध्वज आदि अनेक नाम हैं। इनको परब्रह्म मानकर की जाने वाली उपासना गाणपत्य-सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है।

श्रीगणपति तत्त्व की विवेचना करते हुए जपसूत्रम् में निर्दिष्ट है-

नादबिन्दुकलात्मा यः प्रणवादिवपुश्च यः।
गिरां चतुष्टयं यस्य चत्वारो बहवः क्रमात्।।
शङ्खेन वैखरीं वाचं गदया मध्यमां गिरम्।
सुदर्शनेन पश्यन्तीं पद्मेन च परां भ्रियात्।।

एकदन्त उदग्रेण दता व्यामोहदारकः।
मूषिको वाहनं यस्य सोऽव्याद् रहस्यविग्रहः।।

अर्थात् जो नादबिन्दु कलात्मा है, प्रणवादि बीज-यन्त्र जिनका शरीर है, वाक्चतुष्टय जिनके चार बाहु हैं। उन गणपति का स्मरण करता हूँ। वे शंख द्वारा वैखरी, गदा द्वारा मध्यमा, सुदर्शन चक्र द्वारा पश्यन्ती एवं पद्म के द्वारा परा वाक् का भरण कर रहे हैं। वे रहस्यविग्रह (Mystic Figure) भगवान् एकदन्त अपने उदग्र दन्त द्वारा व्यामोह का विदारण किया करते हैं। मूषिक उनका वाहन है, वे हमारी रक्षा करें।

द्वे रूपे मूषिकस्यास्य सितासितेऽखिलात्मनः।
कृत्स्नच्छिदश्च भूतानामन्तःकुहरगाहिनः।।
नक्तन्दिवश्च सर्वेषामायुर्मूलानि कृन्ततः।।

अर्थात् उनका वाहन मूषिक अखिलात्मा विश्वरूप है, उस मूषिक के शुक्ल और कृष्ण दो रूप हैं। वे निखिलभूतो के अन्तःकुहर में प्रविष्ट होकर समस्त (सबकुछ का) 'कृन्तन' अर्थात् छेदन कर रहे हैं, एवं रात्रि और दिवा (कृष्ण और शुक्ल) इन दो रूपों में चराचर सर्वभूतों के आयु के ूल को काट रहे हैं।

व्यस्तौ च विषमौ यौ तु नासाविवरचारिणौ।
रूपे मूषिकवर्यस्य तौ जानीयाद् विशेषतः।।

अर्थात्- प्राणी को नासाविवरचारी व्यस्त और विषम जो दो वायु है- प्राण और अपान- उन दोनों को विशेष भाव से मूषिकवर का रूप समझें अर्थात् इतस्ततः विक्षिप्त भाव से नासिका-रूप छिद्र में जो प्राण और अपान वायु एक बार प्रविष्ट हो रहा है और फिर बाहर आ रहा है, वही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानो मूषिक का प्रकट रूप है, क्योंकि इसी के द्वारा समस्त प्राणियों को आयु अज्ञात-रूप से क्षय व नाश को प्राप्त हो रही है।

समासेन समत्वेन संयमेन समीहया।
ततोः सन्धौ समारोहं नादबिन्दुकलात्मनः।।
ओङ्कारस्य विजानीत मातृकागणगीष्यतेः।
समावृत्तिं गणेशस्य या बहुश्रेयसी मता।।

अर्थात- प्राणसंयम और मनः संगम के द्वारा इस व्यस्त और विषय वायुद्वय को समास-समता बनाकर, उसकी जो स्थिर सन्धि है, उसमें समारोहण करना होगा। जो नाद-बिन्दु-कलात्मा ओङ्कार है, वे मातृकागण-वाचस्पति स्वयं गणेश हैं अर्थात् गणेश ही ॐकार को प्रकट मूर्ति है। प्राण, मन के संयमन द्वारा व्यासविषमता का परिहार करके समास-समता में ओंकार की शान्त स्वरूप में स्थिति- इसे ही समावृत्ति समझें। इस प्रकार की समावृत्ति प्रभूत श्रेयोलाभ का हेतु है।[१]

भगवान् गणेश सभी प्रकार के विघ्नों के निवारक तथा चिन्तित मनोरथ को पूर्ण करने में प्रसिद्ध हैं। महानिर्वाणतन्त्र में गणेश ध्यान-पूजन की विधि प्रतिपादित है।[२] पाञ्चरात्रागम के विष्वक्सेनसंहिता में नारायण एवं विघ्नेश का अभेद स्वरूप निर्दिष्ट है-

योऽसौ नारायणः साक्षात् स हि विघ्नेश उच्यते।
योऽसौ विघ्नेश इत्युक्तः स हि नारायण स्मृतः।।[३]

इन पंक्तियों के लेखक द्वारा 'निगमागमीय गणपतितत्त्व विमर्श' शीर्षक से एक विस्तृत शोध निबन्ध लिखा गया है। सुधीजन यथास्थान देख सकते हैं।[४]

---

1. जपसूत्रम्, प्रथमखण्डः, स्वामी प्रत्यागात्मानन्द सरस्वती, अनुवादक एवं सम्पादक- डॉ. प्रेमलता शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-01, प्रथम संस्करण 1966 ई., उपोद्घातः, पृष्ठ 161-164.
2. महानिर्वाणतन्त्र, 13/144.
3. विष्वक्सेनसंहिता, 10/114-116
4. श्रीविद्यामन्त्रमहायोग, श्रीविद्या साधना पीठ, नगवाँ, वाराणसी, अगस्त 2016, पृष्ठ 1-28.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय- २

स्कान्द-आगम

वेद के तीन काण्ड कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड होने के कारण इसका त्रयी नाम अन्वर्थ है। इसी कारण इसको "निःशेषेण गमो बोधो यस्मात् स निगमः" इस तरह से वेद तीनों काण्डों का सम्यग् बोध कराता है। जबकि "आ ईषत् अंशतो (उपासना मात्र) गमो बोधो यस्मात् स आगमः"। इसी कारण आगम-निगम का बोध साथ-साथ होता है। आगमशास्त्र गुरु-शिष्य परम्परा से आगे बढता है। वेद भी श्रुति परम्परा से आगे बढता है। म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का कहना है कि 'अव्यक्त से दो प्रकार की सृष्टिओं का बोध होता है।[1] यहाँ अव्यक्त शक्ति चित् शक्ति का ही उद्घोष करती है। वायु पुराण का कथन है कि-"मनो महान् मतिर्ब्रह्म पूर्व बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः। प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संविद् विपुरं चोच्यते बुधैः।"[2] आचार्य जयरथ ने तन्त्रालोक की विवेक व्याख्या के प्रसङ्ग में आगम को अविगीत कहा है-

प्रसिद्धिरागमो लोके युक्तिमानथवेतरः।
विद्यायामथाविद्यायां प्रमाणमविगानतः।।
प्रसिद्धिरविगीता हि सत्या वागैश्वरी मता।
तथा तत्र यथासिद्धं तद् ग्राह्यमविशङ्कितैः।।[3]

महर्षि पतञ्जलि ने भी व्याकरण के अध्ययन के उद्देश्य में 'आगमः खलु एतत्' कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि वेद के अध्ययन के लिए भी आगम का अध्ययन आवश्यक है। भट्ट जयन्त ने आगम प्रमाण पर विचार करते हुए यह कहा है कि निगम के समान आगम भी परमेश्वर का ही वाक्य है। मौलिक रूप मे आगम और निगम दोनों का प्राथमिक उपदेश सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापतियों को भावी सामाजिक अधिकारियों को ध्यान में रखकर करुणावरुणालय परमेश्वर ही देते हैं। तदनुसार दोनों ही समानरूप में मान्य हैं।

---

1. वायुपुराण, 4/7
2. तथैव, 4/25
3. तन्त्रालोक विवेक व्याख्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति के विषय में भी यह कहा जाता है कि परम्परा के लुप्त हो जाने पर श्रुतियों का नाश नहीं होता, वे सूर्य में समाहित हो जाती हैं। प्रमाणस्वरूप याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना से लुप्त शुक्लयजुर्वेद को प्राप्त किया। इसका अभिप्राय यह है कि कोई भी ज्ञान या विद्या नष्ट नहीं होती। उसकी परम्परा नष्ट हो सकती है किन्तु बीजरूप में स्थिर रहती है और साधक या उपासक गण उसे तत्तत् शक्तियों से प्राप्त करते रहते हैं। सृष्टि की भी यही प्रक्रिया है। सृष्टि तिरोहित हो जाती है और उसी के साथ समाहित हो जाती हैं। सभी ज्ञान तथा विद्याएँ और पुनः सृष्टि के आविर्भाव के काल में सप्तर्षियों के माध्यम से पुनः मनुष्यों को प्राप्त होती हैं। इसी को मनु ने "वेदशब्दादिभ्यो एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे"[१] कहा है। हाल ही में अमेरिका मेसेच्यूट के एक वैज्ञानिक ने अपने शोध से यह सिद्ध किया है कि मानव का नाडीतन्त्र वेद से ही बना है। श्रीमद्भागवत में निगम और आगम को एक ही वृक्ष के दो फल कहा है। पं. बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते का कथन है कि इसीलिए अनेक स्थानों पर आगमों में श्रुतियों का अनुवाद पाया जाता है। ये दोनों परस्पर पूरक हैं, बाधक नहीं।[२] अभिनवगुप्त पादाचार्य ने भी "आगमस्तु अनवच्छिन्नमाहेश्वरप्रकाशपरमार्थः" कहकर इस कथन की पुष्टि की है। इसीलिए मालूम होता है कि कुल्लूकभट्ट जैसे विद्वान् ने भी मनुस्मृति की टीका में वैदिकी तान्त्रिकीश्चेति द्विविधा श्रुति- रुच्यते कहा है।[३]

आगम साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है। इनमें उपासना की अनेक पद्धतियों का समावेश है। शङ्कराचार्य ने चतुःषष्टितन्त्र का उल्लेख किया है। किन्तु इनकी संख्या इतनी ही नहीं है। उपास्य देवता के आधार पर विभिन्न आगमों का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा- शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन तथा बौद्धागमों का सविस्तर विवेचन तत्तद् ग्रन्थों में प्रस्तुत हैं। भगवान् कार्त्तिकेय (सुब्रह्मण्य) की उपासना प्राचीन काल से ही समग्र भारत में प्रचलित है। यह उत्तर में काश्मीर-मण्डल तथा दक्षिण में कुमारिका-क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठित है। इनके नाम से अनेक विशिष्ट देवालय तथा तीर्थ आज भी वहाँ देखे जाते हैं। उत्तर भारत में ब्रह्मचारी कार्त्तिकेय के रूप में इस देवता की उपासना होती है तो दक्षिण में विशेषतया तमिल प्रदेशों में दो

1. मनुस्मृति 1/27
2. वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः। त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत्।। श्रीमद्भागवत् पुराण / 11
3. मनुस्मृति 2/1 टीका कुल्लूकभट्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवियों के पति सुब्रह्मण्य या मुरुगन के नाम से बड़ी श्रद्धा के साथ इनकी पूजा-आराधना की जाती है। कार्त्तिकेय, सुब्रह्मण्य, मुरुगन, षण्मुख, गुह, कुमार तथा स्कन्द आदि कई नामों से सुविख्यात इस देवता को परब्रह्म मानकर की जानेवाली उपासना-पद्धति "कौमारम्" नाम से अभिहित है।[१]

आगम के उद्गम एवं स्वरूप निर्धारण हेतु बहुश्रुत सुप्रसिद्ध श्लोक-

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुते।
मतं च कार्त्तिकेयेन तस्मादागमुच्यते।।

ललितागम में निर्दिष्ट है कि-

"ललितं ललितोत्तरम् कौमारमिति" त्रया भेदाः उक्ताः।

ईश्वर ही स्वविद्या गुरु के रूप में कुमार के पूजा-क्रियाविधि प्रतिपादन तन्त्र को करबद्धाञ्जलि होकर प्रार्थना करने पर कौशिक को उपदेशित किया-

यत् त्वया चोदितं तन्त्रं तत्प्रवक्ष्यामि कौशिक।
कुमारतन्त्रमधुना नित्यं नैमित्तिकं ततः।[२]

कार्त्तिकेय की पूजा का उल्लेख आधुनिक प्रचलित पुस्तकों में भी पाया जाता है जैसे-दुर्गासप्तशती में उनकी शक्ति 'गुहरूपिणी' 'कौमारी शिखिवाहना' का उल्लेख है। भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने 'सेनानीनामहं स्कन्दः' कहा है। इससे सुस्पष्ट होता है कि शक्ति तथा शक्तिमान् दोनों रूपों में कार्त्तिकेय की उपासना प्रचलित है। यह भी ध्यातव्य है कि इनका सम्बन्ध युद्ध के अवसर पर ही माना जाता है। यद्यपि मृच्छकटिक नाटक में शर्विलक नामक चोर ने इनको अपना आराध्यदेव बताया है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में इनका जो स्वरूप था वह धीरे-धीरे परिवर्तित होकर आराध्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। विद्वानों ने विभिन्न नामों के आधार पर इनको अग्नि, कृत्तिकाओं तथा इन्द्र आदि की सन्तान माना है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इतिहास ज्ञान के दो मूल स्रोत हैं एक खुदाई से प्राप्त मूर्त्तियाँ, दूसरे वेदादि प्राचीन साहित्य। एक तीसरी विद्या भी देखी जा सकती है जो पारम्परिक पूजाओं में प्रचलित है। मोहन जोदड़ो की खुदाई में एक सील प्राप्त हुई है जिसे फादर हेरास ने 'मुरुगन अडु' पाया है जिसको मुरुगन से जोड़ा है, जिनका प्राचीन नाम द्रविडियन नाम सुब्रह्मण्य स्कन्द है।[३] दुर्भाग्यवश प्राप्त सील ठीक से पढी नहीं जा सकती। सिन्धु की घाटी में एक

---

1. विष्णुसंहिता - 2/20.
2. कुमारतन्त्र, भूमिका, पृ. 6.
3. The Velas of Mohanjo-daro, F.Heras, New Indian Antiquary,Vol 1, P.52

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य सील प्राप्त हुई है, जिसमें पशुपत और नटराज उल्लिखित है। अनुमान लगाया जा सकता है कि यह संस्कृति हडप्पा संस्कृति से मिलती जुलती है। अरमुथन ने अन्य देवताओं का इससे परिचय प्राप्त करने का प्रयास किया है। इस सील में देवता पीपल के पेड़ के साथ हैं और एक घुटने के बल पर झुके हुए हैं तथा अनेक सिर उन दोनों के बीच में खड़े हैं। एक मनुष्य एक बकरे को लेकर पीछे खड़ा है, उसकी भूमिका में सात स्त्रियाँ हैं। स्त्रियों तथा पुरुषों के सिर स्पष्टरूप से दिखाई देते हैं। यहाँ बकरे को अग्नि का प्रतीक माना गया है तथा सात स्त्रियाँ सप्त कृतिकाएँ हैं। अश्वत्थ वृक्ष की शाखाएं ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख हैं जैसा कि कठोपनिषद् में प्रतिपादित है।[१] सील में ब्रह्म को देवता माना गया है जिन्होंने राक्षस का नाश करके इन्द्र पद प्राप्त किया है।[२] जो कार्त्तिकेय है तथा वे कार्त्तिकेय के रूप में सुब्रह्मण्यम् के सिद्धान्त की शिक्षा दे रहे हैं।[३] महाभारत में स्कन्द का स्तवन पुरुषसूक्त के पदान्वय के साथ किया गया है।[४] शिवपुत्र षडानन को समस्त सिद्धान्तागमों का ज्ञाता बताया गया है। इतना ही नहीं, काश्मीरागम के प्रसिद्ध ग्रन्थ मालिनीविजयतन्त्र के उपदेष्टा भी यही है कि तारकासुर का वध करने वाले एवं संसार सागर में निमग्न जीवों को तारकर उद्धार करने वाले भगवान् कार्त्तिकेय ही हैं।[५]

श्री अरमुथन के अनुसार केनोपनिषद् के आधार पर कार्त्तिकेय इन्द्र के प्रतीरूप हैं किन्तु विद्वानों का यह मानना है कि अश्वत्थ वृक्ष स्वतः एक दैवीरूप माना जाता है और विश्व की लगभग प्रत्येक प्राचीन संस्कृतियों ने अश्वत्थ को पवित्र वृक्ष माना है।[६] उस मुद्रा में अश्वत्थ के निकट सात मूर्तियाँ दिखाई देती हैं उन्हें कृतिका के रूप में माना गया है और इसीलिए इनका नाम कार्त्तिकेय पड़ा है। किन्तु मुद्रा के देखने से ये आकृतियाँ स्त्री नहीं प्रतीत होती, दूसरी बात यह है कि भक्तिभाव से झुके हुए ये चित्र किसी भक्त के हो सकते हैं जो या तो राजा हो या पुजारी हो। देव की आकृतियाँ नहीं हो सकती। अतः निष्कर्ष

---

1. कठोपनिषद् 6/1
2. केनोपनिषद् 3/4
3. Gods of Harappa by T.G. Aravamuthan, J.Bihar Res. Soe. 1948, pp.30
4. सहस्रशीर्षस्त्वमनन्तरूपः, सहस्रपात् त्वं गुह शक्तिधारी।
   गङ्गासुतस्त्वं स्वमतेन देव, स्वाहा महीकृत्तिकानां तथैव।। महाभारत वनपर्व 232/1
5. जगदर्णवमग्नानां तारकं तारतान्तकम्। कार्त्तिकेयात् समासाद्य ज्ञानामृतमिदं महत्।।
   मालिनीविजयतन्त्र-(1.2),(23/43)
6. (अ) अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्, गीता 10/26
   (ब) ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्, गीता 15/1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकलता है कि अभी तक पूर्णरूप से इन मुद्राकृतियों का स्पष्ट विश्लेषण नहीं हो सका है। इसलिए इस पर पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता।[१]

श्री ए.पी.कर्मकर ने मुर्गा शब्द को ढूँढ निकाला है जोकि इनका 'कार्त्तिकेय' तमिल भाषा का नाम है। ऋग्वेद में 'मूरदेवः' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है।[२]

कुछ विद्वानों ने यह माना है कि स्कन्द अलेक्जेण्डर का संस्कृत रूप है, किन्तु ऐसा ऐतिहासिक दृष्टि से न तो इसकी कोई संगति है और न ही औचित्य है। यहाँ तक कि अलेक्जेण्डर को छान्दोग्योपनिषद् में उल्लिखित सनत्कुमार से जोड़ा है, किन्तु उपनिषद् यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर से शताब्दियों पूर्व है। वैदिक संहिता में स्कन्द नाम का उल्लेख नहीं है। कुछ नाम जैसे- चस्कन्द, स्कन्द आदि प्राप्त होते हैं जिनको पाणिनि धातु पाठ के 'स्कन्दिर' धातु से निष्पन्न माना गया है। इण्डो ईरानियन मूल में उल्लिखित पुस्तक अवेस्ता में स्कन्दों का उल्लेख है[३] जिसका अनुवाद विद्वानों ने विनाश माना है। निश्चितरूप से परवर्तीकाल में स्कन्द को विनाशक माना गया है। किन्तु अवेस्ता से इनका दूर-दूर तक सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

ऋग्वेद में कुमार शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। इसके उपर किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। जब भी अग्नि के साथ कुमार शब्द का प्रयोग होता है तो उसका प्रयोग बालक या युवा होता है। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि कुमार शब्द का प्रयोग है। कुमार नामक देव का वैदिक परम्परा में मूल रूप में यहीं से विकास प्रतीत होता है। हापकिन्स ने एपिक माइथालजी में कहा है कि कुमार एक मिश्रित देवता है। प्रथमरूप में ये अग्नि कुमार थे जिसका अभिप्राय यह है कि ये सदैव युवावस्था में रहते हैं। अग्नि सदैव युवा रहते हैं जो सभी प्रकार के कष्ट को समूल विनाश कर देते हैं।[४] कुमार शब्द ऋग्वेद में सत्रह बार प्रयुक्त

---

1. स्कान्द कार्त्तिकेय, पृथ्वी कुमार अग्रवाल-भूमिका 13
2. ऋग्वेद 7/104/24, 10/87/02,14 Dravidian systems honavala,1950,p.128 by A.P. Karmarkar.
3. The new hight of Gathas of Holy Zarathushtra, pp 46, 265, 769, Tarapurvala, I.J.S. the Divine songs of Zarathushtra, p-164
4. Fpic Mythology, by Hopkins, E, W. pp. 229

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ है।[१] मूलरूप से इस शब्द का अभिप्राय बालक तथा युवा से है। अग्नि के साथ इनका सम्बन्ध अग्नि के दाहकता एवं तेज से सम्बन्धित लगता है। मन्त्र ५/७ में कुमार शब्द एक नाम के रूप में प्रतीत होता है किन्तु कहीं से इसका सत्यापन सम्भव नहीं है फिर भी यह अग्नि के लिए ही प्रयुक्त होता है। कुमार का वर्णन १७वें मन्त्र से स्पष्ट प्रतीत होता है। आचार्य सायण ने इसकी टीका में यह स्पष्ट किया है कि सर्वानुक्रमणी के अनुसार यह सूक्त अग्नि को समर्पित है और बाद में इन्हीं को कुमार कहा जाने लगा।[२] आधुनिक वेद व्याख्याकार विल्सन, ग्रिफ़िथ तथा गेल्डनर ने इस मन्त्र को अत्यन्त रहस्यमय कहा है फिर भी इसका प्रतीकात्मक अर्थ उन्होंने अग्नि के प्रज्वलित करने से लिया है। सायण ने शाङ्खायनब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण तथा बृहद्देवता के आधार पेषी शब्द का अर्थ पिशाची किया है किन्तु कहीं से इसकी संगति नहीं बैठती। कुमार का एक नाम गुह है, जिसका अभिप्राय है गुह्य, जिसका विद्वानों ने यह अर्थ निकाला है कि इनकी माँ ने उत्पन्न होने के अनन्तर इनके पिता को इन्हें नहीं दिखाया लेकिन यह उक्ति तर्क संगत नहीं बैठती।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में अग्नि की उपमा द्वारा कुमार के विषय में यह स्पष्ट किया है कि वह माँ की गोदी में छिपे हुए थे।[३] इसीलिए इसे गुह्यम् कहना अनुकूल लगता है। इसी मण्डल के १३५वें सूक्त में कुमार एक स्वतन्त्र देवता के रूप में वर्णित हैं, यहाँ ये यम के रूप में प्रयुक्त हैं जो मृत्यु के देवता हैं।[४] यम को अग्नि का भी स्वरूप माना जाता है।[५] तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार नचिकेतोपाख्यान का यह मूलरूप है।[६] नचिकेतोपाख्यान कठोपनिषद् में प्राप्त

---

1. कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।भूरेर्दातारं सप्रतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रायस्मे।।2/33/12,वोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः। अच्छा नहुत उदरम्। उतत्या यजता हरि कुमारात् साहदेव्यत्। प्रभता सद्य आददे एष वा देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः। दीर्घायुरतस्तु कृणोतान्।। तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम्। दीर्घायुषं कृणोतन्।। 4/15/7, 8, 9, 10, 5/2/1, 2, 5/78/9, 6/75/17, 8/31/8, 10/34/7, 10/79/3, 10/135/3, 4, 5
2. सूक्तस्य आग्नेयत्वात् कुमार इत्यग्निरुच्यते ऋग्वेद 5/2/1 पर सायण भाष्य
3. ऋग्वेद 10/79/3
4. तत्रैव 10/135/7
5. तत्रैव 1/66/8
6. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/11/8

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है जहाँ नचिकेता वाजश्रवा का पुत्र है उसे कुमार कहा गया है।[१] यहाँ इन्हें कुमार कहा गया है और इनका सम्बन्ध अग्नि से जोड़ा गया है।

ऋग्वेद में अग्नि की अनेक माताओं का उल्लेख है।[२] इसका अभिप्राय अग्नि की सात माताओं का उल्लेख भी है। यही यदि यजुर्वेद की परम्परा का विचार करके देखा जाय तो ये स्कन्द की सात माताओं से हो जाता है।[३] इन सबको ऋषि पत्नियाँ भी कहा जाता है। ये स्कन्द की सात माताएँ हो सकती हैं। इनके कारण परवर्ती कालों में अर्थात् पौराणिक काल में स्कन्द को छः सिरों से युक्त माना गया है। दूसरा शब्द गुह्य 'गुह' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका तात्पर्य छिपा हुआ है। ऋग्वेद में गुह को रहस्यमय मानते हुए स्कन्द का नाम गुह दिया गया है। अरमुथन महोदय को इनका सम्बन्ध अपाम नपात् तथा सोम से भी प्रतीत होता है।[४] अपाम नपात् जल से उत्पन्न हुए हैं उन्होंने अपने को जल के गर्भ में उत्पन्न किया और युवा तथा सुन्दर हैं।[५] सोम भी जल से ही उत्पन्न हुए हैं। सद्यःजात है कि जिनको सात बहनों ने मातृत्व दिया है। वह भी युवा है और जल से ही उत्पन्न हैं।[६]

अथर्ववेद में 'कुमार' गन्धर्व के रूप में चित्रित हैं। जिनके संवारे गये केश हैं। उनका स्वरूप बन्दर तथा कुत्ते का है जो एक ज्योति के पीछे जा रहे हैं।[७] प्रजापति ने उनका नाम रुद्र रखा है क्योंकि वे रो रहे थे। तत्पश्चात् उनका नाम भव, शर्व, पशुपति, उग्र, महादेव, ईशान तथा अशनि रखा। ये ८ नाम अग्नि के भी हैं। चूँकि इनका स्वरूप विचित्र तथा चमकीला था इसलिए प्रजापति ने इनका नाम चित्र भी दिया। यह नाम प्रथम बार ऋग्वेद में अग्नि के लिए ही प्रयुक्त है जहाँ पर अग्नि को चित्र शिशु अर्थात् अद्भुत शिशु कहा गया है।[८] अग्नि का यह नाम भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[९]

---

1. कठोपनिषद् 1/1/1,1/1/2
2. ऋग्वेद 1/31/2,1/92/2
3. वाजसनेयी संहिता 17/79
4. ऋग्वेद 1/186/5, 1/39/1
5 तत्रैव 2/35/4,5,11
6. तत्रैव 9/61/4, 5/45/9
7. अथर्ववेद 4/31/11
8. ऋग्वेद 10/1/2
9. तत्रैव 5/10/12, 6/15/2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत वनपर्व में स्पष्ट किया गया है कि स्कन्द जो अद्भुत हैं वे अद्भुत अग्नि के ही पुत्र हैं।[१]

शतपथब्राह्मण में प्रजापति ने कुमार अग्नि के लिए बकरे तथा बकरी की बलि दी,[२] क्योंकि ये पशु ब्राह्मण ग्रन्थों में पवित्र माने जाते हैं। अथर्ववेद में अज को अग्नि का स्वरूप माना गया है।[३] महाकाव्यों में इनको नैगमेष कहा गया है और स्कन्द को अजशीर्ष के रूप में दिखाया गया है।[४] अज एकपाद के प्रयोग को देखकर आपातकाल से जोड़ लिया गया है जो उचित नहीं प्रतीत होता है।

ईसा पूर्व लगभग ३००वर्ष साधना जगत् में एक अद्भुत प्रादुर्भाव हुआ। उस काल में देव गायत्रियों का आविर्भाव हुआ। कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में इन गायत्रियों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। उत्तरकाल में स्कन्द गायत्रियों का नाम जुड़ा। मैत्रायणी संहिता में **'सनत्कुमाराय विद्महे कार्त्तिकेयाय धीमहि तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्।'**[५] छान्दोग्योपनिषद् में स्कन्द का एक दूसरा नाम सनत्कुमार भी मिलता है।[६]

कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि औपनिषदिक दर्शन का आविर्भाव वैदिक यज्ञयागादि के विरोध में हुआ[७] क्योंकि अनेक क्षत्रिय राजाओं ने इसका उपदेश किया।[८] किन्तु ब्राह्म क्षत्रिय विरोध और उस विरोध में अन्य परम्पराओं की स्थापना करने के सन्दर्भ में कोई प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। इसका आधार संशयात्मक प्रतीत होता है क्योंकि परवर्ती काल में भी क्षत्रियों के राज्य में एक अङ्ग पुरोहित का होता था जो ब्राह्मण ही होता था। यह भी ध्यातव्य है कि सनत्कुमार का सम्बन्ध क्षत्रियों से जोड़ा जाय तो इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि सनत्कुमार कभी राजा थे। छान्दोग्योपनिषद् में भी स्कन्द को सेनानी के रूप में नहीं दिखाया गया है।

---

1. महाभारत वनपर्व 3/213/2, मारकण्डेय पुराण 94/7
2. शतपथ ब्राह्मण 6/4/4/15, गोपथ ब्राह्मण 2/3/19
3. अथर्ववेद 9/5/7
4. महाभारत 1/66,2566
5. मैत्रायणीसंहिता 2/9/1/2
6. छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2
7. Religion & Philosophy of Vedas & Upnishads, vol.2, by A.B. Kieth pp. 492-494
8. Ibid, pp. 310

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द सनत ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[१] वहाँ इसका अर्थ अनन्त है। ऋग्वेद में ही इनके दो नामों का उल्लेख है सनक तथा सनातन।[२] छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार ने नारद को अध्यात्म का उपदेश दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सनत्कुमार ज्ञानी , ब्रह्मचारी तथा तपस्वी थे। पालिनिकाय में भी सनत्कुमार का उल्लेख है।वहाँ इनको ब्रह्मा कहा गया है जो एक सफल वक्ता है और भाषागत ८ दोषों से निवृत्त है।[३] सनत्कुमार ने भी 'पञ्च सिक्खो' पाँच शिक्षाओं का उपदेश किया था। इससे यह प्रमाणित होता है कि उपनिषदों के सनत्कुमार तथा पालिनिकायों में प्रयुक्त सनत्कुमार एक ही है। तक्कारिजातक में उपदेष्टाओं और ऋषियों को ब्राह्मण के स्तर से देखा गया है।[४] इसलिए इनको निश्चितरूप से क्षत्रिय मानना युक्तिसंगत नहीं है।

पिप्पलादसंहिता में स्कन्द की निष्पत्ति देते हुए यह उल्लेख किया गया है कि इसका अर्थ गमन तथा शोषण है।[५] यह बात है पाणिनी धातु पाठ के आधार पर 'स्कन्दिर' धातु से निष्पन्न है।[६] वहाँ इसकी तुलना अग्नि से की गयी है। अग्नि का गुण प्रकाश करना तथा किसी वस्तु को सुखा देना या शोषण करना तथा उसे आत्मरूप बना देना है। पिप्पलादसंहिता के निरुक्त के अनुसार अग्नि का आह्वान दैत्य तथा यक्ष्मा के निवारण के लिए किया जाता है। इसका अर्थ हुआ 'अपस्कन्दयतु' अप शब्द स्कन्दिर में जोड़ने पर सनत्कुमार के भी ये ही गुण दिखाई देते हैं। वैदिक साहित्य में अग्नि का दैत्यनिवारणार्थ आह्वान अथर्ववेद में किया गया है।[१] अग्नि में ज्वलनशीलता है इसी आधार पर बीमारियों तथा दैत्यों का नाश करता है। स्कन्द का भी ज्वलनशील स्वभाव है, इसीलिए इस शोषण प्रक्रिया के आधार पर आहुताग्नि देव को स्कन्द भी कहते हैं। रुद्र की भाँति स्कन्द के भी दो पक्ष हैं और दोनों विरोधी हैं। एक ओर तो ये

---

1. ऋग्वेद 2/3/6, 3/3/1
2. (अ) ऋग्वेद 1/33/4,3/29/14,10/69/12
   (ब) तैत्तिरीयसंहिता 4/3/3/1
3. दीर्घनिकाय देवनागरी संस्करण भाग 1 पृ.86,भाग 2 पृ.157-160, भाग 3, पृ.76, संयुक्तनिकाय भाग 1, पृ.53
4. जातक संख्या 481.
5. पिप्पलाद संहिता 2/24/1/5
6. पाणिनि धातु पाठ संख्या 979 स्कन्दिर गतिशोषणयोः।
7. सेनदे. एन. जे., दी फाउण्डेशन आफ दी अथर्वानिक रीलिजन पृ. 15-18

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दैत्यों तथा बीमारीयों का नाश करते हैं दूसरी ओर बीमारियों के नाश करने के कारण ये दुष्टात्मा तथा पवित्रात्मा दोनों माने जाते हैं। बच्चों को परेशान करने वाले भूत-प्रेतों को कुमार या कुमारियाँ कहते हैं। इसलिए इनका एक नाम कुमारी तथा कुमार ग्रह भी है।

पारस्करगृह्यसूत्र में कुमार को दैत्य तथा बीमारियों के रूप में प्रस्तुत किया है जो छोटे बच्चे तथा उनकीं माताओं को उद्विग्न करते थे।[१] सनत्कुमार के माता-पिता का नाम क्रमशः सर्मा, दैवी कुतियाँ तथा सिसर तथा भाईयों का नाम श्याम तथा शबल है जो दोनों यमराज के कुत्ते हैं।[२] डॉ. कीथ का कहना है कि भूत-प्रेतों से निवारण के लिए अनेक प्रकार के उपक्रम किये जाते हैं। कुमार स्कन्द इन आत्माओं में सबसे प्रबल माने गये हैं क्योंकि इसकी वंशावली का क्रम प्राप्त हो गया।[३]

ऋग्वेद के परिशिष्ट में 'निजमेष' का नामोल्लेख है।[४] बन्ध्या स्त्रियों की पुत्र प्राप्ति हेतु ऋग् विधान के खिल मन्त्र के पाठ करने का विधान है। इसमें तीन छन्द हैं जिनका प्रारम्भ निजमेष से होता है[५] और ऋग्वेद १०/१८४/१ में यह बच्चों के लिए प्रार्थना के द्वारा झाड़ने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। आश्वलायनगृह्यसूत्र में इस मन्त्र को अन्य मन्त्रों के साथ सीमन्तोन्नयन संस्कार में गर्भाधान के चार महीने बाद निजमेष का आह्वान किया जाता है।[६] सामविधानब्राह्मण में स्कन्द के साथ विनायक का भी उल्लेख किया गया है।[७] स्कन्द कुमार, सनत्कुमार, इन्द्र, षष्ठी, विशाख, महासेन, षण्मुख, सेनानी, बालग्रह, स्कन्द परिषदों का उल्लेख है।[८] पाणिनि के गणपाठ में स्कन्द और विशाख दोनों नामों का उल्लेख है जिनकी पूजा साथ-साथ होती थी।[९] पतञ्जलि

---

1. पारस्कर गृह्यसूत्र 1/16/24
2. Vedic Mythology by maedonel, pp151,173
3. Religion & Philosophy of Vedas & Upanishad, vol.1,2 by Kith, pp. 240
4. ऋग्वेद 4/13/1
5. ऋग्विधान 4/23/2 सम्पादित गोण्डा पृ. 118
6. आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/14/3
7. सामविधान ब्राह्मण 1/4/6719
8. अग्निवेश्यगृह्यसूत्र 2/6/3:26
9. पाणिनीगणपाठ 2/4/14

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा इस सूत्र की व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि शिव: स्कन्द:- इनकी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं किन्तु ये विक्रय के लिए नहीं होती थी, अपितु जीविकोपार्जन के लिए प्रयुक्त होती थीं।[१] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में नगर के मध्य में अनेक देवों का मन्दिर बनाने का विधान बताया है अपराजित, अप्रतिहत जयन्त, विजयन्त, शिव, वैश्रवय, अश्विन तथा श्रीमन्दिर का उल्लेख है।[२] इन्हीं में सेनापति के नाम का उल्लेख है जो अन्य चार देवताओं के साथ मुख्य द्वार पर स्थापित किये जाते थे।[३]

जयन्त को स्कन्द के रूप में देखा जा सकता है। एक गृह्यसूत्र में 'शूलगव' यज्ञ का उल्लेख है, जिसमें जयन्त को शूलगव का पुत्र कहा गया है।[४] शूलगव रुद्र तथा उनकी पत्नी 'मिघुषी' का नाम है। जातक गाथा में दोनों नाम जयन्त और अपराजिता भी पाये जाते हैं[५] किन्तु एक प्राचीन जैनागमसूत्र में विजय, विजयन्त, जयन्त, अपराजिता तथा सर्वार्थसिद्धिग इन पाँचों को महान् देवता माना गया है।[६] इनमें से प्रथम चार दैवी नाम विजय के प्रतीक हैं जो युद्ध से सम्बन्धित माने जाते हैं जिस युद्ध के स्कन्द देवता हैं।

पालि साहित्य में महासेन तथा गुह नाम पाया जाता है। महासेन का अर्थ है जिसके पास विशाल सेना हो, इसे मृत्यु का विशेषण भी कहा गया है।[७] दीघनिकाय में इन्हीं को 'मार' कहा गया है।[८] महासेन शब्द स्वतन्त्र रूप से स्कन्द के लिए प्रयुक्त देखा जाता है। लेकिन पालि साहित्य में गुह का सम्बन्ध स्कन्द से नहीं माना जाता। दीघनिकाय के अठनाठियसूत्र में गुह को यक्ष के रूप में माना गया है।[९] प्राचीन जैनागमों में एक प्रसिद्ध नाम 'मह' है। जहाँ स्कन्द को खण्डमय (स्कन्दमय) कहा गया है।[१०] आवश्यक चूर्णि को यदि यह माना जाय

1. पतञ्जलि के सूत्रवार्तिक 3/99
2. अर्थशास्त्र 2/3/23 अंग्रेजी अनुवाद पृ.14
3. तत्रैव
4. इण्डिया आफ वैदिककल्प सूत्राज,पृ.434-35,उद्धृत पृथ्वी कुमार अग्रवाल,पृ.17
5. जातक, भाग 2 पृ.53 (1945)
6. उत्तराझियाज,पृ.1087
7. जातकगाथाएं, 2,पृ.166
8. दीघनिकाय,2,7/12
9. तत्रैव 3/9/4, पृ.164
10. णायाधम्म कहा,सम्पादक वैद्य,पृ. 23 रायसणीयसूत्त-कण्डिका 148

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि यह प्राचीन परम्परा है तो खण्ड के सम्मान में एक उत्सव आयोजित होता है जिसमें यह निर्दिष्ट है कि जब स्वामी महावीर श्रावस्ती में जा रहे थे तो उनके उत्सव यात्रा के साथ रथ पर खण्ड (खन्द) की एक प्रतिमा रथ से लायी जाती थी।

श्री फ्रेड डब्ल्यू. क्लोथी ने[१] प्राग्वैदिक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर दैवी पुत्रत्व की (Divinesonship) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। जैसे पर्जन्य[२] द्युसु के पुत्र मरुत तथा सूर्य,[३] वरुण और मित्र दक्ष के पुत्र माने गये हैं।[४] इसके अनुसार पिता पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है और वह पुनः पिता हो जाता है तथा दूसरे पुत्र को उत्पन्न करता है। इस प्रकार पुत्र वंश परम्परा परिवर्धक होता है अर्थात् वह स्वतः ब्रह्मा होता है। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि को प्रजापति का स्वरूप माना गया है यह सर्वप्रथम पिता हैं।[५] रुद्र को बहुशः अग्नि के रूप में उपस्थापित किया गया है[६] और यह कहा गया है कि वह स्कन्द के पिता हैं। वह हिरण्यगर्भ को उत्पन्न करते हैं और स्वयं भी हिरण्यगर्भ हैं।[७] इस प्रकार संस्कृत परम्परा के अनुसार पुत्र केवल उत्पादक ही नहीं है, बल्कि वह स्वयं विश्व है या यों कहा जाय कि वह विश्व का उपादान कारण भी है।

स्कन्द के साथ एक और विचारधारा संयुक्त है जो इनके सेनानी होने के पूर्व से ही इनमें समाहित मानी गयी है। इन्द्र को वैदिक काल का महान् योद्धा माना गया है जिनके पास वज्र है, जिसके द्वारा इन्होंने वृत्रासुर का वधकर बादलों कों वर्षा करने के लिए मुक्त किया। जिससे पृथ्वी की उर्वराशक्ति बढ़ी। अग्नि तथा रुद्र दोनों को ही योद्धा माना गया है। ऋग्वेद में अग्नि को सेना का अग्रगण्य माना गया है (सेनाग्नीः)[८]। रुद्र और अग्नि ने संयुक्तरूप से

---

1. The Many laees of murukam, pp. 47
2. ऋग्वेद 7/102/1
3. तत्रैव, क्रमशः 10/77/2,10/37/1
4. तत्रैव, 8/25/2
5. शतपथ ब्राह्मण 10/2/1/2
6. ऋग्वेद 2/1, शतपथ ब्राह्मण 6/1/3,18, अथर्ववेद 8/8/17,18
7. श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/12
8. ऋग्वेद 10/84,2, अथर्ववेद 3/1/1,3/2/1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिपुरासुरवध के लिए अभियान कर उसका नाश किया था और उसके नगर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था।[१] सैनिक का कार्य है कि धर्म की रक्षा करें, इस रक्षा में शत्रु का विनाश भी सम्मिलित है। अतः सेनानी का कार्य विनाश तथा सर्जन दोनों ही हैं।

स्कन्द का दूसरा पहलू प्राचीन संस्कृत साहित्य में सूर्य के रूप में प्रतिपादित किया गया है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे सृष्टि के उद्भव का स्रोत माना है। समुद्र जो भौमिक गर्भ है या जल का सिद्धान्त आकाश से वितरित किया गया बीज माना गया है। मनु ने भी इसका प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि जल की सृष्टि के अनन्तर ही उसमें शक्तिरूप बीज का प्रक्षेपण किया गया।[२] वही बीज हिरण्यगर्भ या हैमण्ड हुआ उसी में सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्म उत्पन्न हुए।[३] डॉ. अग्रवाल के मत में समुद्र से अनन्त शक्ति के रूप में प्रकट हुआ, जिससे वैश्विक स्पन्दन उत्पन्न हुआ। सूर्य इसी स्वर्णाणु के समकक्ष माना गया जो माता अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुआ तथा समुद्र के मध्य में छिपा हुआ था और वैश्विक सृष्टि के नियमानुसार उसी का उच्छलन हुआ।[४] यह स्वयं उर्वरक था तथा उर्वरकत्व का आधार था। हिरण्यगर्भ में जो मौलिकत्व था, उससे अन्धकारत्व का नाश किया। इस तरह सूर्य का सम्बन्ध यज्ञीय अग्नि से हो जाता है, क्योंकि यज्ञीय अग्नि भी सूर्य की भाँति अन्धकार का नाश करती है। अन्धकार अज्ञान का प्रतीक है जबकि ज्ञान प्रकाश का स्थानापन्न है। यह सिद्धान्त पुत्र-सूर्य-सेनानी के रूप में स्कन्द से जुड़ जाता है। इसका सम्बन्ध इन्द्र से भी हो जाता है क्योंकि इन्द्र को शान्ति[५] का पुत्र माना गया है जो द्युस् से उत्पन्न हुआ है।[६] इन्द्र का रंग सुनहला है। वह सोने के रथ पर चलता है और देवपति तथा स्वर्ग का विजेता है (जिष्णु)[७] इसी सिद्धान्त के अनुसार रुद्र जो रक्तिम तूफान का द्योतक है तथा सेनानी है वह हिरण्यगर्भ है

1. ऋग्वेद 3/15/1
2. मनुस्मृति 1/8
3. तत्रैव 1/9
4. Sparks from the Vedic fire Dr.V.S.Agrawala, Tara Printing Works Varanasi 1962, pp18-28 , ऋग्वेद 1/160/3
5. ऋग्वेद 6/18/11, 6/20/1
6. बृहदारण्यकोपनिषद् 6/4/22
7. Hindu Politheism Alain Danielou,Nwgark, Bollingen loundation,1964, pp107-109

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और हिरण्यगर्भ से उत्पन्न भी होता है।[१] इस आदि दम्पती से तपस उत्पन्न हुआ जो सम्पूर्ण जीवन को जीवन प्रदान करता है और सूर्य स्वर्ग पर शासन करता है तथा स्वयं समुद्र में (अपाम् नपात्) से उत्पन्न होता है।[२] छान्दोग्योपनिषद् में ही सनत्कुमार को युद्ध का देवता माना गया है।[३] उसी के दूसरे अंश में सनत्कुमार को स्कन्द माना गया है।[४] आचार्य शङ्कर ने भी इस समानता की पुष्टि की है।[५] यही समानता महाभारत शल्य पर्व में भी है।[६] श्री हरिनारायण आप्टे ने भी इस समानता को स्वीकार करते हुए यह उल्लेख किया है कि सनत्कुमार वही है जिन्हें कार्त्तिकेय कहा जाता है।[७] अब स्कान्द और कार्त्तिकेय ये दोनों भिन्न नाम भगवान् शिव के पुत्र का है जो स्कन्द, कार्त्तिकेय, सुब्रह्मण्य, कुमार तथा मुरुगन आदि कहे जाते हैं।

यह स्वाभाविक है कि वैदिक काल में पुत्रत्व की कल्पना भगवान् शिव से ही की गयी है। पुराणों में भी विष्णु का कोई ईश्वरीय पुत्र नहीं माना गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वाक् का सिद्धान्त सृष्टि में परमात्मा से ही माना गया है। इसलिए यह माना जा सकता है कि वैदिक पुत्रों का अवतरण द्रविण सम्प्रदाय से हुआ।[८] क्योंकि सनत्कुमार को युद्ध देवता की उपाधि दी गयी? तथा उस उपाधि का अवसर क्या था? पौराणिक प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि तारकासुर तथा ग्रसन ने भगवान् शिव के विरुद्ध युद्ध किया था। इस युद्ध में स्कन्द को यह आदेश दिया था कि वे परमात्मा के शत्रु के विरुद्ध युद्ध करने जाय और स्कन्द ने तारकासुर का वध कर अपनी योग्यता का परिचय दिया।[९] ऋग्वेद में वाक् के इस वचन के द्वारा कि मैं रुद्र की धनुष चढ़ाती हूँ कि इसके बाण भक्ति से घृणा करने वाले का नाश करें।[१०] यह शौर्यपूर्ण घटना हमे उस

---

1. ऋग्वेद 1/77/1
2. Sparkas lorn the vedic line, p 6-9
3. छान्दोग्योपनिषद् 7/1/4
4. तत्रैव 7/26/2
5. तत्रैव शाङ्करभाष्य
6. महाभारत शल्यपर्व पृ. 2716, सोरेन सोन महाभारत इण्डेक्स पृ. 461
7. छान्दोग्योपनिषद् आधुनिक व्याख्याकार पृ. 180
8. The poroblem of Ganpati, p. 12
9. मत्स्यपुराण 153, महाभारत अनुशासन पर्व पृ. 4212
10. ऋग्वेद 10/125/6, Heras the devil in Indian scriptures, J.B.BR.as. 27 p 225, 226

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काल का ध्यान कराती है जब वह सृष्टि के प्रारम्भ में घटित हुई थी।[१] स्कन्द की यह युद्ध कौशल की ख्याति उनके अन्य गुणों से यहीं से भिन्न होती है।

संस्कृत साहित्य में सनत्कुमार को ब्रह्म का भी पुत्र कहा गया है।[२] इसके मध्य में परमात्मा को ब्रह्म कहा गया है जैसा कि उपनिषदों में है। तेजोबिन्दु उपनिषद् में शिव कहते हैं कि मैं ब्रह्म हूँ।[३] पुन: कहा गया है कि मैं केवल ब्रह्म हूँ। (इसका अभिप्राय यह है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि में अकेला मैं ही हूँ। दूसरा नहीं है)[४] कुछ समय पश्चात् विभिन्न सम्प्रदायों के प्रभाव से उन्हें शिव या विष्णु कहा गया। अत: सनत्कुमार जो शिव के पुत्र माने गये हैं इनसे स्कन्द की एकरूपता मानी जाय तो वे ब्रह्म के भी पुत्र है अर्थात् वे मानस पुत्र थे।[५] वैदिक साहित्य में भी सनत्कुमार को मानसपुत्र माना गया है।

सनत्कुमार का सम्बन्ध प्रकाश से है। ईश्वर के मानसपुत्र होने के कारण स्पष्टरूप से भगवान् के विवेक हैं और विवेक सदैव ही ज्ञान का स्रोत है। महाभारत में इनको प्रकाश कहा गया है।[६] दीघनिकाय में उनको प्रकाश तथा चमक कहा गया है। यह वर्णन है कि प्रकाश सनत्कुमार के समक्ष इस प्रकार उपस्थित हुआ मानो ये किरणें उनके दूत हैं।[७] ठीक इसी भाँति सनत्कुमार जब बुद्ध के समक्ष राजगृह में सर्पनदी के पास प्रकट हुए तो उनका वर्णन करते हुए कहा गया है कि अपने प्रकाशमय सौन्दर्य से वे प्रकाश की किरणें बिखेर रहे हैं।[८] महर्षि मारकण्डेय ने भी सनत्कुमार के चमत्कारपूर्ण प्रकाश का उल्लेख करते हुए कहा है कि- "मैंने.. आदित्य का दैवी प्रकाश देखा है। एक प्रकाशमय व्यक्तित्व इतना प्रकाशित है कि जितना प्रकाश अग्नि में है और वे इतने छोटे हैं मानो अङ्गुलि है। यह व्यक्ति ऐसा प्रतीत होता है मानों अग्नि का ही सहभ्राता है। दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।[९] यह दूसरा प्रकाश सम्पन्न व्यक्ति अपने को

---

1. The Devil in Indian Scripture, vol.27(1952) p.227-228
2. The Nagas in magadha, by Keny, J.B.B.R.AS.vol. 28 p. 163-168
3. तेजोबिन्दूपनिषद् 2,पृ.85। ऐक्य द्वारा सम्पादित मद्रास 1914
4. तत्रैव, पृ.86
5. विष्णुपुराण 2, पृ.07
6. महाभारत सौप्तिक पर्व पृ. 636
7. Dialoges of the Budha, Rhys Davids, 2, p.243-264
8. संयुक्त निकाय,भाग1,पृ.62
9. हरिवंशपर्व,17वाँ खण्ड (बोस द्वारा प्रकाशित) पृ.51

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महर्षि के समक्ष सनत्कुमार के रूप में अपरिमेय प्रकाश फैलाते हुए दूसरे अग्निदेव के रूप में प्रकट होता है।[१] इससे यह स्पष्ट होता है कि आत्मा के सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए नारद का सनत्कुमार के समक्ष उपस्थित होना अत्यन्त प्रामाणिक तथा युक्तियुक्त है।

गृह्यसंस्कारों में स्कन्द को धूर्त कहा गया है। यह वर्णन रहस्यमय है। इसका वर्णन अथर्ववेद के परिशिष्ट में सकन्दभाग के रूप में दिया गया है।[२] इस उद्धरण में देवता अनेक माताओं से घिरा हुआ है। इनके साथ सहस्रों बालायें हैं जो मोर, तित्तिर, हाथी, चीता तथा सिंह से युक्त हैं। इनके छः मुख तथा बारह आँखें हैं। यहाँ इन्हें कार्त्तिकेय तथा विशाख का भाई बताया गया है। इसी सन्दर्भ में इन्हें विशाख भी माना गया है। इनके पास एक सेना है, अनेक अनुयायी हैं, रथ हैं तथा ये घण्टी बाँधते हैं। ये शिव, अग्नि तथा कृत्तिकाओं के पुत्र हैं। इनका सम्बन्ध रुद्र तथा पशुपति से है तथा ये अतुलनीय और अनुकरणीय हैं। इनको रक्त पुष्प, रक्तलेप तथा लालमुर्ग प्रिय है। पूजा के मध्य में माला, घण्टियाँ, भुजदण्ड तथा दर्पण रखे जाते हैं। इस देवता को दधि, अक्षत, शर्करा, मिले हुए अन्न, मिठाईयाँ, सुगन्ध, पुष्प तथा फल समर्पित किया जाता है। संस्कार के अनन्तर कामसूत्र का पाठ होता है जिससे यह अभिव्यक्त होता है कि देव कामुक है। पूजा का उद्देश्य पुजारी को दुष्प्रभाओं से मुक्त करना है। पुजारी अपने बाहु में भुजदण्ड धारण करता है जो अश्विनीकुमारों तथा आदित्य के आशीर्वादों से युक्त होते हैं। प्रार्थना में पद, रत्न, सेवक, धन, अन्न, पशु विभिन्न प्रकार के आनन्द की सामग्री, वाक्शक्ति तथा ज्ञान की कामना की जाती है।[३] गृह्यसूत्रों में श्री एवं षष्ठी के सम्मान में शुक्लपक्ष की क्रमशः पञ्चमी तथा षष्ठी तिथि को आयोजित होने वाले कर्मकाण्डीय संस्कार श्रीकल्प एवं षष्ठीकल्प के आयोजन के लिए निर्देश दिये गये हैं।[४] मानवगृह्यसूत्र श्रीसूक्त के स्तोत्रों को षष्ठी कल्प में प्रयोग करने को अनुमति देता है। यहाँ षष्ठी की स्तुति समृद्धि देने वाली कही

---

1. हरिवंशपर्व,17वाँ खण्ड (बोस द्वारा प्रकाशित) पृ.58
2. स्कान्द-कार्त्तिकेय, डॉ0 पृथ्वीकुमार अग्रवाल
3. The many faces of Murukan, p. 50
4. इण्डिया इन दी वेदिक कल्प सूत्राज, रामगोपाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1957, पृ0 466-67.
5. मानवगृह्यसूत्र 2/3.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी है।[५] बंगाल की लोककथाओं में लक्ष्मी को बहुधा कार्त्तिकेय की पत्नी बताया जाता है।[१] पालि साहित्य में 'महासेन पद' प्राय: मिलता है जिसका अभिप्राय है जिसके पास बहुत बड़ी सेना हो। यह पद मृत्यु तथा मार के विशेषण के रूप में दीघनिकाय में निर्दिष्ट है।[२] जातकगाथा में भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग है।[३] स्कन्द के लिए यह पद प्रयुक्त है। प्राय: साहित्य में स्कन्द का नाम माइन से सम्बन्धित देवता से सम्बद्ध माना जाता है किन्तु डॉ० पृथ्वीकुमार अग्रवाल का कथन है कि इन प्रमाणों के आधार पर इसका शाब्दिक अर्थ मृत्यु या मार ही लिया जाना जाना चाहिए।[४] पालिसाहित्य में स्कन्द के नाम के लिए प्रयुक्त 'गुह' शब्द का प्रमाणकारी प्रयोग मिलता है। दीघनिकाय गुल शब्द का प्रयोग यक्ष के लिए किया गया है।[५] बुद्धचरित में बुद्ध को षण्मुख सदृश माना गया है-

भवमथ विगाह्य शाक्यराजो।
भव इव षण्मुख जन्मना प्रतीतः।।[६]

जैनागम में 'खण्डमाह' शब्द का प्रयोग है जिसमें 'मह' के द्वारा 'स्कन्दमह' की पूजा का संकेत मिलता है।[७] यदि आवश्यकपूर्ण को खण्डदेव की पूजा का समारोह माना जाय तो यह महावीर के जीवन काल में भी प्रचलित था क्योंकि जब वे श्रावस्ती गये थे तो उन्हें खण्डदेव की मूर्ति रथ पर रखकर महोत्सव के रूप में जाती दीखी थी।[८]

महाकाव्य काल तक स्कन्द की पूजा प्रसिद्ध हो गयी थी। वाल्मीकि रामायण में स्कन्द को अग्नि, गंगा नदी तदनन्तर रुद्र का पुत्र बताया गया है।[९] यहाँ पर यह प्रतिपादित है कि भगवान् कार्त्तिकेय के जन्म का प्रसंग अत्यन्त पुण्यमय और समस्त मङ्गलों का विधायक है। जो मनुष्य इस पृथ्वी पर रहकर

1. श्रीराधा का क्रम विकास, एस०बी० दास गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्कालय, वाराणसी 1956, पृ० 531.
2. दीघनिकाय वाल्यू० II 7/12.
3. जातक II, पृ० 166.
4. स्कन्द कार्त्तिकेय ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेण्ट, पृ० 17.
5. दीघनिकाय III, पृ० 164.
6. बुद्धचरित, 1/88.
7. न्यायधम्मकहा, वैद्य द्वारा सम्पादित, पृ० 23.
8. लाइफ इन दी जैन कैनोन्स्, जे०सी० जैन, पृ० 217
9. बालकाण्ड - अध्याय - 36-37.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्त्तिकेय की उपासना करता है और इस चरित्र का अनुसन्धान करता है वह अत्यन्त समृद्धिशाली, आयुष्मान्, पुत्र पौत्रों से युक्त तथा अन्त में भगवान् स्कन्द की सायुज्यता को प्राप्त करता है।[१] महाभारत के वनपर्व में स्कन्द को अग्नि का पुत्र मानते हुए इनका विस्तृत वर्णन निरूपित है।[२] मुनि भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डप की रक्षा में अंश-विभाग से नियुक्त देवों में स्कन्द का नामोल्लेख मिलता है।[३] रङ्गदैवत पूजन के विधान परक पूज्य देव-देवियों की जो सूची दी गयी है उसमें गुह (कार्त्तिकेय) का भी वर्णन है।[४] अवनद्ध वाद्यों में अधिष्ठातृ देवों का निरूपण संगीतरत्नाकार में उपलब्ध होता है, जिसमें पटहवाद्य के अधिष्ठातृ देव स्कन्द बताये गये हैं।[५]

कृत्तिकापुत्र स्कन्द अग्नि से ही उत्पन्न हुए थे ऐसा श्रीमद्भागवत में वर्णित है।[६] महाभारत के शल्यपर्व में इन्हें महेश्वर का पुत्र कहा गया है तथा इनके असुर विजय पर इन्हें राज्यगद्दी दी गयी है।[७] अनुशासन पर्व में इन्हें शिवपुत्र माना गया है जो पार्वती के साथ क्रीडारत है।[८] रुद्र, पार्वती, अग्नि और गंगा- में चारों अपने को स्कन्द का जन्मदाता मानते हैं। यह सन्देह पैदा होता है कि स्कन्द पहले किसके पुत्र हुए? लेकिन देव के चार रूप- शाख, विशाख, नैगमेय तथा स्कन्द निर्दिष्ट हैं। इनमें रुद्र को स्कन्द, पार्वती को विशाख, अग्नि को नैगमेय तथा गंगा को शाख की जन्मदात्री होने की कल्पना की जाती है। कालिदास कृत कुमारसम्भव काव्य स्कन्द के जन्म पर आधारित है।[९] पाणिनि के अष्टाध्यायी में स्कन्द और विशाख की पूजा का

---

1. कुमारसम्भवश्चैव धन्यः पुण्यस्तथैव च।। भक्तश्च यः कार्त्तिकेये काकुस्थभुविमानवः आयुष्मान् पुत्रपौत्रैश्च स्कन्दसालोक्यतां व्रजेत्।। वा०रा० बालकाण्ड-37/31-32.
2. महाभारत वनपर्व, अध्याय - 223-232.
3. शिरःपर्वस्थितो ब्रह्मा द्वितीये शङ्करस्तथा।
   तृतीये च स्थितो विष्णुश्चचतुर्थे विष्णुचतुर्थे स्कन्द एव च।। नास्यशास्त्र 1/86.
4. देवसेनापते स्कन्द भगवान् शकङ्करप्रिय।
   बलिः प्रीतेन मनसा षण्मुख प्रतिगृह्यताम्।। नाट्यशास्त्र 3/51.
5. संगीतरत्नाकर 6/817.
6. श्रीमद्भागवतमहापुराण - 6/6/14.
7. महाभारत शल्यपर्व, अध्याय 46-47.
8. महाभारत अनुशासन पर्व - 84-86.
9. कुमारसम्भव - कालिदास.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेत है।[१] लिङ्गपुराण में इन्हें वह्न्यात्मा कहा गया है।[२] वामनपुराण तथा ब्रह्मपुराण में यह प्रतिपादित है कि अग्नि ने शिव का वीर्य ग्रहण किया जो देवताओं के पेट में चला गया क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख है।[३] मत्स्यपुराण में यह उल्लिखित है कि जब वीर्य शक्ति पच नहीं पायी तो जल के रूप में विस्फोट हुआ।[४] वराह पुराण में विष्णु को शिव का रूप माना गया है और उन्हें पुरुष कहा गया है। वहाँ उमा तथा श्री अव्यक्त हैं। इनके मेल से कार्त्तिकेय में अहंकार ने जन्म लिया।[५] श्रीमद्भागवतपुराण में स्कन्द को विष्णु का अवतार माना गया है।[६] स्कन्दमहापुराण में ब्रह्मनारद संवाद के रूप में सुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्र उपलब्ध है। स्कन्द पुराण का अभिप्राय 'कन्तपुराण' के रूप में अनुदित है। कुषाणकालीन सिक्कों पर स्कन्द, कुमार, महासेन तथा विशाख के चित्र प्राप्त होते हैं। इससे यह प्रमाणित है कि द्वितीय शताब्दी में इनकी पूजा प्रचलित थी।[७] शिवमहापुराण में स्कन्द कथा का सजीव वर्णन प्राप्त होता है।[८] सन्त तुलसीदास ने भी षण्मुखजन्म का वर्णन किया है।[९] गुप्त संवत् १२० सुल्तानपुर ताम्रपत्राभिलेख के अनुसार कार्त्तिकेयकी उपासना का प्रभाव सूचित करने वाले– कुमारदेव, कुमारभव, कुमारभूति, कुमार, महासेनभट्ट, गुह तथा महासेनदत्त कुल सात नामों का उल्लेख प्राप्त होता है।

सनत्कुमार के उपदेशों में उनका सबसे प्रिय विषय संन्यास है जिसके द्वारा ही भगवत् प्राप्ति हो सकती है। उन्होनें यह व्याख्या दी है कि व्रत ही मोक्ष का साधन है।[१०] उपदेश के समय उन्होंने नारद से एक स्थल पर कहा

---

1. अष्टाध्यायी 5/3/99.
2. लिङ्गपुराण अध्याय 57.
3. A वामनपुराण अध्याय, 57. B ब्रह्मपुराण भाग 2, 10/27.
4. मत्स्यपुराण अध्याय 51.
5. वराहपुराण 25/1-43.
6. श्रीमद्भागवतपुराण- 11/4/17.
7. The Development of Hindu Incography, J.N. Banerjee, Calcutta 1956, pp. 145.
8. शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड, अध्याय – 9-12.
9. रामचरितमानस, बालकाण्ड, विनयपत्रिका, पद-15.
10. महाभारतशान्ति पर्व पृ. 10ख 30 से 10,086 तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि बहुत अधिक मौन न रहें, सदा मन को प्रसन्न रखें। इससे स्पष्ट है कि आनन्द को प्राप्त करने का एक साधन है और तब उन्होंने नारद को भक्तिज्ञान का उपदेश दिया तथा कहा कि भौतिक आनन्द से घृणा रखें।[१] मझिमनिकाय के सेखसुत्त में बुद्ध ने उद्धृत करते हुए यह कहा है कि सनत्कुमार ने संन्यास के विषय में जिस श्लोक की व्याख्या की है वह प्रशंसनीय है।[२]

सनत्कुमार को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है और उन्हें स्पष्टरूप से धर्मोपदेष्टा माना गया है।[३] यही कारण था कि विभिन्न ऋषिगण अपने संशयों के समाधान के लिए सनत्कुमार के पास जाया करते थे।[४] उन्होंने स्वत: अनेक लोगों को धर्म का उपदेश किया है। पुरूरवा को तो अनेक अवसरों पर दन्हें विभिन्न उपदेश दिया है।[५] इसके अतिरिक्त विश्वावसु को भी उपदेश किया है।[६] महर्षि मारकण्डेय ने भी अपनी समस्याओं का समाधान सनत्कुमार से कराया है।[७] कोशल नरेश के प्रबन्धक गोविन्द को भी सनत्कुमार ने ज्ञान प्रदान कर उन्हें त्याग का महत्त्व समझाया है जिसके द्वारा ब्रह्मा के स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[८] वृत्रासुर[९] शाङ्कायन[१०] व्यास[११] तथा ऋषियों[१२] ने भी इस महान् गुरु से उपदेश ग्रहण किया है। इतना ही नहीं, प्रजापति[१३] तथा रुद्र[१४] ने भी सनत्कुमार से धर्म-दर्शन की शिक्षा प्राप्त की है। छान्दोग्योपनिषद् में

---

1. पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड, 110100, पृ. 54-64
2. Further Dialogues of Buddha, cha lmers,1,p.258
3. महाभारत सभा पर्व पृ. 441
4. महाभारत अरण्यक पर्व पृ. 12700
5. महाभारत आदि पर्व पृ. 3141-3147, विष्णु पुराण 3, पृ. 14
6. महाभारत शान्ति पर्व पृ. 11784
7. हरिवंश पर्व अध्याय 19
8. Dialogues of Buddha 2, p. 272-74
9. महाभारत शान्तिपर्व पृ 286
10. भागवत्पुराण 3/8/7, 8
11. विल्सन पृ. 88
12. महाभारत शान्तिपर्व पृ. 227
13. तत्रैव पृ. 13587
14. महाभारत अनुशासन पर्व पृ. 165-169

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सनत्कुमार ने नारद का कल्मष नष्ट किया तथा उनको अज्ञानान्धकार का दर्शन कराया।[१] इससे उन्होंने स्पष्ट कराया कि अज्ञान से ज्ञान विशिष्टता में अत्यन्त भिन्न है। श्री आप्टे के मतानुसार अन्धकार अज्ञान का ही प्रतीक है।[२] इन उदाहरणों से सुस्पष्ट है कि सनत्कुमार अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाने में पूर्णतया सक्षम थे क्योंकि आत्मप्रकाश अज्ञान के अन्धकार को दूर करने में सर्वथा समर्थ होता है।[३] यही कारण था कि नारद ने भी इनसे आत्मज्ञान की शिक्षा ली।

प्रो. आर. डी. रानाडे ने सनत्कुमार द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का एक विवरण दिया है, जिसके अनुसार सनत्कुमार आत्मोल्लास के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। आनन्द एक आध्यात्मिक आनन्द है जो सभी कार्यों में व्यापकरूप से विद्यमान है। यह कर्म से उत्पन्न होता है। कर्म का करण आस्था है। आस्था विश्वास से प्रादुर्भूत होती है, मनुष्य जब विश्वास करता है तो वह चिन्तन करना शुरु कर देता है, चिन्तन से वह ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान की यात्रा उसे सत्य तक पहुँचाती है। इस भाँति आनन्द, कर्म, आस्था आत्मिक दृष्टि सनत्कुमार ने दिया जिसका ज्ञान देवताओं को भी प्राप्त करना कठिन था। विश्वास, विचार, ज्ञान तथा सत्य सनत्कुमार के हाथों में पड़कर आत्मज्ञान के सोपान बन गये हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सनत्कुमार ने भूमा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। भूमा अनन्त आनन्द का स्थल है, जो मनुष्य की सर्वत्र प्रसारित होने वाली दिव्य दृष्टि से प्रसूत होती है। जो कुछ भी दिखाई पडे वह अल्प प्रतीत हो (तुच्छ प्रतीत हो) यथा धन-सम्पत्ति, हाथी- घोड़ा, ऐश्वर्य आदि। तीसरी बात यह है कि भूमा का साक्षात्कार (सोऽहमात्मा) के बोध के पश्चात् ही प्रतीत होता है। अन्त में सनत्कुमार का उद्घोष है कि आत्मा ही सकल पदार्थों का स्रोत है। आत्मा से ही आशा, स्मृति, आकाश, प्रकाश तथा जल उत्पन्न होते हैं। आत्मा से ही ये सब प्रकाशित होते हैं और सभी कुछ आत्मा में ही तिरोहित रहता है। आत्मा ही सभी शक्तियों, सभी ज्ञानों तथा सभी प्रकार के आनन्दों का अक्षय स्रोत है।[४]

---

1. छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2
2. तत्रैव (आप्टे० पृ. 179-180
3. भागवत पुराण 1/1/1
4. A Constructive Survey of Upanisadic Philosophy by Ranade, p.344

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सनत्कुमार भगवान् के स्वरूप हैं और वे स्वयं को ब्रह्म कहते हैं। कोशल राज्य के प्रबन्धक गोविन्द ने तपस्या करना प्रारम्भ किया और उन्हें ब्रह्म से प्रकाश ज्ञान अशरीरी वाक् से प्राप्त हुआ, लेकिन गोविन्द के समक्ष ब्रह्म प्रकट नहीं हुए, उनके स्थान पर सनत्कुमार प्रकट हुए और गोविन्द को उस वाणी से सन्तुष्टि हुई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह ब्रह्म वाक् ही था।[१] इससे प्रमाणित होता है कि सनत्कुमार स्वतः ही ब्रह्म थे। महाभारत ने उन्हें शिव माना है और इस भाँति इसमें सनत्कुमार को पिता शिव की प्रतिमूर्ति माना गया है।[२] बुद्ध ने भी सनत्कुमार को ब्रह्म कहा है।[३]

कुछ स्थलों पर सनत्कुमार को ब्रह्म का मानस पुत्र कहा गया है। इसमें अन्य पुत्रों का भी उल्लेख है। उनके नाम सनन्द, सनक, सनन्दन या सनातन और ऋभु है।[४] उनको चार पृथक्-पृथक् भाई मानने की अपेक्षा इन्हीं के चार पृथक्-पृथक् नाम मानना समीचीन लगता है। जहाँ तक पाँचवें भाई ऋभु का प्रश्न है इस शब्द का अर्थ प्रवीण, चालाक, खोजी तथा चतुर लगता है और ये सभी सनत्कुमार की प्रतिभा के अङ्ग प्रतीत होते हैं। इन चारों को महान् संन्यासी माना गया है।[५] सनन्दन एक महात्मा है[६] और वे गम्भीर समाधि में निमग्न रहते हैं।[७] सतत ज्ञान लोक में रहते है।[८] ये विवरण सनत्कुमार के ही लगते हैं। सनक भी ज्ञान लोक में रहतें है।[९] एक अद्भुत तथ्य है कि हरिवंश में सनत्कुमार को भाईयों में ज्येष्ठता प्रदान की गई है। उन्होंने स्वयं कहा है कि ब्रह्म से उत्पन्न होने वाला प्रथम व्यक्ति मैं ही हूँ। यह बात उन्होंने महर्षि मारकण्डेय से कहा।[१०] अनेक स्थलों पर सनत्कुमार को ब्रह्म का पुत्र कहा गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सनत्कुमार ब्रह्म के प्रथम पुत्र हैं और शेष पुत्र बाद में उनकी प्रतिकृति

---

1. महगोविन्द सुत्त 2, पृ.237, राइड डेविडस्, डाइलाग आफ बुद्ध
2. महाभारत अनुशासन पर्व पृ. 316
3. डाइलाग आफ बुद्ध, राइड डेविडस् पृ. 264
4. विष्णुपुराण, 1, पृ. 77 , विल्सन
5. डाइलाग आफ बुद्ध, पृ. 385-388
6. विष्णुपुराण, 1, पृ. 4, विल्सन
7. तत्रैव, 5, पृ. 7
8. तत्रैव, 1, पृ. 4
9. तत्रैव, 1, 4, पृ.4
10. हरिवंशपर्व 17

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के रूप में जोड़े गये हैं।[१] ब्रह्म के पाँचों पुत्र सनत्कुमार की पाँचों योग्यताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। (१) वे एक सामान्य मनुष्य हैं (२) वे सन्त हैं (३) वे तपस्वी हैं (४) वे उपदेष्टा हैं (५) उनका स्वभाव दैवी है।[२]

भारतीय परम्परा में पाँच की संख्या बहुत्व का बोधक है। इतना ही नहीं, यह पूर्णता का भी बोधक है।[३] ब्रह्म के पाँच मानस पुत्र ब्रह्मा के पुत्रत्व की पूर्णता है और जब सभी समान दिखाई देते हैं अर्थात् शेष चार एक ही के बराबर दिखाई देते हैं जो कोई अन्य नहीं हैं, अपितु सनत्कुमार ही हैं। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सनत्कुमार ही ब्रह्म के पुत्र बहुत्व तथा अथवा पूर्णता के द्योतक अर्थात् वही ब्रह्म के पुत्र हैं और कोई दूसरा कोई नहीं। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि पवित्र पाँच संख्या प्रतीकात्मक है जिसमें ब्रह्म के पाँच मानसिक पुत्रों का समावेश किया जा सकता है।[४]

परवर्ती काल में ब्रह्मा के पुत्रों की संख्या बढ गई क्योंकि ये पाँच पुत्र महान् ऋषिगण थे और परम्परा से भारत में सप्तर्षियों की परम्परा चली आ रही थी। अतः ब्रह्म के सात मानस पुत्र हो गये। इनका उल्लेख पद्मपुराण में भी है।[५] इसी का अनुमोदन महाभारत शान्तिपर्व में भी है।[६] सनत्कुमार का स्वयं कथन है कि मेरे सात छोटे भाई हैं।[७] ये सात भाई सनत्कुमार को लेकर आठ हो जाते हैं जो शैव दर्शन की पवित्र संख्या है, शिव अष्टमूर्ति हैं।[८] शिव के मौलिकरूप है इनके आठ स्वरूप हैं।[९] महाभारत में भी उल्लिखित है। प्रलयकाल में सम्पूर्ण प्राणी सनत्कुमार में समाहित हो जाते हैं।[१०] इस उल्लेख से यह प्रमाणित हो जाता है कि इसका आधार सनत्कुमार

---

1. लिङ्गपुराण, 1, पृ.170-171, विल्सन
2. विष्णुपुराण ,1, पृ. 77
3. India the Compire of the Svsastik by He ras, Eononation Souvenir, Bombay, p. 40
4. The Religion of the Mohanjo-daro prople by He ras, Journal of the Bombay University, Bombay, v, pp7-9
5. पद्मपुराण अनुवादक विल्सन, 2 भाग पृ. 200
6. महाभारत शान्तिपर्व, पृ. 13077-13080
7. हरिवंशपुराण 17
8. शिवमहिम्नस्तोत्र- भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः.....। 28
9. The Religion of the Mohanjodro peple-7-9
10. महाभारत शान्तिपर्व पृ. 120907 कलकत्ता संस्करण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का व्यक्तित्व वाक् तथा हिरण्यगर्भ है। हिरण्यगर्भ स्वर्णबीज है जो सम्पूर्ण संसार का उत्पादक है और अन्त में पूरा विश्व उसी में तिरोहित हो जाता है। वही सृष्टि के आदि तथा अन्त दोनों होंगे।

श्री फ्रेड डब्लू क्लोथी ने अपनी पुस्तक "दी मेनी फेसेज आफ मुरुगन" में दक्षिण भारतीय देवता के इतिहास तथा अर्थ का विवेचन किया है। तमिल में 'मुरूगु' शब्द का अर्थ सौन्दर्य, ताजगी, माधुर्य, दिव्यता और आनन्द है।[१] ये सभी गुण भगवान् सुब्रह्मण्य में पाये जाने के कारण वे 'मुरुगन' नाम से प्रिय उपास्य हो गये। भगवान् मुरुगन 'शेयोन' (शिशु) भी कहलाते हैं। डॉ० क्लोथी ने सर्वप्रथम आर्य प्रभाव के पहले तमिल महाकाव्यों के आधार पर 'मुरुगन' के विकास का निर्धारण किया है। काव्य संग्रह (Cankam) 'चंकम' में 'मुरुगन' का स्थान पर्वतमालाएँ मानी गयी हैं और इनका सम्बन्ध पर्वतीयजनों से जोड़ा गया है। लेखक की मान्यता है कि इनका सम्बन्ध शिकार से था। ये एक प्रेमी तथा सुन्दर कन्याओं के हिमायती थे। ये भय तथा दु:ख को दूर करने वाले (anamku) अनंकू माने जाते हैं। इनको सिअन (Ceyon) रक्तवर्ण का शिशु मानते हैं। इनसे सम्बन्धित पुष्प पीले तथा लालवर्ण के होते हैं। इन्हें कान्तल (Kantal), वेंकै (Venkai), कटम्पू (Katampu) तथा कमल का पुष्प अर्पित किया जाता है। हाथी तथा मोर इन्हें प्रिय हैं। इनकी पूजा में पानी, धान या नारियल का रस, लाल बाजरा, चावल, मधु, लाल, पीला तथा श्वेत पुष्प समर्पित किया जाता है। इनका स्वरूप शिकारी, योद्धा, नायक तथा प्रेमी के रूप में अंकित है।[२] उपर्युक्त काव्य में भगवान् मुरुगन द्वारा समुद्र में आम्रवृक्ष के रूप में आसुर 'सूरपद्म' तारकासुर तथा सिंहमुख के मारने का उल्लेख है।[३] इनका सम्बन्ध 'नर मुर्गे' (Ceval) से भी था- यह उल्लिखित है।[४] पुरनानूरू नामक प्राचीन ग्रन्थ में रणगजपर आरूढ विजयशील मुरुगन का वर्णन प्राप्त होता है।

मुरुगन की तुलना 'मायोन' (Mayon) तथा 'तिरुमल' (Tirumal) के साथ की गयी है। ये दोनों वन तथा चारागाह से सम्बन्धित हैं और इन्हें

1. The Many Faces of Murukan, 42-43, 69.
2. Ibid, p. 26.
3. Ibid, p. 31.
4. Ibid, p. 32.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालान्तर में 'परिपडल' तथा 'शिलाप्पाधिकम्' में विष्णु माना गया है। विशेषरूप से इनका सम्बन्ध गोपालकृष्ण से जोड़ा गया है।[१] नीलगिरि के पहाड़ियों के लोग लकड़ी तथा मोम इकट्ठा करते थे। इन्हें 'करूम्बस' कहते थे। इनमें से कुछ लोग भद्दे पत्थरों की उपासना करते थे जो किसी गुफा में होते थे और उनको बकरा या पका हुआ चावल चढ़ाते थे।[२] डॉ० गोपाल पिल्लै का विश्वास है कि मुरुगन 'कावति' (Kavati) के रूप में भी पूजे जाते हैं तथा इनका सम्बन्ध 'लिकनान' (Liknon) में जो है डाइन्योसस (Dinyosos) का पलना था। कालान्तर में ये दोनों (मुरुगन तथा डाइन्योसस) आर्य संस्कृति से युक्त हो गये।[३] डॉ० सेन ने अपने शोध निबन्ध में इरानियन शरोरा एण्ड इण्डियन स्कन्द में इरानियन पौराणिक कथाओं के आधार पर शरोरा को स्कन्द का स्वरूप माना है।[४]

ईसा पूर्व २०० से ईसा के ५०० वर्ष तक के काल में राजसत्ता का बोलबाला था जिसमें स्कन्द की पौराणिक कथाओं का बाहुल्य हुआ। स्कन्द का सर्वप्रथम प्रसंग दैवी पुत्रत्व के रूप में प्राप्त होता है। वैदिक वाङ्मय में भी इनके सन्दर्भों की कमी नहीं है। इन्द्र को शक्ति का पुत्र कहा गया है।[५] पर्जन्य को द्यौस् (आकाश) का पुत्र,[६] इसी भाँति मरुद्देवों[७] तथा सूर्य[८] को भी द्यौस् का पुत्र माना गया है। वरुण तथा मित्र को दक्ष का पुत्र बतलाया गया है।[९] स्कन्द के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 'अग्नि' को दक्ष का पुत्र[१०] तथा सहस का पुत्र[११] स्वीकारा गया है।

---

1. The Many Faces of Murukan, p. 34.
2. Ibid, p. 37.
3. Skand. The Alexander Romance in India, N. Gopal Pillai, in Proceedings of the All India Oriental Conference, Vol IX, Trivandrum, 1937, pp. 987.
4. Iranian Sarosha and Indian Skand by Dr. Sen, Indo-Iranics, IV, No. 1, July 1450, p. 27.
5. "सूनुः सहसः - ऋग्वेद 6/18/11; 6/20/1.
6. ऋग्वेद, 7/102/1.
7. तत्रैव, 10/77/2.
8. तत्रैव, 10/37/1.
9. तत्रैव, 8/25/5.
10. तत्रैव, 1/95/6.
11. तत्रैव, 6/48/5, 1/27/2.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ यह पितृत्व वास्तव में शारीरिक पितृत्व का द्योतक नहीं है, बल्कि वह अधिकार तथा शक्ति से सम्पन्नता का परिचायक है[१] जिसमें प्राचीन पीढ़ियों का अनुभव प्रतिभासित होता रहता है। वह पुत्र को उसकी इच्छाओं की पूर्ति का दान करता है और उत्साह तथा शक्ति का उसमें आधान करता है। वेद में जैविक प्रक्रिया की अपेक्षा गुणात्मक उत्पत्ति का परिचय अधिक प्राप्त होता है जैसे, आकाश के चारों दिशाओं से पृथ्वी तथा सूर्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ये दोनों आकाश के पुत्र हैं।[२] पितारुपी पदार्थ का पुत्र अनुभव कराता है या प्रकाशन कराता है। इस प्रकार पिता पुत्र में समाहित है और पुत्र पिता का प्रतिनिधित्व करता है।[३] "आत्मा वै जायते पुत्रः" भी निर्दिष्ट है।[४] इस प्रकार पुत्र पिता के समान है और पिता पुत्र में अपनी जीवन यात्रा जारी रखता है।[५] इसीलिए परम्परा में पुत्र को मोक्ष का साधन माना गया है। इस प्रकार वह सृष्टिकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित है। अग्नि पुत्र है और वही पिता होकर अपने ही पिता को शक्ति प्रदान करता है।[६] अग्नि को प्रजापति भी कहा गया है। इस प्रकार अग्नि स्रष्टा भी है और पिता भी है।[७] रुद्र को भी प्रायः अग्नि का स्वरूप माना गया है इस प्रकार उनको स्कन्द का पिता भी कहा गया। इस भाँति स्कन्द पिता-पुत्र दोनों हैं। उनसे हिरण्यगर्भ पैदा होता है और वे स्वयं हिरण्यगर्भ भी हैं।[८]

पुत्र को पिता के सदृश या स्रष्टा समझना पुत्र का मौलिक स्वरूप है। इसका अभिप्राय यह है कि पुत्रत्व विश्व के उपादान का मूल है। प्रारम्भ में पुत्र का प्रादुर्भाव था।[९] जो उत्पन्न हुआ उसे कभी हिरण्यगर्भ तथा कभी वाक् कहा गया। विभिन्न प्रकार की सृष्टि परम्परा में ये मूलतत्त्व माने जाते हैं।

---

1. Some Observations on the Relation Between 'Gods' and 'Powers' in the Veda. A Prpos of the Phrase 'Sunah Sahasah', Jan. Gonda, The Hague, Mouton 1959, pp. 6.
2. ऋग्वेद 1/160/3.
3. महाभारत 1/159/11.
4. बृहदारण्यक् उपनिषद् 1/5/11. शतपथ ब्राह्मण 10/4/5/6, 6/1/1/8.
5. महाभारत 1/159/4, 5/118/7, 7/173/54.
6. ऋग्वेद 1/13/11.
7. शतपथ ब्राह्मण - 10/2/1-2.
8. The Many Faces of Murukan - pp 46-47.
9. कठोपनिषद् II/4/6.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाक् की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई। यह मैथुनी सृष्टि का मूल था जिससे मूल सरकण्डे (सरपत) की उत्पत्ति हुई।[१] हिरण्यगर्भ स्वर्णाण्ड या स्वर्णमय बीज था जो संसार हुआ।[२] इस प्रकार प्राचीन संस्कृत विचार धारा में यह माना जाता है कि पुत्र केवल उत्पादक ही नहीं है, बल्कि वह उत्पाद्य भी है।

वैदिक तथा वैदिकोत्तर सन्दर्भ में पुत्र को विवेक भी माना गया है। जो उत्पन्न हुआ है उसे बुद्धि का फल मानते हैं, कालान्तर में उसे मन का पुत्र माना गया है[३]। इस प्रक्रिया में वाणी से पहले विचार था तत्पश्चात् विचार अभिव्यक्ति का साधन हो गया। ऐतरेय आरण्यक मन को शुरू का स्वरूप मानता है तथा वाणी को बाद का स्वरूप।[४] बृहदारण्यक उपनिषद् वाणी को देव की दूसरी आत्मा कहता है तथा आचार्य शंकर इसे अनन्त ज्ञान मानते हैं।[५] उपनिषद् काल में पुत्रत्व का विवेक अमरपुत्र सनत्कुमार के रूप में मूर्तिमान् हुआ, जैसा कि नारद ने आत्मा के सिद्धान्त के प्रतिपादन के अवसर पर छान्दोग्योपनिषद् में निरूपित किया है।[६] उपर्युक्त विवेचना के आधार पर पाश्चात्य मनीषी डॉ० क्लोथी ने स्कन्द को पुत्रत्व का मूल माना है अर्थात् इन्हीं से सृष्टि की उत्पत्ति हुई तथा ये ही सृष्टि के उपादान बने।

तमिल भाषा में मुरुगन स्कन्द का ही नाम है जो भगवान् शिव के पुत्र हैं। मध्यकाल में स्कन्द सुब्रह्मण्य के पुत्र हैं। पौराणिक तथा महाकाव्य काल में सनत्कुमार को स्कन्द के रूप में पहचाना गया। सिन्धुघाटी की खुदाई में उपलब्ध भगवान् शिव का मौलिकरूप आन प्राप्त होता है जो शिव का मौलिकरूप है। वे अन्त में अनिल नाम ग्रहण करते हैं जो आन का पुत्र है।[७] मुरुगन जो युवक तथा वेलन जिनके हाथ में त्रिशूल है। वे भी आन के ही पुत्र हैं।[८] श्री एच. हेरास ने अपनी पुस्तक **The problem of Ganpati** में

---

1. A वाजसनेयी संहिता - 23/20. B कठोपनिषद् 2/4/6.
2. शतपथब्राह्मण 6/3/1-20, 8/1/4, 10.
3. महाभारत, शान्तिपर्व 1/200/5.
4. ऐतरेय आरण्यक 3/1/1.
5. A बृहदारण्यकोपनिषद् - 1/6/3. B बृहदारण्यकोपनिषद्-शांकरभाष्य 3/19/28, 8.
6. छान्दोग्योपनिषद् 7/4/1.
7. The Religion of the Mohanjodaro people, by, Heras, p. 29
8. The Velas in Mohanjo-daro ,by, I.H.Q.,vol.14,p.53

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त विवरण की एक ऐतिहासिक तालिका प्रस्तुत की जिसमें वैदिक काल से लेकर पौराणिक तथा महाकाव्य काल तक का विवरण है जो अधोलिखित है[१]-

Sruti period	Indus Valley period	Tranritional period	Puranic and epic period
Isvare Mind-born Son Vac	An Anil Murugan Velan	Brahma Sanatkumara	Siva Skanda Subrahmanya Kumara Karttikeya

डॉ. कर्मकर का मानना है कि मुरुगन ऋग्वेद में 'मुरुदेव:' कहे गये हैं।[२] इन्हें मूर्ख देवता कहा गया है।[३] आर्यों ने इन्द्र से प्रार्थना किया है कि झुकी गर्दन वाकमूर्ख देवता को नष्ट कर दें जिससे वह प्रभात की किरण न देख सके।[४] आर्चाय सायण ने इसे राक्षस कहा है। डॉ. कर्मकर का कहना है कि यह असम्भावित नहीं है क्योंकि ऋग्वेद के परवर्ती ऋषियों ने आध्यात्मिक परम्परा वाले भगवत् पुत्र को वाक् नाम से उद्धृत किया है।[५] उन्होंने यह भी कहा है कि इस देवता के सहयोग से ब्रह्मा को घृणा करने वाला राक्षस तारकासुर मारा गया था।[६]

श्री हेरास ने अपने ग्रन्थ **The problem of Ganpati** नामक अपने ग्रन्थ मुरुगन के अधोलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है-

१. उनका सम्बन्ध विवेक से है। प्राचीन कथाओं में यह उल्लिखित है कि शङ्कर के भाल नेत्र से अग्नि के छ: चिनगारियाँ उद्भूत होती हैं।[७] इसका

---

1. The problem of Ganpati, H.Heras, 2001, pp.19
2. The Vratyas in Ancient India, Journal of the University of Bombay 1942, pp. 83, DeMyryga or Karthikeya, Journal of the Ram Barma reasarch institute, 12, p.12-13
3. ऋग्वेद, 10/87/2
4. तत्रैव, 7/104/24
5. तत्रैव, 110/25
6. ऐतरेयब्राह्मण 3/4/39, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण 1/18/5 The Devil in Indian, servipture by Heras, J.B.B. Ras 270, p. 225-227
7. The Sacred Hill of Muruga, Somsundaam pillai, p.12

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिप्राय यह है कि शङ्कर का भाल उनका उद्भव स्थल है जिसमें आदि से असामान्य प्रकाश निहित है। उन्होंने हाथ में त्रिशूल ले रखा है जो ज्ञान शक्ति का द्योतक है।[१] यही कारण है कि जिससे उनका बेलन पड़ा है जो प्रागैतिहासिक काल से है। उनका दूसरा नाम वेलयुद्ध है। इनके हाथ में वेल हैं। इस प्रकार सुब्रह्मण्य उपदेष्टा ईश्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा विश्वगुरु हैं।[२] ये ज्ञान के प्रारूप हैं तथा इन्हें कुमार गुरुवर कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि ये सर्वश्रेष्ठ उपदेष्टा मानसपुत्र हैं। कहा जाता है कि उन्होंने अगस्त्यादि ऋषियों को उपदेश दिया था। उनके उपदेश की सत्यता प्रमाणित करने हेतु यह स्पष्ट उल्लिखित है कि उन्होंने अपने पिता शिव को भी अपनी प्रतिभा का बोध कराया था। कुछ मूर्तियाँ ऐसी हैं जिनकी पालनी में पूजा की जाती है। उन मूर्तियों को कटक हस्त दिखाया गया है जो विवेक का फल प्रदान करते हुए प्रतीत होते हैं।

इनकी दूसरी विशेषता उनका मानसपुत्र होना है क्योंकि ये बिना देवी के सम्पर्क से ही उत्पन्न हुए हैं अर्थात् ये मैथुनी सृष्टि से उत्पन्न नहीं हैं। इनका यह स्वरूप विभिन्न पौराणिक कथाओं से सुस्पष्ट है। यथा- इनका एक जन्म शिव के भालनेत्र से माना गया है। दूसरी कथा में शिव ने अपना वीर्य गिराया जिससे एक श्वेत पर्वत उत्पन्न हुआ जहाँ स्कन्द का जन्म हुआ। इस सन्दर्भ में पार्वती झल्ला गई थी कि उन्हें मातृत्व के सुख से वञ्चित रखा गया।[३] एक अन्य प्रसङ्ग यह प्रमाणित करता है कि शिव ने अपना अमोघवीर्य छः कृत्तिकाओं को प्रदान किया जो स्नान करने गई हुई थीं। उनमें से प्रत्येक ने एक-एक पुत्र उत्पन्न किया और सभी पुत्र मिलकर एक हो गये। यह घटना तब घटी जब पार्वती ने उन बच्चों का आलिङ्गन किया।[४] यही कारण है कि उनको कार्त्तिकेय, षण्मुख या मुरूगन कहा जाता है। इन छः सिरों के मेल से ही सुब्रह्मण्य को विवेक का प्रतीक माना जाता है। महान् ऋषियों के सिर विशाल होते हैं, अतः ये सिर दैवी विवेक के प्रतीक हैं।

---

1. The Sacred Hill of Muruga, Somsundaam pillai, p.10
2. The Siva school of Hinduism, Shivapadasundaam p. 184
3. रामायण बालकाण्ड 36 सर्ग- 16-17
4. लेखक का सन्दर्भ निर्देश- The asociation with Parvati is purely accidantal In anther article we may develop The eace of the Mother Goddess.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनकी तीसरी विशेषता यह है कि इनमें स्थायी पुत्रत्व है। इन्हें कुमार मुरुगन कहा जाता है। शिव पार्वती के मध्यम में द्रविड़ देवताओं तृत्व के अन्तर्गत इन्हें सोम स्कन्द कहा गया है। एक छोटे शिशु के रूप में उपस्थित किये गयें हैं। इस सन्दर्भ में सोम में शिव, उमा, स्कन्द का तृत्त्व है। प्रस्तर के शिला पर उत्कीर्ण किये हुए ये शिशु के रूप में पार्वती के गोद में सुशोभित दिखाये गये हैं। इनके तीन शिल्प उत्कीर्णन महाबलिपुरम् में देखे जा सकते हैं। धातु के प्रतिमा में स्कन्द एक छोटे शिशु के रूप में खड़े दिखाये गये हैं।

सुब्रह्मण्य को ब्रह्मचारी माना जाता है। जैसा कि युवावस्था का इनका चित्र है जिसमें इनका बाल मुड़ा हुआ है। मध्य में शिखा है। इन्होने कौपीन धारण किया है और यज्ञोपवीत तथा मौञ्जी मेखला से सुशोभित हैं। कट्यवलम्बिता हस्त के साथ भी इनका विग्रह का स्वरूप मिलता है। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार ये ब्रह्मचारी के रूप में क्रौञ्च पर्वत पर निवास करते हैं। इस पर एक नाटकीय ढङ्ग का स्वरूप जोड़ा गया है जिससे ये अपने भाई गणेश के विवाहित होने से निराश होकर क्रौञ्चपर्वत पर चले।[1] क्रौञ्चपर्वत तमिलनाडु में स्थित है। इसलिए इनकी उपाधि पुरञ्जीआण्ड्वर अर्थात् पर्वतों के स्वामी। पुरञ्जीवेण्डन अर्थात् पहाड़ियों के शासक। पुरञ्जीमन अर्थात् पवतों के ईश्वर और पुरञ्जीमन-स्वत: एक पर्वत रूप में भी इन्हें माना गया है। तमिल कविता तिरुमुरुगारुप्पडै में इन्हें पर्वतों पर क्रीडा करने वाला सुब्रह्मण्य कहा गया है।[2]

इनकी चतुर्थ विशेषता इनका सेनापति होना है। ऋग्वेद में वृत्र इन्द्र का शत्रु था। परवर्ती काल में महाकाव्यों तथा पुराणों में इसे तारकासुर कहा गया। जब वह ग्रसन की सहायता से शिव के विरुद्ध खड़ा हुआ तो इन्द्र भयभीत हुए कि इसका सामना करने वाला कोई नहीं है। अत्याचार का निवारण करने के लिए भगवान् शिव को एक पुत्र की आवश्यकता थी। इसी हेतु कार्त्तिकेय का जन्म हुआ। महाबलिपुरम् की गुफा में महिषमर्दिनी का एक उत्कीर्ण चित्र है, जिसमें इस दृश्य को अंकित किया गया है। यह भ्रमात्मक रूप से नारायण या शेषभगवान् कहा गया। यह गुफा पूर्णत: शैवों की है। वैष्णवों के विषय में उल्लेख करना यहाँ उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि

1. शिवपुराण, रुद्रसंहिता कुमारखण्ड - अध्याय 20।
2. पलानी सोमस्कन्द पिल्लै, पृ. 44-45

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्णु तथा ब्रह्म को एक सामान्य देव के रूप में उपस्थापित किया गया है।[१] तारकासुर अपने सहयोगी ग्रसन के साथ जब भगवान् शिव शान्तिपूर्वक अनन्त शयन में निहित थे तब उनका नाश करने के लिए उनपर आक्रमण कर दिया। ठीक इसी अवसर पर स्कन्द की पृथ्वी छोड़कर उत्पत्ति हुई। उन्होंने यज्ञोपवीत, मौञ्जी तथा कौपीन पहन रखा था और उनके दायें हस्त में असुर नाशक शस्त्र था। उनके समक्ष घुटने के बल इन्द्र या अग्नि झुके हुए थे और देवी पार्वती उनके पीछे थी। महाकाव्य के अनुसार जब इन्द्र ने तारकासुरनाशक शिव के पुत्र की उत्पत्ति का समाचार सुना तो वह भयभीत हुआ कि उसका राज्य उसके हाथ से न निकल जाय। उसे तब सन्तोष हुआ जब शिव ने अपने पुत्र को आदेश दिया कि तुम इन्द्र के शत्रु तारकासुर का विनाश कर दो-यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। स्कन्द ने उस समय अग्नि से एक असामान्य शस्त्र प्राप्त किया जिससे वे असुर का नाश कर सके। युद्ध के समय स्कन्द ने अनेक बार इस प्रक्षेपास्त्र को असुर के ऊपर प्रहार किया तो उससे अनेक वज्र तथा भाले निकल पड़े। इस प्रकार स्कन्द ने लाखों असुरो का संहार करते हुए उनके नेता तारकासुर का भी बध कर दिया।[२]

इन्होंने (स्कन्द ने) अग्नि से अभूतपूर्व क्षमता वाली शक्ति प्राप्त किया था। वे अत्यन्त प्रभावशाली थे तथा उनके शरीर से प्रकाश की किरणे निकल रही थीं। इसीलिए उनके द्वारा प्रयुक्त शस्त्रास्त्र उनकी चमक के साथ अपने चमक को समाहित करके महान् असुर तारकासुर का संहार किया। इसीलिए सभी दैत्य उनसे घृणा करने लगे।[३] जब सुब्रह्मण्यम् को तारकारि की उपाधि मिली तो वे मयूर वाहन पर आसीन थे तथा उनके हाथ में वज्र और शक्ति नामक अस्त्र-शस्त्र थे। इन सैनिक अभियानों के कारण इन्हें महासेन तथा तारकजित् की उपाधि प्राप्त हुई।

स्वर्ग में तारकासुर विजय के पश्चात् इन्हें कुमार शब्द से अभिहित किया गया तथा इन्हें गणों का नायक माना गया। ये गण उनके पिता शिव के सेवक थे। वहाँ इन्हें गणपति की उपाधि से नवाजा गया जिसके कारण

---

1. The Image of Narayan by Kany Annals of the Bhandarkar on rash. Inyipe pune, vol. 24, 1943, pp.215-226
2. महाभारत आरण्यपर्व - 14311-15,14402, पृ. 23 का 127
3. The Ganapati cult Venkatakrishna Rao, Q.J.M.S. XLI, P. 99

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये कुमार गणपति कहलाये। जब गणों को अर्जुन ने परास्त किया तो स्कन्द ने उनका प्रोत्साहन किया तब ये स्वर्ग सेना के अध्यक्ष हुए। तब इन्हें असुरों के विरुद्ध स्वर्ग से सुरक्षा कवच प्रदान किया गया। इनका नाम तभी से गुह पड़ा।[१]

तमिलनाडु में सुब्रह्मण्य की पूजा की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। इनका उल्लेख संगम साहित्य में उपलब्ध है। जहाँ इन्हें रक्तदेव कहा गया है।[२] इनकी पूजा प्राधनतया कुरवस पर्वत पर हुआ करती थी जिसका वर्णन तिरुमुरुगारुप्पडै तथा पहुपात्तु में प्राप्त होता है।[३] त्रिपुरासुर युद्ध के अवसर पर पार्वती कुमार के निकट थी जिससे यह स्पष्ट होता है कि कुमार पार्वती इसी सम्बन्ध ने कुमार की कहानी को शिव के पुत्र के रूप में प्रख्यात किया।[४] पतञ्जलि ने भी शिव तथा स्कन्द का उल्लेख किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि उत्तर भारत में भी स्कन्द की उपासना पतञ्जलि काल तक प्रारम्भ हो गई थी।[५] कुमार को ब्रह्मणदेव भी कहा गया है[६] तथा ये यौधेय के द्वारा रोहितक नगर में प्राधनतया कार्त्तिकेय कहे गये हैं।[७] गुप्तकाल में गुप्तवंशीय लोग भगवान् शिव के पुत्र के उपासक थे। उनमें तीन राजशासकों का नाम इस देवता के साथ जुड़ा हुआ उपलब्ध होता है यथा कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त, समुद्रगुप्त आदि।

उत्तरी भारत में स्कन्द या कार्त्तिकेय की पूजा समाप्तप्राय है। कुछ स्थलों पर इन्हें काल्पनिक भय के रूप में देखा जाता है। मुम्बई में सुहागिन स्त्रियाँ कार्त्तिकेय का दर्शन नहीं करती।[८] बंगाल में सुब्रह्मण्य के देवालय में प्राय: चरित्रविहीन स्त्रियाँ ही जाती हैं।[९] इनकी पूजा मूल रूप में दक्षिण भारत

1. किरातार्जुनीयम् , भारवि, 15
2. Tolkappiyam, por. 5
3. Palni, Somasundaram Pillai pp. 44-47
4. Pattupattu, I, 220-249
5. Patanjali on Panini, v. 3/99
6. Catalogue of coins of ancint India, allan, pls cxLIX, C.L.
7. महाभारत आरण्यपर्व- पृ. 1442
8. Clments of ainduiconogrophy by Gopinath Rao, II, p. 415
9. Hard Subrahnanya his Many Names Magadev, the itindu organ (Jajina, Caylon) 1937, April,13 p.1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में ही सुरक्षित है। छोटा से छोटा भी ऐसा कोई गाँव नहीं है जहाँ सुब्रह्मण्य का देवालय न हो।[१] इन्हें सर्वश्रेष्ठ देव के रूप में देखा जाता है जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है तथा ये विश्व के कारण हैं, इन्हीं से विश्व की सृष्टि, उसका संरक्षण तथा अन्त में इन्हीं में सबका तिरोधान भी होता है।[१]

पतञ्जलि ने महाभाष्य में शिव, स्कन्द और विशाख की पूजा का उल्लेख किया है।[३] डॉ. भण्डारकर के विचार से ये दो नाम एक ही देवता के प्रतीक हैं यदि ये भिन्न होते तो पतञ्जलि ने इनका पृथक् पृथक् नाम दिया होता।[४] महाभारत के उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि विशाख स्कन्द के दक्षिण पार्श्व से उत्पन्न हुए थे।[५] यह घटना उस समय घटी थी जब इन्द्र ने स्कन्द के ऊपर वज्र से प्रहार किया था। डॉ. आर. जी. भण्डारकर का मानना है कि परवर्ती काल में दो मनुष्यों को समायोजित करने की प्रवृत्ति प्रचलित हो गई थी।[६] कुषाण हुविष्क के काल में उपलब्ध मूर्तियों से प्रचलित होता है कि ये दो अलग-अलग देव थे किन्तु स्कन्द तथा विशाख सम्भवतः शताब्दि के शुरू में ही समाहित हो गये। डॉ. जे.एन. बनर्जी का अभिमत है कि महामायूरी के समय में कार्त्तिकेय तथा कुमार एक ही व्यक्ति के बोध कराने वाले देव के रूप में रोहतक के देवालय में प्रसिद्ध हो गये।[७]

शिव पार्वती विवाहोपरान्त आनन्द क्रीडा में निमग्न थे, उसी समय शिव का स्कन्न नियन्त्रणरहित होने के कारण पृथ्वी पर पड़ा जिसे पृथ्वी ने जलते हुए अग्नि में प्रक्षिप्त कर दिया। पावक में पवित्र वह वीर्य अग्नि द्वारा गंगा में प्रक्षिप्त कर दिया गया, उससे एक शक्तिशाली शिशु उत्पन्न हुआ, जो गंगा के जल पर तैरता रहा। अन्त में छः कृतिकाओं ने उस बालक को उठाकर अपना स्तन पान कराया। उस अद्भुत बालक ने छः माताओं के पृथक् पृथक् दूध ग्रहण करने के लिए छः मुख बना दिया। चूँकि वह शिव के वीर्य (स्कन्न) से उत्पन्न हुआ था इसलिए उसका नाम स्कन्द पड़ा। महेश्वर

---

1. Ibid
2. Palani, Sundaram pillai, p. 32 n.1
3. महाभाष्य कीलहर्न भाग, 2, पृ. 429
4. Carnichal heetunes on Ancient indian Numisometies, p. 22
5. महाभारत वनपर्व अध्याय 229।
6. Vaisnavism Saivsma & Minar Religious System p. 215
7. On Karttikeya by Upendra Thakura , p.4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने उन्हें गुह नाम दिया। तारकासुर के बध के पश्चात् उनका नाम तारकारि पड़ा। रामायण तथा महाभारत दोनों ग्रन्थों में इनके विभिन्न नामों का कारण उल्लिखित है।[१] अमरकोषकार ने इनके सत्रह नामों का उल्लेख किया है।[२] डॉ. आर.जी भण्डारकर ने कहा है कि जब गङ्गा द्वारा वह वीर्य हिमवन्त पर्वत पर प्रक्षिप्त कर दिया गया तो छः कृत्तिका नक्षत्रों ने उसका पालन पोषण किया तथा उसे अपना पुत्र कहा, अतः उनका नाम कार्त्तिकेय पड़ा।[३] महाभारत ने उन्हें अग्नि का पुत्र कहा किन्तु वे गङ्गा से न पैदा होकर अग्नि की पत्नी स्वाहा से उत्पन्न हुए थे। प्रेमावेश में स्वाहा ने छः ऋषियों का पतित्व स्वीकार किया जो अग्नि को बहुत चाहते थे (ऋषि लोग)। अग्नि जितनी बार स्वाहा से समागम किया और उतनी बार दुर्लङ्घ्य पर्वत के उन वीर्यों का प्रक्षेपण किया उससे एक स्वर्णाण्ड उत्पन्न हुआ। स्वर्णाण्ड से एक शिशु उत्पन्न हुआ जिसके छः शिर द्वादश कर्ण, द्वादश चक्षु तथा द्वादश भुजाएँ और द्वादश पैर वे सभी एक शरीर तथा ग्रीवा से संलग्न हो गये।[४] ऐसा प्रतीत होता है कि इसी कारण इन्हें षण्मुख कहा जाता है।

ऋग्वेद में इन्हें विद्या तथा ज्ञान का प्रतीक माना गया है। इन्हें विश्वविद् तथा विश्ववेद, कवि, कविक्रतु नाम दिया गया है। इन्हें क्रमशः सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, ऋषि तथा ऋषिज्ञानवान् की उपाधि से विभूषित किया गया है।[५]

"सूत्र साहित्य" में निजमेष को अग्नि का पुत्र कहा गया है जो स्कन्द कार्त्तिकेय की प्रतिकृति हैं। इस प्रकार से स्कन्द कार्त्तिकेय स्पष्टरूप से वैदिक काल में अग्नि के पुत्र मान लिए गये थे।[६] शतपथब्राह्मण में कुमार को अग्नि या रुद्र का नवाँ अवतार माना गया है। ऋग्वेद में अग्नि को युद्ध का देवता माना गया है।[७] उनके पास यम का रथ है जो चक्ररहित है। इससे यह

---

1. अ- रामायण, बाल्मीकि सम्पादक के. एन. पाण्डुरंग पृ. 37 बालकाण्ड- 30
   B. Critical Edition of Pune, p. 225, 1/25
2. अमरकोष, अमरसिंह, सम्पादित जी.पी. शास्त्री भाग1 पृ. 39-40
3. वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रेलीजियस सिस्टम, पृ. 24।
4. महाभारत वनपर्व, 229 / 15- 19
5. वैदिक माइथालजी, मैकडाउन, पृ.97, ऋग्वेद 10/91/3, 10/21/5, 2/5/3 1/96/1 और 8/91/8, 4/11/3
6. कौषितकी ब्राह्मण- 60/5, 10/9 Secred Books of the Est, vol.62,p325-26
7. ऋग्वेद 10/1/35

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पष्ट होता है कि कुमार स्कन्द कुमार के मौलिक नाम हैं किन्तु शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इन्हें युद्ध का देवता नहीं माना गया है।

अथर्ववेद के परिशिष्ट में 'धूर्तकल्प' के नाम से स्कन्दयाग का उल्लेख है जिसमें इनके लिए बलि देने का विधान है।[१] इनका स्वरूप महाकाव्यों में तथा पौराणिक आख्यानों में भी प्राप्त होता है जहाँ इनका वाहन मयूर है। इस स्थल पर इनको धूर्त भी कहा गया है और इनकी पहचान विशाख के रूप में निश्चित होती है जहाँ इनका कार्य वरदाता के रूप में नियत किया गया है।[२] श्री गुडविन ने इनका सम्पादन करते समय इनकी तुलना यूनान के देवता हर्मेस से किया है जिनका सम्बन्ध चोरों से है जैसा कि स्कन्द से भी इनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है।[३] ध्यातव्य है कि शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में भी इनका सम्बन्ध चोरों से मिलता है।[४] हिन्दू देव समूह में स्कन्द का उल्लेख सूत्र तथा वेदाङ्ग साहित्य में (६०० बी.सी.-२००बी.सी.) तक अनेक नामों से उल्लिखित है। हिरण्यकेशिन् गृह्यसूत्र में इनका उल्लेख विष्णु रुद्र के साथ ही दिखाया गया है और यह प्रतिपादित है कि इनकी पूजा की प्रथा व्यापक रूप से हिन्दूओं में व्याप्त थी।[५] बौधायन धर्मसूत्र, छान्दोग्योपनिषद्, तैत्तिरीयारण्यक तथा सूत्र साहित्य के अध्ययन से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि कार्त्तिकेय या स्कन्द या सुब्रह्मण्य की पूजा इस काल में भारतवर्ष में सर्वत्र होती थी।[६]

डॉ. विण्टरनित्ज़ का मन्तव्य है कि निजमेष जिनका उल्लेख ऋग्वेद के खिल सूक्तों में प्राप्त होता है वह कोई अन्य देव नहीं, अपितु नैगमेष हैं जो स्कन्द कार्त्तिकेय के विभिन्न पहलुओं में से एक है। जिनका उल्लेख महाकाव्यों तथा पुराणों में प्राप्त होता है। नेजमेष का नाम विभिन्न गृह्यसूत्रों में भी प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि परवर्ती वैदिक साहित्य में स्कन्द कार्त्तिकेय एक प्रसिद्ध देव के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे।[७]

---

1. परिशिष्टा आफ अथर्ववेद Edited by Bolly & Negelein, 1909, p. 128-35
2. धूर्तकल्प 5/2/3
3. Aryan Mythology, G.W. Cox, p.61 FF, 446 FF.
4. मृच्छकटिकम् शर्विलक की टिप्पणी।
5. हिरण्यकेशिन् गृह्यसूत्र 2/8/19
6. The Cuit of Skand Karttikeya in Ancient India by A.K. Chaterjee, p. 4-6
7. On Karttikeya by Thakur, p. 7.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकाव्य साहित्य में यह प्राप्त होता है कि अग्नि का उद्भव सूर्य की परिधि से होता है। इससे स्पष्ट है कि अग्नि भी सूर्य का ही एक स्वरूप है। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि कार्त्तिकेय सौर समूह के देवता हैं जिनकी उत्पत्ति शिव से होने का कोई उद्देश्य नहीं है। यद्यपि इन्हें रुद्र पुत्र कहा गया है।[१] महाभारत से यह पता चलता है कि रुद्र अग्नि का ही एक उपनाम है। इस प्रकार कार्त्तिकेय तथा पार्वती के भी पुत्र हो गये जिन्हें अग्नि तथा स्वाहा कहा गया है।[२] इससे यह स्पष्ट है कि रुद्र अग्नि के उपनाम हैं तो शिव के भी उपनाम हैं।

डॉ. गोपीनाथ राव के अनुसार अधिकतर उपनाम उनके जन्म की परिस्थितियों के कारण नियत हुए थे।[३] उदाहरणार्थ शिव के प्रक्षिप्त वीर्य से उत्पन्न होने के कारण उन्हें स्कन्द, वीर्य के अग्नि में प्रक्षिप्त होने के कारण अग्निभू तथा गङ्गापुत्र, छः कृतिकाओं के द्वारा पालित होने के कारण कार्त्तिकेय छः मुख होने के कारण षडानन, षण्मुख तथा गङ्गा में सरकण्डा के अन्तर्गत उत्पन्न होने के कारण श्रवण शर्वजन्मन एवं गुह, देवताओं की सेना के सेनापति होने के कारण देव सेनापति, तारकासुर के वध करने के कारण तारकारि, क्रौञ्चपर्वत के भेदन करने के फलस्वरूप क्रौञ्चभित्त नाम पड़ा।

कुमार, कार्त्तिकेय को युवा तथा आत्मा के रूप में माना गया है- ऐसा उल्लेख बृहत्संहिता में है।[४] वहाँ इनका स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि ये युवावस्था से युक्त हैं। इनके एक हस्त में भाला है। इनका वाहन मयूर है तथा मुर्गा इनका प्रतीक है। महाभारत में उल्लिखित है कि इनका मुर्गा विशाल है, उसके सिर का स्तवक रक्त वर्ण है जो देवताओं के सेनापति होने का पुरस्कार है। स्तवक यह उसी समय इन्हें प्राप्त हो गया था जब तक उनका पाणिग्रहण देवसेना से नहीं हुआ था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में यह वर्णन उपलब्ध है कि इन्होंने अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त कुक्कुट को भी अपने पार्श्व में रखा है।[५] बृहत्संहिता में भी इसका उल्लेख है किन्तु वहाँ इनकी भुजाओं की संख्या का उल्लेख नहीं है।[६] विष्णुधर्मोत्तरपुराण में इनका

1. शैवमत, लेखक यदुवंशी, पृ. 75-76
2. महाभारत वनपर्व अध्याय 118
3. Elements of Hindu Icongrophy by Rao, vol. II pt. II, p. 429-30
4. बृहत्संहिता - 71, भाग 3-6
5. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, III, 57 भाग 3.6
6. बृहत्संहिता-57, भाग, 41

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विस्तृत वर्णन दिया गया है। इनके छः शिर हैं, नाम कुमार है, स्पष्ट स्वरूप है। ये शिखण्डक के आकार की टोपी धारण किये हैं। इनका वस्त्र लाल है। ये सुन्दर मयूर पर सवार हैं। इनके दक्षिण हस्त में मुर्गा है, एक घण्टा है तथा वैजयन्ती पताका है। वाम हस्त में शक्ति (भाला) है। समरांगण सूत्रधार में इनका एक विस्तृत स्वरूप प्राप्त होता है जहाँ ये युद्ध के देव हैं। इनका रूप उदित होते हुए सूर्य के समान है। इनका परिधान रक्त वर्ण का है। अग्नि ज्योति के सदृश इनका रंग लाल है। सुन्दर युवा स्वरूप है। गले में मुक्तमणि की माला विराजमान है। सिर छः है या कभी-कभी एक ही दिखाई देता है। इनके हस्त में रुद्र शक्ति नामक आयुध रहता है। ये शक्ति के स्वरूप हैं। एक कौतूहल पूर्ण बात यह है कि इस देवता की भुजाएँ स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न हैं। उदाहरणार्थ- नगर में इनकी भुजाएँ बारह हैं। शिकार के अवसर पर इनकी भुजायें छः हैं। ग्रामीणाञ्चल के देवालय में इनकी भुजायें दो हैं।[१]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि ये सौर समुदाय के देवता हैं जिन्हें सूर्य का तेज प्राप्त है।[२] 'स्तोष' या 'श्रुष' नाम भविष्य पुराण में श्रौष नाम से उल्लिखित है। साम्बपुराण में इसी को स्तोष कहा गया है। जो सूर्य के द्वारपालों में से एक है।[३] श्रीकुमार सेन का मानना है कि श्रोष या श्रौष वही है जिन्हें शरोश वरेज या सरोस नाम से जिन्द अवेस्ता में उल्लिखित किया गया है जहाँ ये अहुर्मज्द के आज्ञाकारी तथा निपुण सन्देश वाहक हैं। इरानियन देव शरोष, भारतीय देव स्कन्द के समकक्ष प्रतीत होते हैं। दोनों ही कुक्कुट से सम्बन्ध रखते हैं। एक ने जहाँ दैत्य औसम का नाश शरोष ने किया है। वहीं स्कन्द ने तारक का संहार किया है।[४] ध्यान श्लोक में जो सम्प्रति दक्षिण भारत में प्रचलित है वह इन्हें सूर्य कहता है।[५]

प्राचीन वैदिक साहित्य में सूर्य और अग्नि को सम्बद्ध देव स्वीकारा गया है। वास्तव में सूर्य अग्नि के ही एक अन्य रूप हैं जिनकी पूजा इण्डो-

---

1. Hindu Coins of Iconogrophy byD.N. Shukla p. 296-97
2. Elements of Hindu Iconogrophy, by Rao vol.II, pt.2,P.431
3. On Karttikeya by Thakur, p.11
4. Myurbhanj, N.N. Vasu, Archiyology serve, vol.I No.1,27,J.B.B.R.A.S.,1922, p. 5,25
5. Hindu Iconogrophy by Rao, Vol. II, pt.II, p.432

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यूरोपियन काल में प्रचुर रूप में प्रचलित थी।[१] स्कन्द का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से अग्नि से जुड़ा हुआ मिलता है। इसलिए इनका सम्बन्ध तथा सहभागिता सूर्य से स्वाभाविक रूप से हो जाती है।[२]

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने कुमारसम्भव की पंक्तियों में तारकासुर के बध करने वाले कार्त्तिकेय के जन्म का वृतान्त चित्रित किया है। वास्तव में ये युद्ध के देवता थे। श्री राबर्टसन् ने कालिदास को उद्धृत करते हुए यह बताया है कि एक देवदार का छोटा पौधा भगवान् शिव के द्वारा लिया गया दत्तक पुत्र के रूप में वर्णित है। यह भी निर्दिष्ट है कि उसी से युद्ध देव स्कन्द का पालन-पोषण हुआ। इसीलिए उस देवदार ने सुनहले घड़े के समान अपने गम्भीर वक्षस्थल से निकला हुआ अमृतपान कराया।[३] जैसा कि प्रसिद्ध है कि स्कन्द श्रवणसम्भव[४] या शरजन्म[५] की उत्पत्ति सरकण्डे से मानी जाती है इसीलिए इनका सम्बन्ध देवदार से जुड़ा प्रतीत होता है।

परवर्ती साहित्य में प्रतिमा के रूप में उल्लेख है जहाँ इन्हें स्कन्द, कुमार, कार्त्तिकेय, विशाख तथा गुह आदि कहा गया है। पतञ्जलि ने 'स्कन्द' तथा 'विशाख' को लौकिक देवता माना है।[६] पाणिनि के इस सूत्र पर की गयी व्याख्या द्वारा स्पष्ट है कि शिव, स्कन्द तथा विशाख की पूजा उनके काल में प्रचलित थी (सम्प्रति पूजार्थ)। डॉ. जे.एन. बनर्जी इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि इनमें कोई भी वैदिक देव नहीं है।[७] किन्तु उपर्युक्त उद्धरणों तथा समालोचनाओं से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि ये सभी वैदिक देव हैं तथा इनकी पूजा किसी न किसी रूप में वैदिक काल से अनवरत चली आ रही है।

डॉ. आर. जी. भण्डारकर के अनुसार जो भी किंवदन्ती इस विषय में प्रचलित है उसमें शिव का उल्लेख है। गणेश उनके गणों में से एक हैं

---

1. ASIAR, 1929,30,p.133
2. The cult of Skand Karttikeya by A.K. Chatterjee, p. 23-24.
3. Our forest by F.C. Ford Robertson p. 37, India in Kalidas by B.S. Upadhyaya 2nd ed. 1968, p. 33
4. मत्स्य पुराण, पृ. 33-35
5. रघुवंश, 3, 53
6. महाभाष्य, कीलहर्न, पाणिनीसूत्र,5, 3.90
7. हिन्दू आइकोनोग्राफी, बनर्जी पृ. 86

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिङ्गायत परम्परा की मान्यता है कि ये गोत्र प्रवर्तक हैं तथा स्वतः शिव के स्वरूप हैं। ऐतिहासिक काल में इन्हें रुद्रों का गण कहा जाता था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इनके अनेक नामों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कनिष्क के काल तक स्कन्द कुमार महासेन ये सभी देवता हिन्दू देव समाज में समाहित कर लिए गये थे।[१] ये सभी नाम एक ही देव के हैं। कुमार कार्त्तिकेय के नाम से अनेक संकल्पों का उल्लेख-हेमाद्रि व्रतखण्ड तथा लक्ष्मीधर भट्ट के कृत्यकल्पतरु में निर्दिष्ट है। कृत्यकल्पतरु में इनके नाम से दो व्रतों का उल्लेख है- अष्टमीव्रत तथा दुर्गाष्टमीव्रत।[२] यह व्रत आश्विन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को होता है। इसे दुर्गाष्टमी कहते हैं। इस दिन बालिकाओं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है तथा दक्षिणा भी दी जाती है। अश्विन कृष्ण पक्ष की अष्टमी में काली की पूजा होती है। उनके साथ अम्बा, गणेश, मातृकाएँ, क्षेत्रपाल, शिव तथा कार्त्तिकेय की पूजा होती है।[३] किन्तु कार्तिक मास में किया गया व्रत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस व्रत में विष्णु, शिव, गणेश, आदित्य, चन्द्रमा, इन्द्र, कालिका, सरस्वती, गङ्गा, लक्ष्मी तथा स्कन्दादि की पूजा की जाती थी। इस अवसर पर लोग अत्यन्त प्रातः काल स्नान करते हैं, गायत्री जप करते हैं और एक समय ही अन्न ग्रहण करते हैं।[४]

देवीपुराण के अनुसार अश्विन शुक्ल पक्ष की अष्टमी को लकड़ी के पीढ़े पर स्वर्ण, रजत या लकड़ी की प्रतिमा रखी जाती है। राजा मौन होकर देवी के सम्मुख जप करता है- यह कार्य अर्धरात्रि तक चलता है और युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु वहीं अर्धरात्रि में पशुबलि दी जाती है। तत्पश्चात् अवभृथ स्नान का कार्य राजा द्वारा सम्पादित किया जाता है तथा वह गीले आटे से बनायी गयी शत्रु की प्रतिमा का खड्ग से वध कर स्कन्द को समर्पित करता है जो देवताओं के सेनापति हैं।[५] कुछ तिथि तथा नक्षत्र विभिन्न देवताओं की पूजार्थ विहित हैं- जिनमें शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि ब्रह्मा के लिए, द्वितीया देवी सरस्वती के लिए, तृतीया तिथि गङ्गा के लिए,

---

1. वैष्णव विज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रेलिजियस सिस्टम, पृ. 150-151
2. कृत्यकल्पतरु, पृ. 105
3. तत्रैव पृ. 265-68
4. इण्डियन एक्टीक्वेरी, 15, पृ. 304
5. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, भूमिका, पृ. 77

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थी विनायक के लिए, पञ्चमी नागों के लिए तथा षष्ठी स्कन्द के लिए।[१] कल्हण की राजतरङ्गिणी में कार्तिक पूर्णिमा को पुण्डवर्द्धन (पूर्वी बङ्गाल) में भरतमुनि के निर्देशानुसार इन मन्दिरों में नृत्य तथा गान का विधान वर्णित है। भारत के इस भाग में आज भी इस प्रकार की पूजा की जाती है।[२] यह पूजा स्कन्द कार्त्तिकेय के लिए की जाती है।

जैन मतावलम्बी के आचाराङ्गसूत्र[३] में जिसका प्रणयन निश्चित रूप से ई. सन् के पूर्व का है[४] विभिन्न प्रकार के उत्सवों का वर्णन है। इन्द्र, स्कन्द, मुकुन्द, दैत्य, नाग तथा वृक्षों आदि के सम्मान में इन उत्सवों का आयोजन किया जाता था। इस अवसर पर अनेक श्रमणों को भोजनादि कराया जाता था। जैन मुनियों ने ऐसे उत्सवों पर अपने भिक्षुओं को जाने का निषेध भी किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह प्रथा व्यापक रूप में प्रचलित थी।[५]

श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों ही यह मानते हैं कि कुमार का वाहन हंस है और वे गौराङ्ग हैं।[६] दिगम्बर यह मानते हैं कि उनके तीन सिर हैं, छः भुजाएँ जबकि श्वेताम्बर उन्हें चतुर्भुज मानते है। श्वेताम्बर का कहना हैं कि उनकी भौएँ शुभ्र धनुष के समान हैं तथा वे हंसचारी हैं।[७] दिगम्बर उनके हस्त में नीबू, बाण, नेवला तथा धनुषचारी स्वीकार करते हैं।[८] इस देव को ईश्वर यक्ष जो कुमार के समकक्ष नाम के हैं, वे भी हंसवाहन हैं, जबकि दूसरे ईश्वर यक्ष चतुर्भुज हैं। स्पष्टतया यह ब्रह्म का एक दूसरा नाम प्रतीत होता है जबकि इसका वाहन मयूर है। संभवतः यह एक अनियमितता है।[९]

चतुर्मुख या षण्मुख दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ज्ञात हैं। इनमें श्वेताम्बर षण्मुख को स्वीकार करते हैं। दोनों का वाहन मयूर ही है। चतुर्मुख की बारह भुजाएँ हैं। यह मत भी कुछ लोगों का है, साथ ही दूसरा मत इन्हें अष्टभुज मानता है। इनकी भुजाओं में कुल्हाड़ी, कौषेयक, अक्षमरि (णि),

---

1. Social and Cultural History of Northern India by B.N.Sharma, p. 107-09
2. राजतरङ्गिणी, अध्याय4, पृ. 422
3. Secred Books of the East, vol. 22, p. 92-93
4. Ibid, vol. 22, Introduction, p. 29
5. Religious Life in Ancient India Edited by D.C. Sarcar, p. 53
6. त्रिमूलकः षड्भुजः श्वेतः स्वरूपो हंसवाहनः- प्रतिष्ठासारसंग्रह, जैन भवन, आरा।
7. शुभ्रो धनुबभ्रु .....हंसचरः कुमारः, प्रतिष्ठासारोद्धार।
8. तत्तिर्हभूः कुमाराख्यो..... शासन देवता, वसुपूज्यचरित, हेमाद्रि।
9. The Jaina Icnogrophy by B.C. Bhatlacharya, 1974. p.76

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिल्ड तथा छड़ी आदि हैं।[१] दूसरी ओर षण्मुख की द्वादश भुजाएँ हैं। इनके हाथ में क्रमशः फल छड़ी तथा अभय मुद्रा हैं।[२] इससे यह स्पष्ट होता है कि कुमार या कार्त्तिकेय का स्वरूप ब्रह्म से मिलता है। श्वेताम्बरों का यक्ष षण्मुख है और निःसंदेह ही ये कार्त्तिकेय ही हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ये मयूरवाहन हैं जो कार्त्तिकेय के ही स्वरूप है।[३]

वैदिक परम्पराओं के अनुसार जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाओं को मूर्तरूप में माना जाता है उसी भाँति पालि तथा संस्कृत बौद्ध परम्पराओं भी यह सिद्धान्त स्वीकार्य है। हीनयान तथा महायान दोनों ने ही हिन्दू देवों का नाम सहित ग्रहण जैसे शक्र (शक्क), इन्द्र (इन्द), प्रजापति, विष्णु, सोम, नारायण, स्कन्द या कुमार, शिव, यम, सूर्य, वायु तथा अग्नि आदि। किन्तु बौद्धों ने उन्हें अपने सम्प्रदायों में अपने अनुकूल ही बनाकर ग्रहण किया है। प्रमाणरूप में बौद्ध यह विश्वास करते हैं कि ईश्वर बुद्ध से निम्नस्तर का है। उसका जन्म तथा मृत्यु भी होती है। वे यह मानते हैं कि बुद्ध की शिक्षायें, बुद्ध का नैतिक आचरण एक मनुष्य बनने के लिए आवश्यक है।[४]

किंवदन्तियों के अनुसार कार्त्तिकेय का चरित्र योद्धा का है। प्राचीन भारत में आयुधजीवी संघ था। उनका राज्य था। इन्हें क्षत्रिय कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि कार्त्तिकेय इनके आध्यात्मिक तथा भौतिक शासक थे।[५] कार्तिकेय ने सैन्यक्षेत्र के अनुसार भारत को छ भागों में बाँटा था, जिनको कार्तिकेय की छः माता कहते हैं[६]- दुला (बंगाल, ओडिशा), दुला देवी मन्दिर, दुलाल = कार्तिकेय, अभ्रयन्ती (२ माँनसून का सारम्भ- आन्ध्र, महाराष्ट्र) मेघयन्ती (गुजरात, राजस्थान, जहाँ मेघ कम किन्तु मेधानी उपाधि है), वर्षयन्ती (अधिक वर्षा असम), नितन्ति (नीचे फैलने वाली लता- तमिलनाडु), चुपुणिका (पंजाब, चोपड़ा)। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी स्कन्द को सेनानी मानते हुए अपना रूप ही बताया है।[७] महाभारत के अनुसार क्षत्रियों का उद्भव ब्राह्मणों से हुआ है। सनत्कुमार प्रथम ब्राह्मण थे।[८] इस परम्परा का मूल छान्दोग्योपनिषद् में भी प्राप्त होता

---

1. Ibid 76
2. विमलस्य..... चतुर्मुखः यक्ष द्वादश.....शिखिवाहिनः.....- प्रतिष्ठासारसंग्रह
3. मन्दिरप्रतिष्ठाविधान (पाण्डुलिपि आरा)
4. On Karttikeya, p. 17
5. Ibid
6.(क) तैत्तरीयसंहिता, 4/4/5/1. (ख) तैत्तरीयब्राह्मण, 3/1/4/4.
6. गीता 10/24
7. महाभारत 12/37/12

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है जहाँ सनत्कुमार ने महर्षि नारद को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था।[१] इस प्रकार सनत्कुमार या स्कन्द उपदेशक देव के रूप में मान्य हैं। दक्षिण भारत में एक प्रकार की प्रतिमा में कार्त्तिकेय या सुब्रह्मण्य को देशिक सुब्रह्मण्य माना गया है। इस स्वरूप में अपने पिता शिव जी को प्रणव का उपदेश किया था। जिसका चित्रण रामेश्वर गुफा के एलोरा में उपलब्ध है।[२]

मैत्रायणी संहिता में कुछ पौराणिक देवों के नाम से गायत्री मन्त्र प्राप्त होते हैं। ये मन्त्र शतरुद्रिय सर्व (बाणचालक) देव रुद्र को आहूत करने के लिए प्रयुक्त किया गया है।[३] ये गायत्री मन्त्र पुरुष महादेव, कुमार कार्त्तिकेय, (स्कन्द) चतुर्मुख, पद्मासन आदि के लिए प्रयुक्त हैं। तैत्तरीय संहिता तथा वाजसनेयी संहिता में शतरुद्रिय के उद्धरण प्राप्त होते हैं। प्रथम अनुवाक के दशवें प्रपाठक में गायत्री मन्त्र जिन देवताओं से सम्बन्धित हैं उनके नाम- पुरुष महादेव रुद्र, पुरुष महासेन, षण्मुख (कुमार- कार्त्तिकेय) आदि का नाम स्पष्टतया प्राप्त है। मैत्रायणी संहिता तथा तैत्तरीय आरण्यक के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि दोनों स्थानों पर ये मन्त्र समान हैं। महानारायण उपनिषद् के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि परवर्ती वैदिक उक्तियों में लौकिक देवताओं का प्रयोग प्राप्त होता है। पतञ्जलि ने भी इनका उल्लेख किया है (लौकिका: देवा:)।

शूद्रक के मृच्छकटिक से यह ज्ञात होती है कि स्कन्द प्रधान रूप से चोरों और डाकुओं के देवता थे। कार्त्तिकेय तथा गणपति के तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि गणपति की बहुत सी विशेषताओं को कार्त्तिकेय में आरोपित कर दिया गया है।[४] स्कन्द कार्त्तिकेय कभी-कभी छागवक्त्र भी कहे गये हैं तथा इन्हें नैगमेय कहा गया है।[५] लाला भगत ने यह उल्लेख किया है कि स्कन्द सूर्य देव के अनुचरों में से एक हैं, जो प्रतिमा विज्ञान एक उल्लेख, जहाँ इन्हें दण्ड तथा स्कन्द कहा गया है- यह प्रमाणित होता है।

---

1. छान्दोग्योपनिषद् 7/26
2. Hindu Iconogrophy by Rao, Vol. II, p.350
3. Vibhuti of sivas Icongrophy, C. Sivaramamurti
4. Rao, p.303-4, Banarji, p. 106-07
5. Banarji, p. 363

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कन्द-कार्त्तिकेय की पूजा ई. सन् के शुरु में उत्तर भारत में होना प्राप्त होता है। कुमारगुप्त के काल का विल्सद का शिलालेख है उससे स्पष्ट होता है।[१] साथ ही बृहत्संहिता में भी इसका उललेख प्राप्त होता है।[२] इसी सेहिता में कार्त्तिकेय को बर्हिकेतु कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि इनका वाहन मयूर है। इनके हाथ में भाला है। इनका स्वरूप शिशु के सदृश है। इनकी दो ही भुजायें हैं। विष्णुधर्मोत्तर में ही आगे चलकर देवताओं के तीन नामों के स्वरूप का उल्लेख है जैसे- स्कन्द, कुमार तथा गुह। इन सभी का विवरण कुमार के ही सदृश है, किन्तु यहाँ भी छः मुख तथा मयूर वाहन का उल्लेख नहीं है।[३] वैखानसागम में उल्लेख है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की प्रतिमा उत्तमदशतालमान (१२४ अङ्गुल) इन्द्र और लोकपाल व अश्विन, भृगु, मारकण्डे, गरुड, शेष, दुर्गा, गुह (कुमार-कार्त्तिकेय) अधमदशतालमान (११६अङ्गुल) की है।[४] आगम तथा तन्त्र में अनेक प्रतिमाओं के निर्माण का उल्लेख है। डॉ. गोपीनाथ राव का अभिमत है कि प्राय: सभी आगमों में कार्त्तिकेय का उल्लेख है यथा- शक्तिधर, स्कन्द, सेनापति, सुब्रह्मण्य, गजवाहन, श्रवणभव, कार्त्तिकेय, कुमार, षण्मुख, तारकारि, सेनानी तथा ब्रह्मशास्त्रादि।[५]

स्कन्द के प्रतीक चिह्न - शक्ति, कुक्कुट तथा शिखि अत्यन्त प्राचीनकाल से हैं। यहाँ इनके दो ही भुजाओं का उल्लेख है। अत: दक्षिण हस्त अभयमुद्रा तथा वामहस्त में शक्ति लिए हुए हैं। यहाँ इनकी उपाधि शक्तिधर है। कभी-कभी इनका वाहन कुक्कुट तथा कभी-कभी मयूर दिखाया गया है। इनकी प्रतिमा के पार्श्व में ब्रह्मण देवता शिव लिङ्ग रूप में तथा अर्धनारीश्वर मानवरूप में चित्रित हैं। उनके साथ कार्त्तिकेय - गणपति आदि खड़े हैं। यह कुषाण काल की प्रतिमा है। कार्त्तिकेय की पूजा इस काल में मथुरा में प्रसिद्ध थी।[६] यह देव समुदाय क्रमश: विस्तृत होता गया और गुप्त काल तक

---

1. J.B.B.RAS, XX,1913, p. 385
2. बृहत्संहिता 57/41
3. विष्णुधर्मोत्तर पुराण (बाम्बे संस्करण) 1912, 3/71, पृ. 3-7
4. Rao, p.71, Banarji, p. 324
5. Dr. Gopinath, vol. II, p. 432
6. East & west, vol. 16,1966, p.83, in On karttikeya p. 20

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आते-आते इनके अनेक नाम हो गये। वही कुमार, विशाख, स्कन्द तथा महासेनादि। कश्यपसंहिता (रेवती कल्प) चार देवों की देवी षष्ठी का भाई स्वीकार किया गया है। पाँचवा भाई नन्दिकेश्वर कहा गया है। यह उल्लेख ई. के दूसरी शताब्दी का है।

भाष्य व्याख्यान (तमिल मलयालम) व्याख्या किसी अज्ञात लेखक की तथा अज्ञात काल तथा (श्रीमूल संस्कृत व्याख्या टी. गणपति शास्त्री) में दुर्गा, विष्णु, सुब्रह्मण्य तथा इन्द्र पर व्याख्या की गयी है।[१] कौटिल्य के अनुसार नगर के मुख्यद्वार पर ब्रह्मा, इन्द्र तथा सेनापति की प्रतिमा रक्षक के रूप में स्थापित की जानी चाहिए।[२] इस उल्लेख से यह सिद्ध है कि कार्त्तिकेय के मन्दिर तथा देवरूप में उनकी पूजा उत्तर भारत में ईसा ई. सम्वत् के पूर्व हो चुकी थी।

ललितविस्तर ई० पूर्व प्रथम शताब्दी का माना जाता है- जिसमें यह उल्लेख है कि बालक सिद्धार्थ की प्रतिमा शक्र, शिव, स्कन्द, नारायण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, ब्रह्मा तथ लोकपालों के साथ प्राप्त होती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि बुद्ध के जीवन काल में स्कन्द की उपासना प्रचलित थी।[३] प्राचीन भारतवर्ष में यौधेय लोगों का एक संघ था जिसमें स्कन्द कार्त्तिकेय का संरक्षण करने वाले देवता के रूप में उल्लेख किया गया है।[४]

गुप्तवंशीय नरेश परम भागवत तथा आस्थावान् हिन्दू थे, किन्तु उन्होंने भी स्कन्द, कार्त्तिकेय का विभिन्न अवसरों पर आह्वान किया है। कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त के काल में इनके पूजा की प्रधानता थी। यह उक्ति है कि स्कन्द गुप्त काल में राष्ट्रिय देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे।[५] आविष्कारों से यह स्पष्ट हुआ है कि स्कन्द कार्त्तिकेय गुप्तकाल में उत्तर भारत में सर्वत्र प्रतिष्ठित थे यथा- मथुरा, भूम्र, पवय, नगर, बैरत, समलजित (गुजरात)। वाराणसी, कन्नौज, घुघुआ (उड़ीसा)। इस कथन की पुष्टि इससे भी होती है कि कुमारगुप्त द्वितीय को युद्धदेव कहा जाता था। कुमारगुप्त तृतीय तथा

---

1. Kangle, pt.II, p. 80, Mahabhart XIII, 149/81
2. Economics 2/4/19
3. ललितविस्तर, अध्याय 8, सम्पादित, आर. एल. मित्र, पृ. 137
4. J.N. Benerji, ShaKsheatrap (JNSI Vol. XVI,p. 162)
5. J.U.P.H.S. by V.S. Agrawal, Vol. 9, pt.II, p.36

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महासेनगुप्त नाम का इनके साथ संलग्न होने का संकेत देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि महासेनगुप्त तथा कुमारगुप्त का उल्लेख हर्षचरित में भी प्राप्त होता है जहाँ इन्हें राजवर्द्धन का मित्र बताया गया है।

नवीं शताब्दी में इनका उल्लेख अल्मोड़ा जिले में प्राप्त होता है जहाँ इनकी पूजा शिव के साथ होती है। यहाँ इनके नाम का एक नगर है- कार्त्तिकेय नगर। ललितसूरदेव नवीं शताब्दी कार्त्तिकेयपुर में प्रतिष्ठित बताये गये हैं। यहाँ के एक प्रस्तर स्तम्भ में कार्त्तिकेय विजय का भी उल्लेख है। ऐटकिन्सन[१] के उल्लेख से यह नगर कस्तूरी के राजा के द्वारा कुमाँयू के कत्यूर घाटी में करवीरपुर[२] नाम से प्रसिद्ध था। डॉ. डी. आर. भण्डारकर तथा डॉ. डी. सी. सरकार का मानना है कि कात्तिकेयपुर कत्युर का संस्कृत रूप है।[३] साहित्यिक सन्दर्भों में काव्यमीमांसा में राजशेखर ने इसे कार्त्तिकेय नगर कहा है।[४] कल्हण की राजतरंगिणी में ललितादित्य का प्रपौत्र जयापीड जब बंगाल गया था तब जयन्त गौड़ का राजा था। जयापीड को स्कन्द या कार्त्तिकेय के दरवाजे के मन्दिर पर पुण्डरवर्धन के निकट विश्राम करना पड़ा था। यह घटना आठवीं शताब्दी की है। जिससे यह प्रमाणित होता है कि कार्त्तिकेय सम्प्रदाय का प्रचलन बंगाल में भी था। गरुड पुराण में यह उल्लिखित है कि पुण्डरवर्धन कार्त्तिकेय का तीर्थ है। यह मान्यता है कि यह ग्रन्थ गरुड पुराण राजतरंगिणी से पहले का है।[५] इस मन्दिर का उल्लेख कार्त्यामाहात्म्य नामक एक पुस्तक में भी प्राप्त होता है किन्तु इस पर किसी तिथि का उल्लेख नहीं है।[६] इस देवालय की पहचान मौजाबगपर महस्थान से दो किलोमील दूर स्कन्दपुर के रूप में किया गया है। श्री सन्ध्याकरनन्दी इस स्थान को स्कन्दनगर कहते हैं।[७] श्री सन्ध्याकरनन्दी इस स्थान को स्कन्दनगर जानते थे। आर्य क्षेमेश्वर के चण्डकौशिक[८] जो गुजरात प्रतिहार

---

1. The Himalayan district of north west provins of India, Vol. II, p. 468
2. Indian antique, Vol. 31, p. 279
3. काव्यमीमांसा, गायकवाड़ ओ.सीरीज, पृ. 47
4. तत्रैव
5. गरुडपुराण पूर्वखण्ड, अध्याय 81, चौखम्बा संस्करण
6. History of Dharmasastra, by Kane, Vol.5, II, p. 889
7. Ramcharitmanas, III,2 Edited Basak, Majumadar & Benerjee Report, ASI (B cicle) 1920-21 pt. II, p. 25, JASB, 1878, p. 91
8. चण्डकौशिक अंक-5 का, अन्तिम श्लोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वंश के प्रथम महापाल थे इन्होंने इसका नाम कार्त्तिकेय[1] दिया है। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि कार्त्तिकेय की पूजा बंगाल में भी प्रचलित थी जहाँ इनकी पूजा के लिए अलग तिथि का भी निर्धारण किया गया था। बंगाल की हिन्दू जनता इस देवता की पूजा वर्ष में एक बार करती है। जहाँ इनसे वंशवृद्धि की प्रार्थना की जाती है। इनकी पूजा कार्तिक मास की अन्तिम तिथि को की जाती है।[2] यहाँ इनकी सुन्दर प्रतिमा मयूरवाहन के साथ बनाई जाती है। इनकी पूजा प्राय: नगर की औरतें करती हैं। पूर्वी भारत में इनकी पूजा दुर्गा माँ के साथ की जाती है। इनकी प्रतिमा मातृका से बनाई जाती है जिन्हें पूजोपरान्त जल में विसर्जित कर दिया जाता है।

जिस भाँति इनकी पूजा उत्तर भारत में प्रसिद्ध है उसी भाँति दक्षिण भारत में भी प्राचीनकाल से इनकी पूजा चली आ रही है। तमिलनाडु में छ: प्रसिद्ध सुब्रह्मण्य क्षेत्र हैं। वे ये हैं- १. तिरुप्परन्कुन्द्रम मंदिर, २. तिरुचेन्दूर मंदिर, ३. पलनी मंदिर, ४. स्वामिमलै मंदिर, ५. तिरुत्तनी मंदिर, ६. पलमुदिरचोलै मंदिर। प्राचीन तमिल साहित्य में संगम साहित्य के प्रधान ग्रन्थ पत्तिनापल्लई, पोरुनतरुपद्दई, पेरुपन्तरुपद्दई, कुरिञ्चिपत्तु, तोल्लकप्पियम्, नरिनय्यि तथा अन्य ग्रन्थों में मुरुगन के नाम से उल्लिखित है।[3] किन्तु तमिल पद्यमय रचना संगमकाल की है जहाँ इनको अत्यन्त आदरपूर्वक प्रदर्शित किया गया है। भक्तगण सहस्रों की संख्या में इसका पाठ करते हैं तथा इस पर टिप्पणी लिखते हैं। इस पुस्तक की इतनी पवित्र महिमा है कि इसे शैव सूक्तों (मन्त्रों) की एकादशवीं पुस्तक के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसके द्वारा मुरुगन के भक्त नित्यार्चन क्रिया सम्पादित करते हैं।[4] इनके चमत्कारपूर्ण कार्यों और शौर्यपूर्ण कृत्यों के लिए इस पद्य में चार मन्दिरों का विशेष उल्लेख है जो पर्वत की चोटी पर स्थित है- तिरुपरन्कुर्नरम, तिरुचैरलैवै, तिरुवनिनकुदि और तिरुवेरगम। तिरुपरन्कुर्नरम मदुरै में दक्षिण पूर्व में स्थित है जहाँ मुरुगन की प्रतिमा कवि नक्किरर के साथ स्थापित है। जिससे मुरुगन के भक्त की ख्याति प्रतिष्ठित होती है। एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल का भी उल्लेख है जो मदुरै काञ्ची में एक छोटी पहाड़ी पर स्थित है। तिरुचैलैवल-तिरुचिन्दूर के रूप में माना गया है जहाँ यह देवालय एक छोटी पहाड़ी पर स्थित है।

---

1. On Karttikeya p.25
2. J.N. Banarjee p. 364
3. सुन्दरम पिल्लई के अनुसार ये ग्रन्थ चतुर्थ शताब्दी के लिखे गये हैं।
4. A.K. Chatterjee p. 60

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कन्द का शिलालेखीय स्रोत

प्राचीन भारतीय शिलालेखों में स्कन्द की पूजा तथा अन्य विवरण गुप्तकाल के पूर्व नहीं पाये जाते। कुछ विद्वानों का मानना है कि हुविष्क का एक नाम महासेन भी है, जो कार्त्तिकेय का ही एक नाम है। ये युद्ध देवता के रूप में उसके द्वारा पूजे जाते थे।[१] पेशावर के खरोष्टी शिलालेख में महासेन का नाम पाया जाता है जो कार्त्तिकेय का ही एक नाम है।[२] अट्ठावन ई. में मथुरा के शिलालेख में 'सरस्तव' शब्द का उल्लेख है जिसका 'तात्पर्य सरकण्डे में रहने वाला है।' इससे स्पष्ट है कि स्कन्द का एक नाम 'शरजन्मा' या 'शरभू' भी है। इस शब्द का विवरण पुराणों में प्राप्त होता है।[३] इस सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि यूनानी युद्ध का देवता 'अरेस' भी कुषाण सम्राट् हुविष्क के सुनहले स्वर्ण सिक्कों में मुद्रित है।[४] इस प्रकार विद्वानों द्वारा निर्धारित यह निष्कर्ष बहुत प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता। ईसा के काल के प्रारम्भ में स्कन्द-कार्त्तिकेय यौधेयों के संरक्षक देव के रूप में विख्यात हैं। उनके एक नेता का नाम महासेनापति है जो विजयगढ़ प्रस्तर शिलालेख से प्रमाणिक होता है। यह शिलालेख भरतपुर राज्य से प्राप्त हुआ था।[५]

कानपुर के देहरापुर तहसील में प्राप्त लाल प्रस्तर का शिलालेख प्राप्त है जिसमें कुमार वर उत्कीर्ण है जिससे साबित होता है कि यह शब्द स्कन्द -कार्त्तिकेय के लिए ही प्रयुक्त है। कुछ विद्वान् इस शिलालेख को प्रथम शताब्दी वी.सी. तथा अन्य तृतीय शताब्दी ए. डी. मानते हैं।[६] दूसरा शिलालेख जो गुञ्जी से प्राप्त है- जिसका काल ईसा का प्रथम द्वितीय शताब्दी माना जाता है उसमें 'कुमारवीरदत्त' का उल्लेख है- इसे मिराशी ने कुमारवरदत्त श्री या श्रीकुमारदत्त और डी. आर. भण्डारकर ने उसे कुमार वसन्त पढ़ा है।[७] कुमारदत्तवर का वास्तविक अर्थ देव कुमार के प्रति

---

1. Indian Historical Qnuatrly, Vol. 12, p. 153-156 Huvisk and Mahasen, by W.K. Deb
2. On Karttikeya, p. 31
3. Epigrafica india, Vol. I, भाष के नाटक, पृ. 78, लेखक सी. आर. देवधर संसकरण-7
4. A.K. Chattrjee, p.31
5. Journal of Asiatic socity of Bengal, 1887, p.130
6. On Karttikeya, p. 31
7. Ibid, p. 32

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निष्ठावान् होना होता है। यह नाम कुमारवीर के रूप में स्कन्द-कार्त्तिकेय का ही है। इस शिलालेख से एक विशिष्ट बात यह स्पष्ट होती है कि कुमार का एक भक्त वासुदेव की तरह का था जिसे वीर माना जाता था।[१] कुमारदत्त का नाम कृष्णगुण्टूर क्षेत्र के इक्ष्वाकु नरेश का नाम भी वीरपुरुषदत्त ही था।[२] तीसरी शताब्दियों का एक अन्य शिलालेख अब्बोत्ताबाद (जिला हाजरा, पश्चिमी पाकिस्तान) में भी कार्त्तिकेय का एक देवालय कुमारस्थान नाम से गशूरसफ्रा एक विदेशी के द्वारा बनाया गया था। इस शिलालेख से यह निःसन्दिग्ध प्रमाणित होता है कि कार्त्तिकेय विदेशियों में भी प्रसिद्ध थे। ठीक उसी प्रकार हुविष्क ने भी अनेक प्रकार के युद्ध देवों का अंकन कर मुद्राएं प्रचलित की थी। वेसनगर का शिलालेख होलियोडोरस के द्वारा ईसा पूर्व प्रथम तथा द्वितीय वर्ष माना जाता है जिसमें यह उल्लेख है कि विभिन्न विदेशियों ने हिन्दू धर्म ग्रहण किया। ये विदेशीजन लुटेरे तथा योद्धा थे जिन्होंने वीरों का आदर किया। मध्यप्रदेश के खानाखेरा शिलालेख में महादण्डनायक श्रीधर वर्मा २७९ ए. डी. से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।[३] इस शिलालेख में स्वामी महासेन का प्रथम पंक्ति में ही उल्लेख किया गया है- स्वामी महासेन महाभक्तस्य- जिससे स्पष्ट होता है कि शक सम्राटों के यहाँ भी कार्त्तिकेय का उतना ही सम्मान था।[४] कंकालीटोला मथुरा में एक तीन पंक्तियों का शिलालेख प्राप्त है- जिसमें यह उत्कीर्ण है कि ११वें वर्ष के चतुर्थ मास में शरत्काल के प्रथम दिन कार्त्तिकेय प्रतिमा की स्थापना विश्वदेव, विश्वसेन, विश्वभव, विश्ववसु- सभी क्षत्रिय विश्वविल के पुत्र थे।[५]

देवगिरि की पहाड़ी पर सरवणभव या शरजन्मा का मन्दिर बना हुआ है। इससे यह सिद्ध होता था कि दक्षिण भारत में भी इनकी पूजा प्रचलित थी। बिहार में एक भग्नावशेष शिलालेख प्राप्त है जिससे स्कन्दगुप्त का एक मन्दिर भद्राय्या में स्थित है जो स्कन्द के साथ ही दैवी माताओं का भी मन्दिर है।[६] इस देवालय में शाक्तविधि से पूजा अर्चा होने का उल्लेख मिलता है। सप्तमातृका

---

1. J.N. Banarjee p.94 A.K. Chatarjee p.39
2. D.C. Sarkar, p. 60
3. Selected Inscripshan by D.C. Sarkar, p. 180-82
4. D.C. Sarkar, p. 180
5. On Karttikeya, p. 33
6. D.C. Sarkar, p. 316

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का उल्लेख अन्यत्र भी प्राप्त होता है किन्तु स्कन्द की छः ही माताएँ मानी जाती हैं। डॉ. जे. एन. बनर्जी का मत है कि गणपति तथा वीरभद्र मध्यकाल में सप्तमातृकाओं के प्रतीक थे।[१] आदित्यसेन के अपसद शिलालेख में कार्त्तिकेय का उल्लेख है जिन्हें शिव का पुत्र माना गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि बिहार में स्कन्द तथा कार्त्तिकेय की उपासना होती थी।

उच्छकल्प का ताम्रपत्र जो राजा सर्वनाथ, बघेलखण्ड का था, वह आज भी राजपूताना के अजमेर म्यूजियम में उपलब्ध हैं जिससे महाराज सर्वनाथ कार्त्तिकेय के मन्दिर के सञ्चालन के लिए गाँव दान दिया था।[२] अपसद के शिलालेख जो आदित्यसेन के द्वारा स्थापित है उसमें जीवित पुत्र प्रथम जो कुमारगुप्त का पुत्र है उसे हर का तनय तथा शिखवाहन कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह कोई और नहीं, बल्कि कार्त्तिकेय ही थे।[३]

गुप्तकाल के पूर्व जितने भी शिलालेख हैं उनमें कार्त्तिकेय को शिव के साथ जोड़ा गया है तथा परवर्ती गुप्तकालों में शिव के अन्य पारिवारिक सदस्य भी जोड़े गये हैं। सर्वाधिक प्राचीन शिलालेख, नागार्जुन कुण्डा से मिला है उसमें इन्हें 'हुतवहः तनय' अग्नि का पुत्र कहा गया है।[४] सातवीं शताब्दी के पश्चाद् कार्त्तिकेय शिवपरिवार में सम्मिलित हो गये।[५] बिझोली शिलालेख में चह्वाण सोमेश्वर जिनका काल ११६८ ए. डी. है उसका उल्लेख बिझोली से ११२ मील उत्तरपूर्व उदयपुर से प्राप्त हुआ है, उसमें कुमारेश्वर या कार्त्तिकेय का नाम उल्लिखित है तथा उस स्थान पर एक मन्दिर भी है।[६]

दक्षिण भारत के प्राचीन शिलालेखों में मुरुगन या मुरुगन का उल्लेख नहीं मिलता। सातवाहन, इक्ष्वाकु, पल्लव, कदम्ब या नल आदि नरेशों के शिलालेख में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में तमिलदेव संगम का उल्लेख अप्राप्त है। इनका नामोल्लेख न होने का कारण तमिल लोगों में इनका द्रविडियन होना विद्वानों ने माना है।[७] सातवाहन के शिलालेख में भी इनका

1. J.N. Banrjee p. 364
2. Epigrafica india, Vol. 19, p. 127-131,
3. On Karttikeya, p. 34
4. Epigrafica india, Vol. 33, p. 148-149
5. On Karttikeya, p. 35
6. Epigrafica india, Vol. 27, p. 102
7. D.R. Bhandarkar list of northen indian incription no. 1198

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामोल्लेख नहीं है किन्तु सातवाहन नरेशों, स्कन्दनागशतक तथा स्कन्दस्वस्ति का उल्लेख कह्नेरी शिलालेख में प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय भी स्कन्द विख्यात देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे।[१] प्रथम शताब्दी ई. पूर्व के नानाघाट के लेख में लिखित है कि 'नमःकुमारवर्ष' इससे स्पष्ट है कि प्राचीन शिलालेख में भी इनका सन्दर्भ प्राप्त होता है।[२] (पूर्ण रूप से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में न केवल इनकी पूजा प्रतिष्ठा मन्दिरों का ही उल्लेख है प्रत्युत विभिन्न स्थानों को इनके तीर्थ स्थान घोषित करने की परम्परा प्रचलित है। अतः इससे स्पष्ट है कि स्कन्द की पूजा परम्परा निर्बाध रूप से न केवल राजवंशों में, बल्कि सामान्य जनता में भी प्रचलित थी।)

कदम्बों के शिलालेख में कार्त्तिकेय स्वामी का उल्लेख उनकी मातृकाओं के साथ उत्कीर्ण है- (स्वामीमहासेनमातृगणानुबन्ध्यातानां कदम्बानाम्)[३] ऐसा प्रतीत होता है कि यौधेयों के भाँति कदम्ब लोग भी सुब्रह्मण्य की पूजा करते थे। दक्षिण में शिव के साथ इनका उल्लेख कष्ट देने वाले देवताओं के रूप में किया गया है। इनको कुमार कहा गया है, जो बच्चों को कष्ट देते थे।[४] नैगमेष की प्रतिमा में अजा का सिर है तथा सूँड़ लगा हुआ है और मनुष्य के रूप में चित्रित है। यह इस बात की सूचना देता है कि उल्टी कराते हैं और पागल की तरह बात करते हैं।[५]

छठी शताब्दी के चालुक्य नरेशों के मन में यह धारणा थी कि परिवार को निर्बाध रूप से सुख सम्पत्ति की प्राप्ति कार्त्तिकेय के अनुग्रह से हुई है।[६] पूर्व उल्लेखों के आधार पर यह निःसन्देह रूप में प्रमाणित होता है कि सुब्रह्मण्य, कार्त्तिकेय या स्कन्द युद्ध के देवता थे। ये न केवल आपत्ति में मनुष्यों का ही सहयोग करते थे, बल्कि देवताओं को भी इनकी सहायता प्राप्त होती थी।

---

1. A.K. Chatrjee p. 66
2. On Karttikeya, p. 36
3. Indian antiquery Vol. 6, p.25
4. The Clasical age by R.C.Majumdar p. 44
5. Report on the kumar Exqeshans p. 109
6. Bombey gajetiyar, Vol,I, pt.II, p. 337

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्तिकला की भाँति कार्त्तिकेय का उल्लेख गुप्तकाल तक ही सीमित है, जिनका आधार काष्ठ या शिल्प तक्षण है। यद्यपि कार्त्तिकेय का उल्लेख शिव, विष्णु, सूर्य तथा शक्ति आदि प्रधान देवों में नहीं है, किन्तु यह निःसन्देह सत्य है कि प्राचीन भारत में इनकी पूजा होती थी। भारतनरेश, आदिवासी राज्य तथा स्थानीय एवं विदेशी शासक इनकी पूजा अत्यन्त आदर तथा श्रद्धा के साथ करते थे। विद्वानों का विश्वास है कि ब्राह्मणों के देवता के रूप में कार्त्तिकेय का मुद्राओं पर उत्कीर्णन प्रचलित था। कुछ मुद्राओं पर ब्रह्मण्य कुमार का उत्कीर्णन प्राप्त होता है। श्री अल्लन ने द्वितीय शताब्दी के पञ्चमार्क के सिक्के का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस पर एक अपरिष्कृत मनुष्य का चित्र है जिसमें एक शब्द हीन घण्टी का प्रतीक बना हुआ है और सम्भावना व्यक्त की है कि यह कार्त्तिकेय का ही चित्र है। यह इसलिए उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इनके दक्षिण हस्त में भाला (शक्ति) का चित्र बना हुआ है।[१] किन्तु कनिंघम ने इसको सूर्य के रूप में पहचाना है, चूँकि इसके पार्श्व में वृक्ष उगे हुए हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि यह मुद्रा बौद्ध काल की निर्मित है।[२] इतना होते हुए भी चित्रांकन विषयक यह सन्देह दूर नहीं होता।

उज्जैन में सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के स्वरूपों का चित्रण है। इनमें सूर्य और चन्द्रमा आदि भी हैं। इनका चित्रण मानवाकृति में है। ये प्रतीकात्मक भी हैं। इनका सम्बन्ध ब्राह्मणधर्म तथा बौद्ध धर्म से भी है।[३] इन मुद्राकृतियों के स्वरूप को उज्जैन प्रतीक कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि स्थानीय प्रतीकों के स्वरूप हैं। इसमें एक विलक्षण स्वरूप ऐसा है- जिसके तीन सिर हैं, वह खड़ा है तथा लम्बी छड़ी लिए हुए हैं। श्री अल्लन ने इसकी पहचान शिव महाकाल या कार्त्तिकेय के रूप में किया है।[४] कनिंघम ने इनकी पहचान महाकाल के रूप में बतायी है, जो प्रसिद्ध देवता है तथा ब्राह्मणधर्म के प्रतीक हैं।[५] डॉ. जे० एन. बनर्जी इससे सहमत नहीं हैं, क्योंकि उनका कथन है कि कार्त्तिकेय के हाथ में छड़ी नही हो सकती।

---

1. Catelog of quayans in the british msusiam, quayans of anciant india by J. Allan, On Karttikeya, p. 44
2. Quayans of ansiant india by Kaningham p.97
3. Local quayans of northen india by A.K. Narayana p.54-55
4. On Karttikeya, p. 45
5. Quayans of anciant india by Kaningham p.98

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्त्तिकेय को शिव भी नहीं कहा जा सकता। कार्त्तिकेय के छः सिर हैं, जबकि कुषाणवंश की मुद्रा में शिव को तीन सिर वाला दिखाया गया है।[१] डॉ. ए. एस. अल्तेकर तथा श्री डी. बी. डिस्काल्कर का अभिमत है कि कसरवाड़ के द्वारा सुरक्षित उज्जैन के सिक्के पर कार्त्तिकेय के हाथ में शक्ति है।[२] प्रथम शताब्दी के अयोध्या के राजा देवमित्र के ताम्रमुद्रा पर ऊपर मुर्गा का चिन्ह बना हुआ है।[३] उसी क्रम में श्री विजयमित्र के सिक्के पर मुर्गे को भूमि पर स्थित दिखाया गया है।[४]

औदुम्बरों के सिक्कों पर स्कन्द का चित्रण मानव कृति में है। ये योद्धा की भाँति खड़े हैं। दायें हस्त में भाला है।[५] इसी प्रकार चित्र काड के सिक्कों पर भी है।[६] सिक्के के दोनों ओर अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि शक्तिधर स्कन्द की मानव मूर्ति बायीं ओर है जो औदुम्बरों के सिक्कों पर भी प्राप्त होती है- जैसे आर्यमित्र, महामित्र तथा महाभूतिमित्र। इससे यह प्रमाणित होता है कि यौधेय तथा औदुम्बर दोनों ही कार्त्तिकेय के उपासक थे।[७]

तृतीय चतुर्थ शताब्दी के यौधेयों के सिक्कों पर अंशुमद्भेदागम के अनुसार कार्त्तिकेय दो भुजाओं के रूप में प्रदर्शित हैं जिनके दायें हस्त में भाला है। यह मत मत्स्यपुराण से भी स्पष्ट होता है।[८]

गढ़वाल के प्राचीन यौधेय के ताँबें के १४ सिक्कों में क्रमशः कुमार का उल्लेख है- 'भगवत्स्वामिनो ब्रह्मण्यदेवस्य कुमारस्य' इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन पिछड़ी जातियों में प्रथम शताब्दी में ही कुमार की पूजा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था।[९]

---

1. Dr. J.N. Banarjee, p. 117, 141
2. Jurnal of the newmismetic socity of india, Bombay the Varanasi Vol.III, p.102
3. Catelog of quayans in the indian Mision Kolkatta by B.A. Smith p.151
4. Ibid
5. On Karttikeya, p. 47
6. Traibals quans of ancient india, p. 115
7. Ibid
8. द्विभुजस्य करः शक्तिर्वामस्यात् कुक्कुटोपरि, मत्स्यपुराण, पृ.259-60
9. दी कुमारज् ए फारगाटेन एन्शियेण्ट इण्डियन ट्राइबल क्वान्स आफ एन्शियेण्ट इण्डिया, लेखक डॉ. निशार अहमद, पृ.154

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुषाण काल में एक देवता का चित्र प्राप्त होता है जिसकी दो भुजाएँ हैं। वामहस्त में भाला तथा दक्षिण हस्त में वरद मुद्रा में दिखाई गयी है। इसके ही आधार पर परवर्ती काल में मूर्तियों के विकास की भी प्रथा देखी जाती है।[१] चित्तौड़ के निकट नगरी नामक स्थान पर २५० बी. सी. का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें एक देवालय का उल्लेख है जहाँ संकर्षण तथा वासुदेव की प्रतिमा प्राप्त हुई है, उस स्थान को नारायणवाट कहा गया है। मूल देवालय निःसन्देह दारुनिर्मित था। जहाँ वैष्णव तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से सातवीं शताब्दी तक पूजा-अर्चना होती रही। इस देवालय में कलापूर्ण तथा चित्रांकित है- इसमें स्कन्द, विशाख तथा महासेन की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।[२] महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनि व्याकरण पर भाष्य करते समय यह उल्लेख किया है कि- शिव, स्कन्द तथा विशाख आदि की मूर्तियों की प्रदर्शिनी लगती थी तथा उनका विक्रय किया जाता था।[३]

कौटिल्य ने स्कन्द-कार्त्तिकेय के मन्दिर का उल्लेख प्रथम बार किया है।[४]

तृतीय शताब्दी में एबोट्टाबाद (पश्चिम पाकिस्तान) के हाजरा जिले में कार्त्तिकेय का मन्दिर पाया गया था, जो कुमार स्थान कहा जाता था, जिसे गोसुर गोत्र के मक का पुत्र गोसुर सफर ने बनाया था। ये विदेशी जाति मूल के लोग थे।[५] स्कन्द-कार्त्तिकेय को बर्हिकेतु कहा जाता था।[६] लालाभगत ने इस देवालय को दूसरी शताब्दी का माना है। कुमारगुप्त प्रथम के समय की मूर्तियों में स्कन्द को मयूर पर आरोपित तथा एक हस्त में भाला लिए हुए दिखाया गया है। लाल प्रस्तर पर उपलब्ध इसका संकलन भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उपलब्ध है। कार्त्तिकेय मयूर पर बैठे हैं। मयूर पुच्छ छितराई हुई है। इनके हाथ में मातुलुङ्ग (नीब) फल है। अन्य हस्त में शक्ति है।[७] एक मनोरम मूर्ति

---

1. A Catelog of the brahamalnic eimegese in Mthura art by Dr. B.S. Agrwal, p. 32
2. Histry of indian and indonesian art by Dr. A.K. Kumar swami p.22
3. Ibid p. 43
4. On Karttikeya, p. 62
5. Epigrafica india Vol. 31, p. 59-62
6. वृहत्संहिता, अध्याय 57
7. Jurnal of the indian socity of qriantla art by S. kramrish, II 1934, p. 42

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखनऊ म्यूजियम में संगृहीत है जिसमें कार्त्तिकेय मयूर पर बैठे हैं। इसका आकार अंशुमद्भेदागम में वर्णित आकार से मिलता-जुलता है।[१] मथुरा में कार्त्तिकेय की एक मूर्ति है जो बोधिसत्त्व के आकार में शिल्पित है- यह कुषाण कालीन प्रतिमा ८९ई. की प्रतीत होती है।[२]

गुप्तकाल के एक ताम्रपत्र पर कार्त्तिकेय की पूजा हेतु ग्रामदान का उल्लेख है किन्तु इस मन्दिर का अब कहीं पता नहीं है।[३] पुण्डरवर्द्धन नगर (काश्मीर) में आठवीं शताब्दी का कार्त्तिकेय का राजा जयापीड द्वारा निर्मित एक मन्दिर है इसका स्थान नियत नहीं किया जा सकता। किन्तु कल्हण ने इसका उद्धरण दिया है।[४] कार्त्तिकेय की पूजा का उल्लेख गरुडपुराण में भी है।[५] कार्त्तिकेय का एक सौन्दर्याकर्षित विग्रह कन्नौज से प्राप्त हुआ था जो स्टेट म्यूजियम, लखनऊ में सुरक्षित है। इस प्रतिमा में कार्त्तिकेय ललितासन में मयूर पर विराजमान दिखाए गये हैं। इनकी दो भुजाएं हैं। एक भुजां में भाला या शक्ति ग्रहण किये हुए और दायें हाथ से मयूर को अंगूर खिला रहे हैं। यह पूर्ण रूप से सुसंस्कृत तथा अलंकृत है। केयूर, वलय तथा मेखला पहने हुए हैं। मुस्कराता हुआ चेहरा है।[६] पंजाब की पहाड़ी पर कार्त्तिकेय की एक प्रतिमा हाल ही में उपलब्ध हुई जो नेशनल म्यूजियम नई दिल्ली में रखी हुई हैं। इस मूर्ति पर कार्त्तिकेय अपने वाहन मयूर पर पल्थी मारकर बैठे हैं। दायें हाथ में शक्ति ग्रहण किये हुए हैं इनका बाल इस तरह से सवांरा गया है कि, ये त्रिशिखण्ड हो गये हैं। कान में बाली पहने हुए हैं और अर्धचन्द्राकार आभूषण इनके गले में विराजमान है। अधोवस्त्र घुटने तक गया है। वाम हस्त में निंबू लिए हुए हैं।[७]

---

1. A scluture of kattikeya, adyar librery buletin, Vol. 24, pt. 3-4 by R.C. Agrwal
2. A catelog of the brahmnical images in mthura art by Dr. B.S. Agrwal, p. 9 no. 2949
3. Aligraphica india Vol.31 p. 127-31
4. राजतरङ्गिणी, चतुर्थ अध्याय, पृ. 422
5. गरुडपुराण, चौखम्बा संस्करण, पूर्वखण्ड, श्लोक 15
6. जर्नल आफ दी यू. जी. हिस्टोरिकल सोसायटी, लखनऊए वा. 5 पार्ट 2, पृ.117-120
7. An Image of skand kartikeya from the punjab hills by Dr. B.N. Sharma, visvswranad indological journal Vol. 8, 1970, p.1-3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ तक के अध्ययन से यह बात स्पष्टतया प्रमाणित होती है कि स्कन्द-कार्त्तिकेय की उपासना भारत में सुदूर दक्षिण से लेकर सुदूर उत्तर तक और पश्चिमोत्तर से लेकर पूर्वोत्तर तक प्रचलित थी। यह पूजा आलंकारिक नहीं, अपितु आस्थावान् थी। ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा प्रतिमाओं में इनका व्यक्तित्व सेनानी, देवरक्षक तथा शिवपुत्र के रूप में आज भी वर्तमान है। यह पूजा न केवल भारत में प्रचलित थी, अपितु इसका प्रचार दक्षिण पूर्व एशिया तथा सुदूर पूर्व एशिया तक ज्ञात हो गयी थी। स्कन्द-कार्त्तिकेय की अनेक प्रतिमाएँ अफगानिस्तान के अन्दर प्राप्त हुई थीं। साथ ही गणेश की प्रतिमा भी उपलब्ध थी। कार्त्तिकेय-स्कन्द की प्रतिमा कवच धारण की हुई प्राप्त है। जबकि इस प्रकार की प्रतिमा तत्कालीन भारत में नहीं मिलती। गन्धारदेश में स्कन्द कुमार को योद्धा के रूप में मान्यता प्राप्त थी। लोग इन्हें हिन्दू देवताओं के सेनापति के रूप में जानते थे। तक्षशिला से प्राप्त एक मूर्ति में स्कन्द को सूर्य का बूट पहने दिखाया गया है। दूसरे स्थल पर उनके सिर के दोनों तरफ अग्नि की प्रतिमा के समान प्रकाश प्राप्त है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्कन्द कुमार अग्नि सूर्य के एक पक्ष हैं।[१] गन्धार में स्कन्द की प्रसिद्धि का एक अन्य प्रमाण ई. सन् के शुरु में हुविष्क द्वारा निर्मित सिक्के में भी उपलब्ध है।[२]

मध्य एशिय के तुङ्गहुवाङ्ग में कुमार के चित्र के साथ गणेश, सूर्य तथा चन्द्रमा का चित्रण प्राप्त होता है। एण्ड्रूज ने वेजकिल्क के भित्तिचित्र पर कार्त्तिकेय, महाकाल तथा अमृतघट लेकर भागते हुए गरुड का चित्र दिखाया है। दूसरी तरफ कार्त्तिकेय को एक पक्षी पर आसीन दिखाया गया है जिनका एक पैर भूमि पर लटका हुआ है तथा दूसरा सामने लगा है। उनके बाल काले हैं, जूड़े के सदृश बँधा हुआ है। शेष सिर का बाल साफ कर दिया गया है। चित्र में छः भुजाएँ दिखाई गयी हैं। प्रत्येक हस्त में एक प्रतीक है। दो ऊपर उठे हुए हाथों में दायें हाथ में रक्ताभ चक्र है जो सूर्य का प्रतीक है। वाम हस्त में श्वेत चक्र है जो चन्द्रमा का प्रतीक है। मध्य एशिया में यह अपने ढंग का निराला चित्र है।[३]

---

1. गन्धार स्कन्द वीथ प्लेम्स, आर. सी. अग्रवाल, पब्लिश इन इस्ट एण्ड वेस्ट, वाल्यू. 18, 1968 पृ. 163- 165
2. हिन्दू स्कल्पचर इन एशियेण्ट अफगानिस्तान, पी. बनर्जी, आर. सी. अग्रवाल, विवेकानन्द स्मृति ग्रन्थ, प्रकाशित लोकेशचान्द्र, मद्रास, 1970, पृ. 215-28
3. बुद्धिस्ट केब- पेटिंगस् एट तुन् हुवाङ्ग, बी. ग्रे., लन्दन 1959, पृ. 1-20

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत के पड़ोसी देश नेपाल में हिन्दू धर्म का व्यापक प्रचार है। वहाँ की शिल्प कलाओं में गणेश, कार्त्तिकेय, सूर्य, ब्रह्म, हनुमान्, इन्द्र, विष्णु, शिव, शक्ति तथा कामदेव आदि का अद्भुत चित्रण प्राप्त होता है। किन्तु अन्य देवों की अपेक्षा कार्त्तिकेय की मूर्तियाँ कम हैं। पाटन के कुम्भेश्वर मन्दिर में बहुसिर वाले, चार भुजाओं वाले कार्त्तिकेय की प्रतिमा है जो अपने वाहन मयूर के सामने खड़े हैं जिसमें कार्त्तिकेय ऊपर के दो हाथों में जपमाला तथा माला है। नीचे के दो हस्त अभय तथा वरद मुद्राएँ हैं। यह कलाकृति सत्रहवीं शताब्दी की है। इनकी एक अन्य प्रतिमा छः सिरों वाली है। इनके समक्ष दो मयूर खड़े हैं। एक हस्त में भाला, दूसरे में जपमाला तथा एक कटोरा शेष दो अभय मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा हनुमानघाट मन्दिर में सुरक्षित है। इसका समय १९वीं शताब्दी है।[1]

श्रीलंका के निवासियों में स्कन्द धार्मिक जीवन के एक प्रधान अङ्ग थे तथा आज भी उनका नाम आदर से लिया जाता है। स्कन्द पूजा का मूल ईसा के प्रथम शताब्दी में प्राप्त होता है। दुतुजेम्मुनु नामक श्रीलंका के नरेश ने स्कन्द के एक प्राचीन देवालय का पुनरुद्धार किया था जो 'कटारगाम' में स्थित है तभी से स्कन्द की उपासना का महत्त्व प्राप्त हुआ तथा उस स्थान को हिन्दुओं के विशेष तीर्थ स्थान के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। प्रायः समस्त बुद्ध मन्दिरों में स्कन्द की पूजा का महत्त्व कम नहीं था।[2] श्रीलंका में इनकी पूजा कन्दस्वामी (स्कन्दस्वामी का अपभ्रंश) के नाम से की जाती है। इन्हें कतगाम देवियों के नाम से स्कन्द- सुब्रह्मण्य या कार्त्तिकेय की पूजा की जाती है। इस स्थान का नाम कुटारगाम है। किंवदन्ती है कि इस स्थान पर एक बार कार्त्तिकेय की भेंट वल्ली अम्मा से हुई जो भिक्षु के वेश में थी। कार्त्तिकेय उन्हें अपनाने का प्रयास करने लगे। जब कार्त्तिकेय आगे बढ़ने लगे और उसने प्रबल विरोध किया तो इनके भाई की उससे शादी करा दी। तभी से ये हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थान बन गया।[3]

दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में चम्पा का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति तथा व्यापार से दूसरी शताब्दी से ही सम्बद्ध था। प्रमाण रूप में वोचमह

---

1. "Saiv Icons of Nepal" B.N. Sharma, indias Contribution, p.286
2. On Karttikeya, p. 86
3. Ibid

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिलालेख में उपलब्ध संस्कृत खण्ड में मि-सोन् की मूर्ति जो सातवीं शताब्दी की प्रतीत होती है पूर्णतया शैव धर्म की मानी जाती है जहाँ शिव, स्कन्द तथा गणेश की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।यह पवित्र मि-सोन् नगर भद्रवर्मन प्रथम द्वारा चार सौ ई. में निर्मित हुआ था तथा वहाँ भद्रेश्वर लिङ्ग की स्थापना की गई थी। आधुनिक देवालय भद्रवर्मन द्वितीय के द्वारा मूल मन्दिर को ६००ई. में काष्ठ मन्दिर के रूप में निर्मित किया गया।[१] यहीं पर शिवलिङ्ग के निकट ही स्कन्द की एक सुन्दर प्रस्तर प्रतिमा ७वीं शताब्दी में प्राप्त हुई जिसमें स्कन्द मयूर पर खड़े दिखाये गये हैं तथा मयूर के पंख पर गोल-गोल प्रभावली उत्कीर्ण हैं। इससे स्कन्द कार्त्तिकेय, शिव तथा गणेश की पूजा की प्रथा प्रमाणित होती है।[२]

चम्पा की भाँति कम्बुजा (कम्बोडिया) में भी कार्त्तिकेय की पूजा प्रचलित हुई। कम्बुजा के निवासी युद्ध देवता को बहुत आदर करते थे, क्योंकि कम्बुजा नरेश शिव भक्त थे यह वहाँ के शिलालेख से स्पष्ट है।[३] श्री बच्छा नेलियन नृत्यों में मुरुगन का मूल प्राप्त होता है जो एक पर्वतीय देव के रूप में विख्यात हैं। उनके एक हस्त में भाला है। यह मान्यता है कि ये देव कामनात्मक जोश पैदा करते हैं। उनके हाथ में सदा भाला रहता था जिसके साथ 'कोररवै' एक भयानक माँ रहती है जो नरभक्षी स्वरूप में युद्ध भूमि में अवतरित होती है इसी हेतु इस देवता को आर्यनस्कन्द कहा जाता है। स्कन्द को सामान्यतया छः सिर वाले सुन्दर युवक के रूप में कम्बोडिया के शिल्पकारों ने मयूर वाहन पर चित्रित किया है।[४]

बोर्नियों देश के कुतेई प्रान्त में कुछ बुद्ध तथा शिव की भग्न मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो गुनुङ्ग कम्बेङ्ग के घाटियों के चित्र में प्राप्त हुई हैं जो उपत्य का पन्तुङ्ग केदङ्गरन्तौ नामक नदियों के सङ्गम पर मुराकमन् नामक स्थान पर स्थित है। हिन्दू देवताओं में शिव, अगस्त्य, नन्दिकेश्वर तथा महाकाल (सभी मूर्तियाँ खड़ी हैं।) वहीं गणेश तथा कार्त्तिकेय की मूर्तियाँ बैठी हैं।

---

1. A.K. Kumar swami, p. 196
2. Champa an outpost of indian cultural, by M.N. Despandey, India Contribution....p.478
3. Cultural Heritage in compodia, B.R. Chatterji, India Contribution....p.495
4. ब्रह्मनिज्म इन साउथ- ईस्ट एशिया, दवी दवीवर्न (एम.एस.) पृ. 81-82

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्दी तथा चतुर्मुख ब्रह्म की भी मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ इण्डोजवानिज शैली में उत्कीर्ण हैं। इण्डोनेशियन पूजा पद्धति में कार्त्तिकेय एक प्रसिद्ध देव के रूप में मान्य हैं। इनकी ख्याति साहित्य तथा मुद्राओं पर उत्कीर्णन से ज्ञात होती है।[१]

कार्त्तिकेय की उपासना जापान में विस्तृत रूप से प्राप्त होती है। यहाँ इनका नाम कुमारतेन है। ये केन्दया इदतेन (जापानी भाषा में स्कन्द को ही कहते हैं। जापानी पौराणिक कथाओं के अनुसार इन्हें दैजीजै- तेन महेश्वर) का पुत्र माना जाता है। कभी- कभी उनको कर-तेन (अग्नि) का भी पुत्र माना जाता है। भारतीय पौराणिक कथाओं के अनुसार अग्नि ने महेश्वर के वीर्य का शुद्धिकरण करके स्कन्द की उत्पत्ति की थी। चीन में भी कुमार-तेन की उपासना प्रचलित थी।[२] कुमार-तेन जापान में मयूर पर आरोहित दिखाये गये हैं, इनके एक या छः मुख है और दो या अधिक भुजाएँ है। जो स्कन्द-कार्त्तिकेय से मिलता जुलता है।[३] स्कन्दकुमार-कार्त्तिकेय किया गया जापानी वर्णन विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी प्राप्त होता है।[४]

कार्त्तिकेय चीन में भी प्रसिद्ध देवता के रूप में प्राप्त होते हैं। निष्पन्न-योगावली में विस्तृत रूप से इनका वर्णन प्राप्त होता है। इनकी प्रतिमा पेकिंग संग्रहालय में उपलब्ध है।[५]

---

1. इण्डिया मलाया एण्ड बोर्नियो- टू मिलेनिया आफ कान्टैक्ट्स् एण्ड कल्चरल सिन्थेसिस्
2. The Butsuzo- suten p. 153
3. Ibid
4. On kartikeya p. 89
5. Tibbat lmaistic penthiyam, klark p.156, निष्पन्नयोगवली, बी. भट्टाचार्य पृ. ६२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय- ३

स्कान्द-तत्त्वदर्शन

सम्प्रदाय तथा साधना का प्रारम्भ सृष्टि के साथ ही हुआ। इसका उद्भव मनुष्य के संघर्ष की कहानी है। जब वह प्राकृतिक आपदाओं से लड़ते हुए अपनी क्षमता तथा शक्ति के विकास हेतु विभिन्न प्रयत्न करता था। शीत, आतप, वर्षा तथा भयानक पशुओं व जीवों से मुक्ति हेतु जब वह अपनी क्षमता पूर्ण नहीं कर सकता था तभी अप्रत्याशित रूप से उसके अन्तःकरण में एक अज्ञात शक्ति की ज्योति प्रज्वलित हो उठती थी। इसी अवसर पर उसने सर्वतो भावेन अपनी क्षमताओं को उसी क्षमता की कृपा पर निर्धारित कर सन्तुष्ट हुआ और किसी अज्ञात दैवी शक्ति ने उसकी सहायता की। यही स्थल एक अपार शक्ति परमात्मा के प्रति उद्भव का स्रोत है। ई.पू.१५ हजारशती में विद्वानों ने यह माना है कि सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। उन लोगों ने स्थल का निर्धारण करने का भी प्रयत्न किया है जो पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका निर्धारित किया गया है। डॉ. वी. एस. गुह, डॉ. एस. के. चटर्जी तथा डॉ. नीलकण्ठ शास्त्री ने यह माना है कि भारत में निग्रो मूल के लोग पूर्वी अफ्रीका से आये।[1] यह एक सुखद आश्चर्य है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. लालजी सिंह ने डी.एन.ए. शोध के दौरान इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यदि ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार किया जाय तो इस सिद्धान्त को इसलिए भी बल मिलता है कि द्वापर की अत्यन्त समृद्ध नगरी द्वारका हिन्द महासागर में विलीन हो गयी थी। इसका अर्थ यह है कि पूर्वी अफ्रीका से लेकर हिन्द महासागर तक समुद्र की यह स्थिति नहीं थी जो वर्तमान में है और मनुष्यों का आना जाना सम्भावित था। उस समय लोगों के लिए आवश्यक था कि जानवरों का शिकार कर जीवन यापन करें या प्रकृति प्रदत्त पेड़-पौधों के ऊपर निर्भर रहें। उस समय जीवन अत्यन्त असुरक्षित था। लोग प्रायः नदियों के किनारे

1. साउथ इस्ट एशिया, लेखक चटर्जी 1954, पृ. 42, शास्त्री, 1966,पृ. 58,दी मेनी फेसेज आफ मुरुगन लेखक एफ. डब्ल्यू. क्लोथी, पृ. 16

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बसते थे। उनका जीवन छोटा होता था। विद्वानों का मत है कि आकाश सम्पूर्ण पृथ्वी को आवृत्त किये हुए था। यह माना जाता था कि आकाश ने पृथ्वी को आवृत्त करके रखा है। क्षितिज की इस अवधारणा से यह विश्वास किया जाता था कि स्वर्ग पृथ्वी पर अवतरित हो गया है। मनुष्य को प्रतिक्षण आप्लावित करता रहता है।[१]

तमिल निवासी हिन्दूओं के प्रसिद्ध आराध्य देव मुरुगन यद्यपि अविवाहित हैं फिर भी वे दो कन्याओं के पति हैं। वे शिकारी, योद्धा तथा दार्शनिक हैं। वे साहित्य तथा कला के उद्भव के स्रोत हैं। वे सार्वकालिक बच्चे हैं बल्कि यह कहा जा सकता है कि जितना प्राचीन समय है उतने ही समय से इनका यह बालक रूप अवस्थित है और ये प्रत्येक युवावस्था के प्रारम्भ के मूल हैं। वे सुन्दर नायक तथा प्रेमी हैं। वे बुद्धमान् हैं तथा मौलिक एकत्व के प्रतीक हैं। इनके महत्त्व का वर्णन संस्कृत तथा तमिल साहित्य में विस्तृत रूप से उपलब्ध है। मुरुगन का सम्बन्ध वैष्णव परम्परा से भी मिलता-जुलता है। श्रीमद्भागवतपुराण में इनको विष्णु का अवतार कहा गया है।[२] स्कन्दपुराण में ये विष्णु के श्यालक के रूप में चित्रित हैं। मुरुगन की पत्नी देवसना तथा वल्ली विष्णु की पुत्री कही गयी है।[३]

मुरुगन की उपासना का प्रारम्भ विद्वानों ने प्रायश: दक्षिण भारत में माना है। तमिल साहित्य में विद्वत् परिषद् द्वारा कुछ कविताओं का संकलन किया गया है जिन्हें चंकम काव्य कहा जाता है।

तञ्जडर, त्रिचिरापल्ली तथा मदुरै जनपदों में कुल्हाड़ी, हथौड़े तथा हथियार प्राप्त किये थे। इस प्रकार के औजार प्राय: पहाड़ियों के छोटे स्रोतों के पास ज्यामितिक आकृतियों में बने हुए प्रागैतिहासिक चित्रों में देखे गए, जो गोदावरी तथा कृष्णा नदियों की उपत्यकाओं में प्राय: दो हजार ई. पूर्व के माने गये हैं। आर्य सभ्यताओं के लोग जब दक्षिण भारत की ओर प्रयाण करने लगे तो इनकी संस्कृतिओं के साथ उनका मेल हुआ। संस्कृत संस्कृति में दक्षिणी आन्ध्रप्रदेश के दक्कन के पठार में सर्वप्रथम अपना प्रभाव स्थापित किया।[४] आर्यकरण की प्रथम लहर प्रारम्भिक रूप में प्राकृत भाषा से प्रभावित हुई। यह काल मौर्य वंश का था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह

---

1. Ouranos in Hesiod, by the mani facese of murukan,p. 7
2. भागवत्पुराण 11/4/17
3. दी मेनी फेसेज आफ मुरुगन पृ 3
1. तत्रैव, पृ 21

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्लेख है कि उत्तर भारत- दक्षिण भारत का व्यापक सम्बन्ध प्रारम्भ हो गया था। अशोक के शिलालेख में चोल तथा पाण्ड्यवंश का उल्लेख हुआ है जिनका सम्बन्ध अशोक सीमा से था।

मुरुगन के विषय में प्रमाणिक रूप से तमिल भाषा से संगृहीत चंकम काव्य में सूचना प्राप्त होती है। यह संग्रह आठवीं शताब्दी में दो भागों में प्रकाशित हुआ था। उपलब्ध स्रोतों से यह जानना सम्भव नहीं कि निश्चित रूप से मुरुगन की उपासना कैसे या कब से होने लगी? क्योंकि इस विषय में ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं है।[१]

स्कन्द विषयक मूल भावों का विवेचन निम्नाकिंत आधारों पर किया जा सकता है। भगवान् सुब्रह्मण्य का स्वरूप गुरु, ब्रह्मचारी, देशक, तथा साहित्य सर्जक के रूप में प्राप्त होता है। सुब्रह्मण्य ज्ञान की मूर्ति हैं। उन्होंने अपने पिता शिव को प्रणवमन्त्र का रहस्य समझाया, जिसके कारण वे तमिल में तगप्पन स्वामी (पिता के आचार्य) कहलाते हैं। इन्हें आत्मज्ञानी ब्रह्मचारी माना जाता है जिन्होंने अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण कर लिया है। पलनी पौराणिक कथा के अनुसार सुब्रह्मण्य पलनी अवतार हैं। ये अपने पिता द्वारा अपना फल गणपति को दे देने के कारण नाराज होकर ब्रह्मचारी हो गये।[२]

साहित्य सर्जक के रूप में इन्होंने कवियों को प्रोत्साहित किया तथा तमिल भाषा के अधिदेवता माने गये। ऐसी मान्यता है कि मुरुगन ने अगस्त मुनि को वेद पढ़ाया। कहा जाता है कि यह ब्राह्मण उत्तर से दक्षिण में सभ्यता का पाठ सिखाने के लिए आये थे।[३] ऐसा कहा जाता है कि तिरुत्तनी में मुरुगन ने अगस्त को तमिल पढ़ाया और उन्हें शिवनानम् (शिव सिद्धान्त) का ज्ञान दिया। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने इसी स्थल पर नन्दि देवर को शैव सिद्धान्त का दर्शन बताया।[४] ऐसी मान्यता है कि तमिल वैयाकरण अक्तियर ने तमिल व्याकरण का रहस्य इनसे प्राप्त किया। शैव भक्ति का कवि जिसका नाम ज्ञानसम्बन्दर (Gnanasambandar) वह मुरुगन का अवतार था।

मुरुगन को प्रतीकों का दार्शनिक रूप माना गया। शक्ति (भाला या आयुधवेल) इनके विवेक तथा विवेचन शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। अतः "शक्तिपाणि" कहकर उनकी स्तुति की जाती हैं। इस शक्ति रूपी वेल

---

1. दी मेनी फेसेज आफ मुरुगन पृ 23
2. तत्रैव, पृ. 86.
3. कल्लटम् (Kallatam) I, Lines 47-49.
4. The Many Faces of Murukan, pp. 86.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को सदा धारण करने के कारण तमिल प्रदेशों में सुब्रह्मण्य "वेलवन" नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। भक्तजन इसी वेल को शिव-शक्ति के ऐक्य का चिह्न मानकर उनकी स्वतन्त्र पूजा करते हैं। 'वेल' वीरता का प्रतीक है। अतः प्राचीन तथा मध्यकाल में 'वेल' की उपासना योद्धाओं के लिए प्रेरकशक्ति और प्रोत्साहन देने वाली सिद्ध हुई। पुलिन्द-कन्या वल्ली और देवसेना सुब्रह्मण्य की देवियाँ है। वल्ली, देवसेना तथा आयुधवेल- ये तीनों भगवान् की इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा ज्ञान शक्ति मानी जाती है।[१] वास्तव में स्कन्द-मुरुगन का सिद्धान्त शैव सिद्धान्त के वातायन (झरोखे) से है।

चोलवंश (१०-११वीं शताब्दी) में ब्राह्मणों का एक समुदाय हुआ जिन्हें 'ब्रह्मदेव' कहते थे। सभी संस्थायें इन्हीं से सम्बन्धित थीं। ये लोग अत्यन्त शक्तिशाली थे। इनके पास भू-सम्पत्ति थी तथा सामान्य जनता पर इनका बहुत प्रभाव था। जब संस्कृत का प्रभाव हुआ तब दर्शन सिद्धान्तों का तथा उनके विरोधाभासों का उदय हुआ। मुरुगन के दार्शनिक विचारों का वेद से सम्बन्ध था जिसका प्रतिपादन तिरुमूलर ने तिरुमन्तरम् में किया। वेद तथा आगम दोनों का सम्बन्ध परमात्मा से है। मान्यता है कि वेदों का ज्ञान सबके आध्यात्मिक उत्थान के लिए समान था, किन्तु शैवागम का ज्ञान प्रगतिशील आत्मज्ञानियों के लिए था, जो लोग इस तथ्य को समझते हैं उनका निष्कर्ष है कि भगवान् के उपदेशों में अन्तर है, किन्तु जो महान् है उनके लिए दोंनों समान है।[२]

शैव लोग शैवागम के तीन भेद - तन्त्र, मन्त्र तथा उपदेश करते हैं जिनके द्वारा वेदों का पूरा होना माना जाता है, जबकि शैव सिद्धान्त वैदिक धर्म का पूर्ण विकसित पुष्प है। कुमारकुरुपर (१७वीं शताब्दी) जिन्होंने काशी में 'शैवमतम्' की स्थापना की तथा जो कन्तकलि वेण्पा (Kant Kali Venpa) के लेखक हैं। उनका अभिमत था कि वेद 'प्रणव' से विकसित हुआ वृक्ष है। वैदिक जो विभिन्न मतों के मानने वाले थे वेदरूपी वृक्षों के केवल पत्ते, कोपलें, फूलों से सन्तुष्ट है किन्तु शैव सिद्धान्त पूर्ण विकसित वेद वृक्ष के पके हुए फल का मधुमय अमृत रहा है।[३] शैवागम से बिल्कुल भिन्न शैवधर्म के भक्ति सम्बन्धित भक्तों का उदय हुआ जिसमें बारह तिरुमुरैस्

---

1 कल्लाट्म् I, Lines 52-55, कुमारतन्त्र, पटल- 28/3-4.

2. तिरुमन्तरम् 8/28 अनुवादक- एस० सच्चिदानन्द पिल्लै, शैवसिद्धान्त, अन्नामलैनगर, यूनिर्वसिटी प्रेस, 1952, पृ० 7.

3. The Many Faces of Murukan pp. 90-91.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का वर्णन है तथा तिरुट्टोण्टर पुराण जो सामान्य रूप से पेरिय पुराणम् सेक्किलर के नाम से प्रसिद्ध है जो तमिल में रचित है।[१] इन भक्तों ने भक्तिगीतों के माध्यम से इस दर्शन को पूर्ण विकसित रूप दिया जिसको जीव जीवन में उतार कर बन्धन-मुक्त हो जाता है।

बारहवीं शताब्दी में सुब्रह्मण्य-मुरुगन शैव दर्शन के स्वरूप हो गये तथा पूर्ण दैवी शक्ति से युक्त रहे। विश्वोत्तर होने के बाद भी वे पाँच प्रकार सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह के देवताओं के अलौकिक कर्मों का सम्पादन करते रहे। वे पूर्ण रूप से शिव ही नहीं, बल्कि दैवी शक्ति के पूर्ण अभिव्यक्त स्वरूप थे क्योंकि पाँच+एक अर्थात् षण्मुख थे। वे गुरु थे जिन्होंने पवित्र सिद्धान्त की शिक्षा भक्तों को दी तथा आत्मा को मुक्त होने का उपदेश दिया। वे पाश (बन्धन) काटते हैं और सभी को पति (शिवत्त्व) प्राप्त कराने का उद्योग करते हैं।

वाराह पुराण में स्कन्द-कथा को आध्यात्मिक रूप दिया गया है। तदनुसार सभी तत्त्वों से ऊपर जो सत्ता है उसे पुरुष कहते हैं। उससे अव्यक्त की उत्पत्ति होती है। उसे तत्त्वों का मूलभूत एवं त्रिगुण कहा गया है। पुरुष एवम् अव्यक्त के संयोग से महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व) का आविर्भाव होता है। उसे अहंकार और महान् भी कहते हैं। पुरुष को विष्णु अथवा शिव और अव्यक्त को उमा अथवा श्री भी कहा गया है। उन्हीं के संयोग से अहंकार की उत्पत्ति होती है। वही सेनापति गुह है।[२] ध्यातव्य रहे कि स्कन्द की उत्त्पत्ति आदि मन्वन्तर से सम्बन्ध रखती है। उनकी उत्पत्ति विभिन्न कल्पों विभिन्न रूपों से हुआ करती हैं। कृत्तिका, पावक, गिरिजा आदि उनके द्वितीय जन्म में कारण है।[३] सर्वप्रथम शरीरवर्ती अहङ्कार ही प्रयोजनवश सेनापति बना था।[४]

कुमार की शक्ति का नाम कौमारी है, जो असुर विजयिनी शक्ति आसुरिक वृत्तिपुञ्जों का दमन करती हुई देवशक्ति समूहों का परिचालन करे, वही कौमारी शक्ति है। उससे अधिष्ठित चैतन्य शक्ति ही कुमार है। इसका

---

1. The Many Faces of Murukan pp. 91.
2. सर्वेषामेव तत्त्वानां यः परः पुरुषः स्मृतः। तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं तत्त्वदि त्रिविधन्तु तत्। पुरुषव्यक्तयोर्मध्ये महत्त्वं समपद्यत। स चाहङ्कार इत्युक्तो यो महान् समुदाहृतः। पुरुषो विष्णुरित्युक्तः शिवो वा नामतः स्मृतः। अव्यक्तन्तु उमा देवी श्रीर्वा पद्मनिभेक्षणा।। तत्संयोगादहङ्कारः स च सेनापतिर्गुहः। वाराहमहापुराण 25/2-25.
3. वाराहपुराण 25/47.
4. योऽसौ शरीरगो देवः अहङ्कारेति कीर्तितः। प्रयोजनवशाद्देवः सैव सेनापतिर्वभौ। वाराहपुराण 25/35.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाहन मयूर है। मयूर साँप का भक्षक एक पक्षी है। टेढी चाल वाले को सर्प कहते हैं। साधारणतः इन्द्रियवृत्ति समूह विषयाभिमुख विसर्पित भाव से वक्रगति से परिचालित होता है। जब कोई साधक उनके विलय हेतु बल या सामर्थ्य का अर्जन करता है तो वह मयूरधर्मी होता है। इस तरह का मयूरधर्मी जीव ही पूर्वोक्त कौमारी शक्ति का वाहन है। आत्मा का जो अंश देवभाव समूह के आसुरी भावों का विमर्दन करता हुआ परिचालित करता है उस अंश को कुमार एवम् उस अधिष्ठान चेतन का अवलम्बन कर जो शक्ति देवभावों को परिचालित करती है वहीं कौमारी शक्ति है। कौमारी शक्ति का मयूरवाहन होना भी सर्वथा सुसंगत है।

स्कन्दरूप से शिवशक्ति के साक्षात पुत्र भगवान् सनत्कुमार इसीलिये सनत् = चिरन्तन कुमार हैं कि वे इस आंगन में सदा ही पुत्रभाव से खेलते रहते हैं। जो भी शिवशक्ति के कृपापात्र बनकर जीवन्मुक्ति के आनन्द में रहते हैं वे क्रीडा करने वाले ही शिवशक्तिपुत्र स्कन्द कहे जाते हैं एवं वे ही ब्रह्मविद्या के वास्तविक उपदेशक बन सकते हैं। परन्तु इस प्रकार वे ही खेल सकते हैं जो कुमार हैं। 'कुत्सितो मारो येन स कुमारः' जिसने कामनाओं को तिरस्कृत कर दिया है वही कुमार है। कामनाओं का मूल भेददर्शन है। अभेददर्शी में कामनाओं का अभाव स्वतः सिद्ध है। स्वतः अपनी कामना किसी को नहीं होती। 'सर्वैकत्वात्कामनुपपत्तेः' (बृहदारण्यक भाष्ये)। कामना न होने पर शरीररूपी उपाधि के द्वारा दुःख भी संभव नहीं। 'किमर्थं कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्' (बृ. ४.४.१२) 'कस्य कामाय.... शरीरतापमनुतप्येत' (बृ.भाष्य) इत्यादि श्रुतियाँ व स्मृतियाँ इसी का प्रतिपादन करती हैं। कामना के उदय होने पर कुमारत्व नष्ट हो जाता है। चित्त में व्यभिचारता आ जाती है। फिर बालक की तरह क्रीडा संभव नहीं। लोक में भी कुमार में काम का अभाव प्रत्यक्ष है। कामुक बनने पर ही अहंकार का उदय होता है एवं तब युवा माना जाता है और मातापिता के साथ पूर्व जैसा सहज क्रीडा का व्यवहार नहीं रह जाता। विवाहोत्तर जिस प्रकार पत्नी से ही क्रीडा संभवती है उसी प्रकार अविद्या से ही जीवभाव में क्रीडा करता है। इसी प्रकार शिवशक्ति के विषय में समझना चाहिये। जिसकी अविद्या पत्नी नहीं है वही जीवनमुक्त कुमार कहा गया है। ऐसा नित्य विज्ञानानन्द में स्थित ही ब्रह्मविद्या का प्रचार कर सकता है।

दक्षिण भारत में षण्मुख के रूप में भगवान् सुब्रह्मण्य की उपासना अधिक प्रचलित है। इस देवता के षण्मुख के रूप में प्रकट होने के कई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण बताये जाते हैं। कृत्रिम माताओं से जब पार्वती ने छः शिशुओं को अपनी गोद में लेकर गाढ़ आलिङ्गन किया, तब इन शिशुओं का षण्मुख वाला शरीर बन गया, जिसको भक्तों ने परमाराध्य मान लिया। शास्त्रों में यह भी कहा जाता है कि जब सनत्कुमार, नारद, अगस्त्य, बह्मा, इन्द्र तथा सरस्वती गन्धमादन पर्वत पर भगवान् स्कन्द के दर्शन करके उनसे षडक्षरी मन्त्र का उपदेश प्राप्त करने के लिए आये, तब षडक्षरी तत्त्व को, इन षड्विभूतियों को एक साथ उपदेश करने के लिए सुब्रह्मण्य ने षण्मुख धारण किया। 'शरवण भव' इस षडक्षरी मन्त्र के अक्षरों के द्वारा क्रमशः लक्ष्मी, विद्या, मोक्ष, मृत्युञ्जय तथा नीरोगता - इन षट्तत्त्वों को भूलोक पर स्थापित करने के लिए नारदादि शिष्यों के सामने षण्मुख बनकर भगवान् प्रकट हुए। यह भी कहा जाता है कि ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य - इन छः भागों से युक्त होने के कारण षड्भागों के प्रतीक रूप में उन्होंने षण्मुख धारण किया है। ऐसी धारणा है कि इस देवता में षड्देवताओं का, षण्मतों का समन्वय होने के कारण वे षण्मुख कहलाते हैं। भगवान् अपने छः मुखों के द्वारा क्रमशः ज्ञान प्रदान करते हैं, वर देते हैं, यज्ञ की रक्षा करते हैं, साधु-सन्तों को वेद का उपदेश देते हैं, दुष्टों का नाश करते हैं तथा गृहस्थों को धर्मोपदेश देते हैं।

स्वामी कार्त्तिकेय के नाम विभिन्नार्थक हैं। कृत्तिका-नक्षत्रों में अग्नितारा हैं, वह कार्त्तिकेय है, पार्थिव रूप में जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह 'कुमार' है, संवत्सराग्नि एवं अध्यात्म अहंकाराग्नि दोनों 'षण्मुख' हैं। एक के ऋतुरूप षण्मुख है तो दूसरे के इन्द्रियरूप षण्मुख हैं।

'सुब्रह्मण्य' का वाच्यार्थ है- 'दिव्यानन्दरूपी परब्रह्म से उत्पन्न अभिन्न तत्त्व''। यह भी कहा जाता है कि शिव और शक्ति के दिव्य प्रेम का जहाँ ऐक्य है वहाँ सुब्रह्मण्य है। अतः सुब्रह्मण्य की उपासना से शिव और शक्ति का अनुग्रह प्राप्त है। दक्षिण भारत में सुब्रह्मण्य समष्टि देवता माने जाते हैं, क्योंकि अन्य मुख्य देवताओं से उनका सम्बन्ध है। वे शिव और शक्ति के पुत्र हैं, विनायक के अनुज हैं, विष्णु के भानजे हैं और बालसूर्य से अभिन्न हैं। अतः भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि भगवान् सुब्रह्मण्य की उपासना से सब देवता तुष्ट होते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव की दो शक्तियाँ अनेक प्रकार के धर्मों का द्योतन करती हैं। जहाँ एक ओर वे दैवी शक्तियाँ वहीं दूसरी ओर पार्थिव शक्तियाँ है। यही सिद्धान्त क्रौञ्चनिषूदन, स्वामीनाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या मुरुगन पर भी लागू होता है। देवसेना उनकी स्वर्गिक शक्ति है तथा वल्ली उनकी पार्थिव शक्ति, दोनों के सम्बन्ध से एक ओर वे पृथ्वी पर अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं तो दूसरी ओर उनका आधिपत्य आलोकित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शैव तथा वैष्णव सिद्धान्तों का सामञ्जस्य करने के लिए दो विवाह किया गया है। मुरूगन वल्ली के साथ प्रेमालाप में आत्मा की खोज में उसी प्रकार दिखायी देते हैं जिस प्रकार विष्णु गोपियों के साथ अर्थात् भगवान् आत्मा को अपने में समाहित करने के लिए पीछा करता है। देवसेना शिव की शक्ति के समान उनसे अभिन्न है फिर भी उसका अपना स्वातन्त्र्य हैं। भगवान् से वह प्रेम इसलिए करती है कि उसे पुण्य प्राप्त हो। दोनों ही पत्नियाँ आत्मा (पशु) की प्रतीक हैं और (पाश) अर्थात् पृथ्वी सम्बन्धी बन्धन से मुक्त होना चाहती हैं, इसीलिए वे अपने पति (शिव) से लगी रहती है। इस प्रकार मुरुगन की दोनों पत्नियाँ शैव तथा वैष्णव विचारों को एक रूप में समाहित करती हैं।[१]

स्कन्द परम्परा में समय को एक वृत्त माना गया है जो केन्द्र से उसके भीतर तथा बाहर दोनों तरफ गतिशील रहता है। यह छोटे वृत्त से बड़े वृत्त की ओर जाता है। इस उपासना पद्धति में केन्द्र को एक छोटा वृत्त मानकर तिरूकालय की पूजा प्रारम्भ की जाती है। इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि एक पूजा-पद्धति में एक छोटे समय वृत्त की अभिव्यक्ति होती है जैसे अभिषेकम् में मूर्त्ति के ऊपर (घृतादि) का लेप होता हैं अरातन्मै- (दीप दर्शन) तथा लक्षचारणम् (एक सौ आठ बार जप) कार्य अनवरत चलता रहता है तो साठ वर्ष में एक चान्द्र, नक्षत्र तथा सौर वर्षो के रूप में माना जाता है और पौराणिक परम्परा में इसी को एक युग कहते हैं। ये वृत्त अनेक होते हैं और इनका पुनर्गमन चलता रहता है। इसी तरह सृष्टि प्रक्रिया होती है। देव तथा पुजारी में एक तरफ देवता का आह्वान होता है। जिसकी सर्जनात्मक क्रिया तथा अधिनायकत्व स्थापित होता है, दूसरी ओर स्वयं ईश्वर या देवता पुजारी को शक्ति प्रदान करता है।[२]

स्कन्द विषयक पौराणिक कथाओं के आधार पर प्राचीन काल में इनकी मूल भित्ति दैवी आत्मज के रूप में थी। वैदिक साहित्य में इन्द्र को 'शुनः सहसः' शक्ति माना गया है।[३] पर्जन्य को द्यौस का पुत्र कहा गया है।[४] मरुत्[५],

1. The Many Faces of Murukan, pp -85
2. The Many Faces Murukan, pp - 146-47.
3. ऋग्वेद, 6/18/11 तथा 6/20/1
4. तत्रैव, 7/102/1
5. तत्रैव, 10/77/2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्य[१], वरुण तथा मित्र को दक्ष (प्रवीणता, चातुर्य) का पुत्र कहा गया है।[२] इसका सम्बन्ध स्कन्द से इस प्रकार जोड़ा जा सकता है कि अग्नि को भी दक्ष का पुत्र कहा गया है[३] और सहस शक्ति को भी दक्ष का प्रतीक माना गया है।[४]

यह ध्यातव्य है कि पुत्रत्व का सम्बन्ध भौतिक उत्पादन से नहीं है बल्कि पितृत्व शक्ति का स्रोत है। वह पूर्ण तथा शक्ति सम्पन्न है।[५] पितृत्व अनुभव तथा पूर्ववंश परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। वह पुत्र को वरदान देता है तथा उसे साहस और शक्ति से सम्पन्न करता है। यह गुणात्मक सम्बन्ध है, न कि शारीरिक। इसके अन्तर्गत अनेक वैदिकवंश परम्पराओं का समाहार है। उदाहरणार्थ- आकाश में चारों दिशाएँ पृथ्वी से उत्पन्न हुई हैं। सूर्य, आकाश तथा पृथ्वी का पुत्र है।[६] निर्जीव से जीव प्रादुर्भूत हुआ है।[७] अतः पुत्र का कार्य यह ज्ञात होता है कि वह प्राचीन विचारों की अभिव्यक्ति तथा सामञ्जस्य है जिसे पिता कहा जाता है। अभिप्राय यह है कि वह पिता के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रतीक है। इसीलिए बृहदारण्यकोपनिषद् में "आत्मा वै जायते पुत्रः" कहकर उसे पिता का स्वरूप माना गया है।[८] यही विचार महाभारत में अत्यन्त स्पष्ट रूप से वर्णित है।[९] शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट है कि पुत्र, पिता की पूर्ण अभिव्यक्ति है।[१०]

पुत्र पिता की भाँति है तथा पुत्र में जीवित रहता है, इसी अभिप्राय से सन्तान पिता की रक्षा करता है।[११] पुत्रत्व का सम्बन्ध मुक्ति से भी है जो पिता के कार्य को पूर्ण करता है। पिता के कार्य का सम्पादन करते हुए वह पिता का आशीर्वाद प्राप्त करता है। इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि सनातन परम्परा में इनका सम्बन्ध ब्रह्मा से है। सनातन परम्परा में यह भी मान्यता है कि पुत्र का कार्य सृष्टि से है। पुत्र स्रष्टा हो जाता है। इस प्रकार अग्नि एक पुत्र है जो पिता को शक्ति देता है जो उसका स्वयं का पिता है। तात्पर्य है कि जो देवता या पुरोहित उसे ले आता है वही प्रज्वलित करता है।[१२] शतपथ

1. तत्रैव, 10/37/1
2. तत्रैव, 8/25/5
3. तत्रैव, 1/95/6
4. तत्रैव, 6/48/5, 1/27/2
5. Some Observations on the Relation between "Gods" and power's in the veda, A props of the phrase 'suah sahasah' the hauge, mounton,1959, jan gronda, p. 6
6. ऋग्वेद 1/160/3
7. तत्रैव, 10/72/2
8. बृहदारण्यकोपनिषद् 1/5/11
9. महाभारत 1/159/11
10. शतपथ ब्राह्मण 10/4,5,6,6/1/8
11. महाभारत 1/1594,5/118/7,7/173/54
12. ऋग्वेद 1/31/11,2/5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मण के एक मन्त्र में जिसमें सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है, वहाँ अग्नि को प्रजापति कहा गया है।[१] ठीक उसी प्रकार रुद्र भी प्रायः अग्नि माने गये हैं और स्कन्द के पिता जाने जाते हैं। वह स्वयं एक पुत्र तथा पिता दोनों ही हैं। वे हिरण्यगर्भ उत्पन्न करते हैं और स्वयं हिरण्यगर्भ भी है।[२]

स्कन्द का आविर्भाव जगत् की एक सामान्य घटना नहीं है। वे एक पुत्र हैं किन्तु सनातन पुत्र हैं। अभिप्राय यह है कि उनकी उत्पत्ति सृष्टि की उत्पत्ति का एक प्रतीक है। वे प्रथम पुत्र हैं जिन्होने पिता के रूप में सृष्टि के मूल में हैं।[३] सिद्धान्त यह है कि जो प्रथम उत्पन्न हुआ वह हिरण्यगर्भ था। उसी को वाक् भी कहा गया है। दोनों हिरण्यगर्भ तथा वाक् आदि विचार, जिससे विश्व उत्पन्न हुआ। वाणी की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई जो ऐन्द्रिय सम्बन्ध का प्रतीक बना।[४] हिरण्यगर्भ एक स्वर्णाण्ड था, जिससे विश्व उत्पन्न हुआ।[५] संस्कृत भाषा में प्राथमिक अभिप्राय यह है कि वे संसार के केवल उत्पादक ही नहीं हैं, अपितु स्वतः संसार हैं। तात्पर्य यह है कि वे संसार के निमित्तोपादान कारण हैं। इस भाँति वे विश्व के स्वरूप हैं। इस प्रकार ये विश्व तथा विश्वात्मा दोनों ही हैं।

इस पुत्रत्व का सम्बन्ध विवेक से भी है, क्योंकि निर्मित वस्तु को परिणाम कहते हैं। वह मन से ही उत्पन्न होती है-(मनसासहाय)। अतः यह विवेक का ही परिणाम है अर्थात् पुत्र मनोद्भूत है।[६] कठोपनिषद् के अनुसार उसकी उत्पत्ति (विवेक की उत्पत्ति) तपस्या से हुई है (तपसा जातम्)[७] इस प्रक्रिया का प्रारम्भ के उत्पत्ति की प्रक्रिया की भाँति ही हुई है, यथा- वाक् में सर्वप्रथम विचार उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् -वक्तृत्व- ऐसा ऐतरेय आरण्यक में कहा गया है।[८] विचार ही मन है। यह वक्तृता का प्रारम्भिक रूप है और वक्तृता इसका अन्तिम रूप है[९] तथा शाश्वत ज्ञान है।[१०] पुत्रत्व

---

1. शतपथ ब्राह्मण 10/2/1
2. Essays on Indo-Aryan mythology, Narayan Aiyangar, vol.ii addison co.1901,p.30
3. कठोपनिषद्, 2, 4.6, 4/6
4. वाजसनेयीसंहिता 23/20, कठोपनिषद् 4/6
5. शतपथब्राह्मण 6/3/1-20
6. महाभारत शान्तिपर्व 12005
7. कठोपनिषद् 4/6
8. ऐतरेय आरण्यक 3/1/1
9. The poroblem of Ganpati, p. 153
10. वृहदारण्यकोपनिषद् 1/6/3 इसी पर शाङ्करभाष्य 3/19,28,7

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का विवेक सनत्कुमार के रूप में प्रतिष्ठत है जो शाश्वत पुत्र है। इस कथन का छान्दोग्योपनिषद् से प्रमाणित माना जाता है जहाँ महर्षि नारद को आत्मा के सिद्धान्त का बोध कराया।[१]

स्कन्द विषयक एक अन्य अवधारणा उनका योद्धा होना तथा देवों की रक्षा हेतु संघर्ष करना है। योद्धा स्वरूप की यह अवधारणा वैदिक काल से हुई थी। यहाँ इन्द्र को देवताओं का सेनानी माना गया था। इन्द्र के पास वज्र नामक शस्त्र था। इसी से उन्होनें वृत्रासुर का संहार किया था। उनके इस कृत्य से वृत्रासुर द्वारा प्रतिबन्धित वर्षा प्रवाहित कर दी गई थी। जिसके कारण पृथ्वी की उर्वरत्व शक्ति बढ़ गयी थी। फलस्वरूप समस्त जीवों का भरण पोषण प्रचलित हो गया था। अग्नि तथा रुद्र को भी देव सैनिक के रूप में प्रतिष्ठत किया गया है। अग्नि देवसेनाओं के अग्रणी थे।[२] परवर्ती काल में अग्नि का नाम सेनानी पड़ गया था।[३] रुद्र ने अपनी सेना त्रिपुरासुर के आक्रमण के लिए भेजा और अग्नि की सेनाओं ने भी असुरों के ऊपर चढ़ाई की[४], रुद्र ने असुरों तथा राक्षसों को पराजित कर उन्हें भागने के लिए विवश कर दिया।[५] उन्होंने देवताओं के हित के लिए युद्ध करते हुए असुरों के तीन नगरों को विध्वस्त कर दिया।[६] वे एक सहस्त्र योद्धाओं के अग्रणी थे।[७] उन्होंने देवताओं को पराजित होने से बचाया।[८] इस कारण उन्हें सेनानी कहा गया।[९]

धार्मिक योद्धा का कर्त्तव्य धर्म की रक्षाहेतु युद्ध करना है, जिससे विधर्मियों का नाश हो सके तथा सृष्टि के विध्वंसक तत्त्व अपनी गतिविधि न चला सकें। इससे वैश्विक सन्तुलन स्थित रहता है। इस प्रकार योद्धा का

---

1. छान्दोग्योपनिषद् 7/1/4, पृ.161
2. ऋग्वेद 10/84/2, अथर्ववेद,3,1/1,2/1
3. Some note on Skand-Karttikeya, M.Mukhopadhya, indian historical juornal, vol.7,1933, p. 315
4. ऋग्वेद 3/15/1, 7/15/10, 7/23/13
5. ऋग्वेद 8/6/2
6. ऋग्वेद 1/59/5
7. ऋग्वेद 1/188/1
8. ऋग्वेद 8/13/2
9. शतपथ ब्राह्मण 5/3/11 (रुद्र-शिव) एन. वेंकटरमन् यूनिर्वसिटी आफ मद्रास 1941,पृ. 75

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्य वैश्विक सन्तुलन की रक्षा भी है। इस हेतु उसे स्रष्टा कहा जा सकता है, क्योंकि वह प्राचीन परम्पराओं का रक्षक तथा नयी व्यवस्थाओं का प्रवर्तक होने कारण मुख्य देवता माना जाता है। परवर्ती साहित्य में विष्णु ने भी अवतार धारण कर इस अवधारणा की पुष्टि की है।[१]

स्कन्द के प्रति द्वितीय अवधारणा सूर्य की है। प्राचीन साहित्य से लेकर पौराणिक कथाओं तक उसे पुत्रत्व से जोड़ा गया है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस अवधारणा को विश्व की उत्पत्ति से सम्बद्ध माना है। स्वर्णाण्ड की उत्पत्ति समुद्र से हुई जो वैश्विक स्पन्दन का मूल है। सूर्य को इसी सुनहले अङ्कुर से सम्बद्ध माना गया है, क्योंकि यह रक्ताभ तथा स्वर्णिम स्वरूप देवमाता अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था जो एक समय समुद्र में तिरोहित हो गया था। सृष्टि काल में वही सार्वभौमिक नियम की शक्ति से पुनः प्रादुर्भूत हो गया।[२] इस भाँति सूर्य उत्पादक तथा उत्पादकीय शक्ति दोनों ही हैं। ये उत्पन्न करते हैं तथा स्वयं उत्पन्न होते हैं। इनके उत्पन्न होते ही अन्धकार तथा अव्यवस्था का नाश हो जाता है। सूर्य को प्रस्तुत दृष्टिकोण से यज्ञीय अग्नि भी माना जाता है। यज्ञकर्त्ता यज्ञीय अग्नि उत्पन्न करता है। जिसका तात्पर्य यह है कि पुनः सृष्टि चक्र प्रवर्तित हो। यज्ञ एक पौराणिक घटना है जिसमें अग्नि सूर्य का कार्य करता है जिससे अज्ञानान्धकार का नाश हो तथा पुनः हिरण्यगर्भ के भीतर से विश्व प्रकट हो।[३]

स्कन्द विषयक पुत्रत्व, सूर्यरूप तथा सेनानी तीनों का समाहार स्कन्द में हो गया। इतना ही नहीं, स्कन्द के पूर्ववर्ती अन्य देव भी स्कन्द के साथ जुट गये। इनका सम्मिलित स्वरूप इन्द्र के रूप में प्रकट हुआ, क्योंकि इन्द्र को शक्ति का पुत्र कहा गया था तथा इनकी उत्पत्ति आकाश अथवा द्यौस् से हुई थी।[४] इन्द्र का स्वरूप सुनहला है। वे स्वर्ण के रथ पर आरूढ़ रहते हैं। वे देवपति कहे जाते हैं तथा विष्णु हैं।[५] यही स्वरूप रुद्र की ओर भी इंगित करता है। वे रक्तिम आँधियों के देवता है तथा महान् योद्धा हैं।

1. श्रीमद्भगवद्गीता 4/6
2. Sparks lron the vedic fine p.18-24
3. ऋग्वेद 1/160/3
4. ऋग्वेद 6/18/11, 6/20/21, वृहदारण्यकोपनिषद् 6/4/22
5. Hindu polytheism by alain danielu, Newyork, bollingen foundation; 1964, p. 107-109

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ अवसर पर ये स्वयं हिरण्यगर्भ थे तथा इन्होंने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न भी किया। यही प्रतीक अग्नि की ओर प्रतिभाषित होता है। अग्नि दो समिधों (अरणिमन्थन) से उत्पन्न होता है। वह उष्मा उत्पन्न करता है और यह उत्पत्ति मौलिक जोड़े सुनहला वीर्य जो विश्व को प्राणान्वित करता है और सूर्य जो स्वर्ग का शासक है वह समुद्र से उत्पन्न हुआ है-(अपाम् नपात्)।[१] अग्नि योद्धा पुत्र है जो स्वयं उर्वरक है तथा उर्वारकत्व उत्पन्न करता है। इस प्रकार अग्नि तथा रुद्र का सम्बन्ध स्कन्द से हुआ। स्कन्द ने इस सम्बन्ध को नैतिक रूप से बल प्रदान किया जो प्रारम्भिक रूप में प्रादुर्भूत हुआ था।[२]

अष्टाङ्गसंग्रह नामक पुस्तक में यह लिखा है कि शिव ने स्कन्द को बारह ग्रह दिये थे जिनमें पाँच पुरुष हैं तथा सात स्त्रियाँ हैं। ये इसलिए दिए गये हैं कि ये ग्रह इनकी सहायता करें।[३] काश्यपसंहिता में उद्धृत है कि बीस देवियाँ देवी रेवती को दी गयी थीं जिन्हें स्कन्द की प्रधान सेविका माना गया है। काश्यपसंहिता के रेवती कल्प में यह निर्दिष्ट है कि महाभारत काल में रेवती एक प्रबल देवी के रूप में मान्य थी। उनकी अन्य सेविकाएँ भी थीं और उन्हें बड़ी माँ का पद प्राप्त था। स्कन्द के द्वारा दैत्य दीर्घजिह्वी को निगल जाने के लिए उन्हें मादा भेड़ियों के रूप में भेजा था किन्तु असुर ने मानव वीर्य में शरण ले लिया जिससे रेवती ने नवजात के ऊपर आक्रमण कर दिया। इस तरह से उसने रेवती ने प्रधान रूप से बच्चे को सताने वाला धर्म ही अपना लिया। स्कन्द के आदेश से रेवती अपवित्र विभिन्न जाति के लोगों को निराश्रित कर देती थी तथा दुष्टों का संहार करती थी।[४] इस प्रकार रेवती 'जातहारिणी' देवी का स्वरूप बन गयी। 'जातहारिणी' देवी को तीनों रूपो में देखा जा सकता है - १. साध्यदेवी- यह उन बच्चों के ऊपर आक्रमण करती थी जो ठीक होने योग्य थे। २. याप्यदेवी- इनके द्वारा बीमारी की अवधि बढ़ा दी जाती थी। ३. असाध्यदेवी- इनका यह स्वरूप था कि ये ऐसी बीमारियों का प्रयोग करती थी, जिससे नवजात शिशु की बीमारी ठीक न हो सके। प्रथम श्रेणी मोहिनी नाम की देवी, द्वितीय श्रेणी पिशाची, यक्षी, आसुरी, काली, वारुणी, षष्ठी तथा याम्या आदि

1. Sparks lorn the Vedic Fine, p. 6-9
2. The Manny Faces of the Murukan p. 49
3. स्कान्द कात्तिकेय, पी. के. अग्रवाल,1966, पृ.150
4. तत्रैव, पृ.151-152

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी। इनका विभाजन जाति के आधार पर किया गया था। इन उल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि स्कन्द की सहायिका दृष्ट देवियाँ भी थीं।

स्कन्द की विभिन्न माताएँ थी किन्तु वास्तविक माता कौन थी इसका निर्णय असम्भव नहीं है। स्कन्द की एक माँ 'स्वाहा' भी कही जाती है। 'स्वाहा' अग्नि की सेविका तथा दूती थी। जिस प्रकार गरुड देवताओं के दूत थे और उनकी उत्पत्ति सूर्य के वीर्य से हुई थी जो पर्वतों पर से उत्पन्न हुए माने जाते हैं। प्रतीकात्मक दृष्टि से 'स्वाहा' सोम का प्रतिनिधित्व करती है, इससे यह प्रतीत होता है कि जिस प्रकार गरुड की सुपर्ण कथा के आधार पर सोम से तुलना की जाती है उसी भाँति स्वाहा की तुलना भी सोम से होती है। दोनों ही सूर्य से सम्बन्धित हैं। सूर्य शक्ति के स्रोत हैं तथा दोनों ही सूर्य के सन्देश वाहक हैं। यदि स्वाहा को सोम मान लिया जाय तो 'सोम' का अभिप्राय चन्द्रमा, अमृत तथा यज्ञीय द्रव्य भी हो जायेगा। यदि स्वाहा सोम तो उसका सम्बन्ध अग्नि तथा सूर्य दोनों से हुआ और सूर्य तथा चन्द्रमा एक साथ दिन-रात के प्रतीक माने जाते हैं। महाभारत के अनुसार स्कन्द का गर्भाश्रित होना सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों के मिलन के समय हुआ था। यह समय अमावस्या है जो नये चन्द्रमा के उदय का सन्देश देती है और नये चन्द्रोदय से समय का नया चक्र प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए स्वाहा सोम अर्थात् चन्द्रमा की ओर भी संकेत करती है।इस भाँति स्कन्द एक नये युग के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठ हो जाते हैं।[१] स्वाहा सोम के रूप में यज्ञीय द्रव्य को अग्नि में समर्पित करती है। यह यज्ञीय क्रिया अमरत्व को प्राप्त करने का एक मार्ग माना जाता है। स्कन्द की उत्पत्ति वैश्विक सोम रस को अग्नि में आहुति देने के लिए है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्कन्द अमर पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। स्कन्द का अमरत्व तथा वैश्विक सोम को आधा बनाकर विश्व को नये युग में प्रवेश करने का द्वार अनावृत होना माना जाता है।

कुमारतन्त्र में स्कन्द की उत्पत्ति भगवान् शिव के ललाट से निकलने वाली छः किरणों से हुई।[२] भगवान् शिव वैश्विक योगी हैं। जो एकत्त्व और अमरत्त्व के द्योतक हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि कुमार-स्कन्द भी उसी

---

1. The Manny Faces of the Murukan p. 164
2. Hindu polytheism by alain danielu, Newyork, bollingen foundation; 1964, p. 298-99

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यौगिक परम्परा से उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य के शरीर में विद्यमान षट्चक्र भी योगियों के साधना के सोपान माने जाते हैं। अतः स्कन्द भी यौगिक परम्परा के देव हैं।[१] स्कन्द का रङ्ग रक्त वर्ण तथा पीताभ है। ये दोनों रङ्ग मूर्तिकला में एक दूसरे के स्थानापन्न हो सकते हैं- ऐसा आगमों में विहित है। दोनों के मेल से केसरिया रङ्ग उत्पन्न करता है। जो पवित्रता का प्रतीक है।[२] स्कन्द के जन्म के विषय में महाभारत के नवें तथा तेरहवें भाग में एक कथा उद्धृत है कि मयूर पक्षी गरुड का पुत्र है जिसका नाम चित्रवह्नि था जिसे गरुड ने मुरुगन को युद्ध में सहयोग करने के लिए दिया। गरुड का सम्बन्ध सूर्य से है। इस प्रकार मयूर पक्षी भी स्वर्गीय देवताओं के युद्ध का पक्षी माना जाता है। स्कन्द के जन्म से छः संख्या का सम्बन्ध स्कन्दपुराण में निर्दिष्ट है। जैसा कि शिव के ललाट के छः किरणों से इनकी उत्पत्ति मानी जाती है। इनके छः मुख छः दैवी गुणों के प्रतीक हैं यथा- ज्ञान, वैराग्य, बल, कीर्ति, श्री तथा ऐश्वर्य।[३] इनके मुख शैवागम में पाँच प्रकार के कृत्यों के लिए भी माने जाते हैं यथा- सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह। एक दूसरे प्रबन्ध में श्री कृपानन्द वैरियर ने यह उल्लेख किया है कि इनके छः मुख ईश्वर के छः कृत्यों का भी सन्दर्भ रखते हैं यथा- आनन्द, पूर्णता, अमरयुवापन, असीमित शक्ति, बुराईयों से रक्षा तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य।[४] श्री शिवानन्द स्वामी ने इनके छः मुखों की तुलना योगियों के षट्चक्रों से किया है- यथा- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञाचक्र।[५] इनका भेदन ज्ञानार्थ अनिवार्य है।

इस प्रकार स्कन्द पुत्रत्व, वीर्य, स्रष्टा रक्षक, सेनानी, अधर्म विध्वंसक तथा नैतिक व्यक्तित्व के साथ प्रतिष्ठत हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ने **"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।"**[६]- की अन्योक्ति में शक्ति-शक्तिमान्, उत्पादक- उत्पत्ति सभी को स्कन्द के व्यक्तित्व में प्रतिष्ठत कर उन्हें सृष्टि के आदि देवता स्वरूप स्थापित किया है।

---

1. Yoga; Immortality by Eliade Mircea, routledge and Kegan paul, hondan 1958, p. 244
2. The Eeliments of Hindu Iconography by Gopinoth Rao, 1916,vol.II,p. 415
3. Hindu Gods and Goddesses, Swami Shivanath, 1963, p. 127
4. The Manny Faces of the Murukan p. 175
5. Hindu Gods and Goddesses, Swami Shivanath, 1963, p. 127
6. रघुवंश 1/1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह स्मरणीय है कि अग्नि के छः यज्ञीय स्फुलिङ्गों से स्कन्द की उत्पत्ति हुई थी। इनका जन्म अमरत्व तथा सार्वभौमत्व का बोधक है। यज्ञ सृष्टि की उत्पत्ति का मूल है और वह भौतिक क्रियाओं को छोड़कर उससे परे स्थित रहता है। स्कन्द का जन्म भी इसी क्रिया का प्रतीक है।[१]

इनके समग्र जीवन पर विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये स्वतः ब्रह्म स्वरूप हैं। जो एकरूप सर्वव्यापक, अमरत्त्व का प्रतीक तथा कृत्य तथा अकृत्य से पृथक् रहते हुए भी सबके कर्त्ता हैं। अतः **'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवान् प्रभुः'** इति।

श्रीकार्त्तिककेयकथार्णवः में कार्त्तिकेय का तत्त्व-चिन्तन विभिन्न रूपों में निदर्शित है। कुछ प्रमुख तत्त्व सार रूप में निम्नवत है-

सर्वदेवात्मकः स्कन्दः सर्वलोकात्मकस्तथा।
सर्वभूतात्मकश्चैव साक्षाद्ब्रह्म सनातनम्।।[२]

इस श्लोक में श्री कार्त्तिकेय को ब्रह्म के रूप में प्रतिपादित किया गया है। जैसा कि- स्कन्द सर्वदेवात्मक हैं अर्थात् सभी देवताओं की आत्मा स्कन्द को बताया गया है- तथा सभी लोक में ये व्याप्त है अथवा सम्पूर्ण लोक इन्हीं के विराटवपु में विराजित हैं- सभी प्राणि इन्हीं में निवास करते हैं अथवा सभी प्राणियों की आत्मा हैं। अतएव कुमार कार्त्तिकेय साक्षाद्ब्रह्म पदवाच्य है **''यतो वा इमानि''** श्रुति का सार भी यही है।

त्वां कार्त्तिकेय कथयन्ति.....।[३]

एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति के न्याय से एक ही ब्रह्म अनेकों उपासकों के लिए जैसे विभिन्न रूप वाला हो जाता है। उसी प्रकार प्रस्तुत श्लोक में कार्त्तिकेय से सम्बंधित वचन मिलते हैं जैसे कि-

हे कार्त्तिकेय आप ही को शैव भक्त शिव के रूप में कथन करते हैं। वैष्णवजन आपही को परात्पर तत्त्व देवताओं के शासक श्री वासुदेव कहते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य कोटि के भक्त हैं जो आपको लोको की सृष्टि करने वाले पद्मभव ब्रह्मा भी कहते हैं। इसी प्रकार सत्पुरुष आपही को त्रयात्मक मूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) के रूप में स्वीकार करते हैं।

---

1. The Manny Faces of the Murukan p. 176
2. श्रीकार्त्तिकेयकथार्णवः, भूमिका, पृ. 1.
3. तत्रैव, पृष्ठ 12, श्लोक 5.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः कुत्सितान् दिति भवान् धृतशूलशक्तिः....।[१]

वैदिक सूक्तों में रुद्र को वैद्य के रूप में स्वीकारा गया है। प्रस्तुत श्लोक में कार्त्तिकेय को भी भवरोग विनाशक वैद्य के रूप में वर्णन किया गया है। साधक अपनी साधना के प्रतिफल भवरोग विनाशक वैद्यराज श्रीकुमार कार्त्तिकेय में अपनी कुद्धि को समाहित करने की प्रार्थना करता है।

जिन्होंने कुत्सित दितिपुत्रों दैत्यों को अपने अतुलनीय पराक्रम के कारण शूल एवं शक्ति से अथवा शूल की शक्ति से नाश करते हैं।

मोक्ष को एवं ऐश्वर्य को जो देने वाले हैं ऐसे श्रीस्कन्द में मेरी बुद्धि तन्मयता को प्राप्त करें।

श्री कार्त्तिकेय को अपने वाहन एवं हस्तगत शक्ति के सहित प्रणवविद्या के रूप में प्रतिपादन किया गया है।

हे प्रभो आपका वाहन शिखी = मयूर श्रुति वेद संघ समूह अर्थात् वेदमन्त्रात्मक ही मयूर है। ऐसे वेदस्वरूप मयूर पर विराजित होने वाले आप प्रणव विद्या हैं। आपके करककल में धारण की गई शक्ति साक्षात्संवित् शक्ति है जो सकल आगमों के द्वारा प्रतिपाद्य तत्त्व है अथवा आगमगम्य है।

पूर्वोक्त रहस्य का ही प्रतिपादन अग्रीम श्लोक में किया गया है। जैसा कि- वेद ही मयूर वाहन है तथा मयूर के ऊपर विराजित होने वाले षण्मुख साक्षात्प्रणव हैं। श्री षण्मुख कार्त्तिकेय के हाथ में विराजित अस्त्र शक्ति साक्षात् ब्रह्मविद्या है। अतः वेद प्रतिपाद्य प्रणव के बोधक ब्रह्मविद्या का ज्ञान मात्र से मुक्ति होती है।

श्रीस्कन्द के वैभव का वर्णन करते हुए इस श्लोक में बताया गया है कि श्रीस्कन्द बाह्य एवं आभ्यन्त उभयविध शत्रु का नाश करते हैं।

जो बाह्य एवं आभ्यंतर शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। जिनकी स्कन्द के रूप में पवित्र ख्याति है। जिन्होंने अपनी शारीरित कान्ति से मन्मथ को भी पराजित कर दिया। जो पृथ्वी पर मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। जो मुक्तिकामा महर्षियों की साधना को भंग करने वाले निन्दनीय पाप परायण दैत्यों को पराजित करते हैं, जिनकी कुमार नाम से प्रसिद्ध आख्या है। ऐसे परमतत्त्व, प्राज्ञों के द्वारा ध्येय के रूप में सदा दहराकाश में समाधि के द्वारा स्थापित किए जाते हैं।

---

1. श्रीकार्त्तिकेयकथार्णवः, पृष्ठ 15, श्लोक 1.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस श्लोक में श्रीकुमार देव के षण्मुख शिवशक्त्याकार स्वरूप में वर्णित किया गया है। हे देव आपका एक मुख आपकी जननीस्वरूपा शक्ति से सम्पन्न होने से शाक्त है। तात्पर्य श्री कुमारदेव का प्रथममुख शक्ति की प्रतिकृति अथवा शक्ति का प्रतिनिधि है। अन्य पाँच मुख पंचकृत्य विधायक भगवान् शिव ही पाँच मुख के रूप में हैं। अतः शाक्त एवं शैव उभयविध आननों को धारण करने से षडानन कुमार शिवशक्त्याकार में प्रतिभासित होते हैं। ऐसे शिवशक्त्याकार स्वरूप परमतत्त्व श्री स्कन्द देव मेरे मानस में सदा निवास करें। इसी पूर्वोक्त तथ्य को अन्य प्रकार से प्रतिपादित किया गया है।

पंचकृत्य को करने वाले पाँच मुखों वाले सदाशिव भगवान् तथा एक वक्त्र वाली परमेश्वरी जो परस्पर भिन्न हैं। इन दोनों के पंचवक्त्र एवं एकवक्त्र भगवान सदाशिव एवं भगवती परमेश्वरी दोनों ही अभेदसत्ता को प्राप्त करके षड्वक्त्र समन्वित श्री कार्त्तिकेय के रूप में प्रकट होते हैं। एक अन्यतम श्लोक में प्रकारान्तर से विषय को रखते हैं।

हे विभो! (भगवान् कार्त्तिकेय के लिए) आप षण्मुख हैं। इन छः मुखों में जो पहला मुख है वह ओंकार प्रणवस्वरूप है। एवं तदतिरिक्त शेष जो पाँच मुख हैं वह नमः शिवाय के स्फुट पाँच अक्षर ही पाँच मुख हैं। ऐसा आपके वैभव को जानने वाले ज्ञानी-जन कहते हैं। इसी कारण से हे देवा स्कन्द कुमार शम्भुतनय आदि नामों से आपकी सृष्टिव्यापी ख्याति है। अतः हे शर्व = शिव से, अभिन्न तनु = शरीर वाले षडानन देव में आपका सतत चिन्तन करता है।[१]

भारतीय विद्या की सपर्या करते हुए सनातन कवि आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने 'कुमारविजयमहाकाव्य' में कुमार शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ दी हैं-

कवि का स्वमत है कि भगवन्! कुमार आपके नाम की सभी व्युत्पत्तियाँ सही हैं क्योंकि आप क्रीडा भी करते रहते हैं (कुमारः, क्रीडा, तद्युक्तश्च), तारकासुर रूपी मार को नष्ट भी करते रहते हैं (कुत्सयति मारं यः सः) और पृथिवी के ऊपर घूमते भी रहते हैं (कुम् उपपद पूर्वक गत्यर्थक ऋ धातु से अन् प्रत्यय होकर निष्पन कुम् + आर)।

कुमार कार्त्तिकेय की षण्मुखत्व की भी वैज्ञानिक परिपुष्टि करते हुए कहा है-

---

1. श्रीकार्त्तिकेयकथार्णवः, श्री टि.के. मुत्तुस्वामी शास्त्री, प्रकाशित, के.सी.एस. कृष्णन, सी-203, यमुना अपार्टमेन्टस्, अलकनन्दा, नई दिल्ली-19, सन् 1982.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमेन मुखेन पार्थिवः स बभूवान्यमुखैश्च शेषभूः।
शिव एव स एष षण्मुखः स हि षष्ठः खलु भूतपञ्चके।।१.८।।

कुमार कार्त्तिकेय पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवम् आकाश इन पंचतत्त्वों के साथ चितिरूप षण्मुख को धारण किये हुए हैं।

आचार्य द्विवेदी ने कार्त्तिकेय के प्रत्येक रूप का निरूपण किया है, जिसके कुछ महत्त्वपूर्ण अंश निम्नलिखित हैं-

पृथ्वीरूप-

यश्चात्र संभव इति प्रथते पृथिव्यां,
शब्दोऽत्र केचन भवन्ति हिताः पदार्थाः।
संभावनेति नियताप्तिरिति द्वयं वै,
तत्रास्ति संप्रमुखमत्र परन्तु शिष्टः।।३।।

अतितरां धवलद्युतयोऽम्बिका
अपि भवन्ति यदा खलु कालिकाः।
अपि च भूरपि धेनुतया परिणति-
मवाप्य कृतार्थयते जगत्।।९.१९।।

जलरूप-

अहर्पतिरसौ समर्पयति वारि यद् यत्र तत्,
परिस्फुरति वल्लरीव्रततिसन्ततिष्वद्भुतम्।
स एष महिमा तव स्फुटति-काल-संवत्सर-
प्रभृत्यतिशयः प्रभो भवति किं कृशस्तारके।।३.१५।।

अग्निरूप-

अलं यदनलो जगत्तनुमुदापरावर्त्तितुं
विवर्त्तत इलातले भवति चाप्तकामः परम्।
तदप्यहह किञ्चिदप्यपरमस्ति तन्त्रं श्रितं
विभावसु-पदप्रियं दिवस-रात्रि-चक्रात्मकम्।।३.१०।।

अलं भवति वै विभा वसु च विश्वमेतत् तयोः
परस्परपरिग्रहो भवति विग्रहोऽस्याः सृतेः।
इयं सृतिरपि प्रिया भवति रोहिताश्वस्य वा
उषर्बुधति शुष्मति ज्वलन एष यत् सन्ततम्।।३.११।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वायुरूप-

योगस्य मार्गस्य महाविभूतिर्यत्र स्थिता भाति स वायुदेवः।
तमामनन्तो निखिलात्मदेवं वैराग्योगेन भविन्त सिद्धाः।।४.२२।।

एतं विभुं यः पवते समन्ताच्चक्रं सृतेः शाश्वतिकं स देवः।
मरूनभस्वानिति मातरिश्व-सदागतिश्चेति पदेषु शेषी।।४.२३।।

आकाशरूप-

यस्यां विभान्ति परितः परिवर्त्तमानाः
सूर्यास्तथोडुपतयः सह तारकाभिः।
योगैः शुभाशुभगुणैर् भुवि जातकाना-
मायुष्यसूत्रपरितन्त्रणमादधानाः।।५.२।।

तामम्बिकामुषसि सन्तमसं निहन्तुं
गायत्रमोज उपसंश्रयतेतरां यत्।
तत्रैव तिष्ठति चराचर-जन्तु-जीव-
व्यूहः सनातनतमः प्रतिपन्नरक्षः।।५.१४।।

चितिरूप-

भूतं शरीरं प्रवदन्ति धीरा मृत्योरभीष्टं परमं तदनम्।
चितिस्तु तद् वै सततं स्पृशन्ती ततो विरुद्धैव सदैव भाति।।६.११।

उनके दुरुपयोगजन्य असन्तुलन की विभीषिका से जनमानस को सावधान भी किया है। कवि ने देवगणों के मुख से भगवान् कार्त्तिकेय की प्रार्थना करते हुए निवेदन किया है कि भगवन् हमारी स्तुति के एक-एक अक्षर आपकी कृपा से तारकासुरों के ऊपर वज्र सिद्ध होवें, क्योंकि शत्रु गोली से नहीं मरता, प्रत्येक गोली में छिपकर बैठी अम्बिका तथा उसे प्रेरणा देते हैं भगवान् शिव और आप स्वयं शिव ही हैं।

न खलु गुलिकया विनाश्यतेऽरिः
प्रतिगुलिकं निभृताऽम्बिकात्ति वै तम्।
अथ च शिव इह स्थितोऽम्बिकां तां
प्रणुदति हन्त स एव च त्वमेषः।।२.५८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-४

मन्त्र-विमर्श

तन्त्र-विधान में मन्त्र ही मुख्यमन्त्री होता है। भारतीय विद्या के जिज्ञासु अध्येता इस शब्द से शुरु से ही परिचित रहे हैं। सभ्यता के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद भी बहुशः इस शब्द का प्रयोग विवरण विद्यमान है।[१] भारतीय तत्त्वज्ञ ऋषियों ने मन्त्र-विज्ञान की जितनी सार्थक एवं विशद व्याख्या की है, वह अनन्य है। वेद में मन्त्र शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त है। सामान्यतया, यह शब्द पवित्र वाणी, प्रार्थना, स्तुतिगान, मन्त्रणा तथा योजना आदि अर्थों में वर्णित हैं।[२]

सौभाग्यभास्कर का अभिमत है कि पूर्णाहन्ता अथवा परावागात्मक अनुभूति ही मन्त्र है। यह अनुभूति निरन्तर तथाविध मनन या अनुसन्धि से उत्पन होती है तभी संसार को क्षीण करने वाला त्राण भी बन पड़ता है अन्यथा नहीं-

पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन् मननधर्मतः।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।।[३]

कुलार्णवतन्त्र का कहना है कि दीप्तिमन्त देवतत्त्व के रूप में मनन करने की प्रेरणा देने वाला तथा समस्त सांसारिक भयों से त्राण करने वाला तत्त्व ही 'मन्त्र' है।[४] यह मन्त्र, चित् शक्ति का स्वस्वभाव है- **''चिच्छक्तेः स्वस्वभावो यः स मन्त्रः परिगीयते।''**[५] महार्थमञ्जरीकार का मानना है कि- **''मननात्त्राणधर्माणो मन्त्राः'' इति ह्याम्नायः**[६] अर्थात् मनन तथा

1. ऋग्वेद, 1/147/4, 1/152/2, 10/50/4.
2. गृह्यमन्त्र एवम् उनका विनियोग, पृ. 10.
3. सौभाग्यभास्कर, पृ. 52.
4. मननात्तत्त्वरूपस्य देवस्याभिततेजसः।
   त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः।। - कुलार्णवतन्त्र, 17/58.
5. शिवसूत्रवार्तिक, द्वितीय प्रकाश
6. महार्थमञ्जरी, पृ. 102.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्राण- ये मन्त्र के दो धर्म हैं। मन्त्र-ज्ञान ज्ञानों का परमज्ञान है। सारी क्रियायें तथा सारा संसार मन्त्रमूलक है। भगवान् विष्णु मन्त्रमय है। त्रैलोक्य में मन्त्र के बिना कोई क्रिया नहीं है। सर्वकर्म प्रसाधक मन्त्र ही शब्दब्रह्म है।[१]

मन्त्र के प्रमुख रूप से दो भेद होते हैं- मातृकाविभाग और मन्त्रविभाग। मातृकाविभाग के अन्तर्गत मन्त्रोत्पत्ति में आधारभूत वर्णों की उत्पत्ति, उनके स्वरूप आदि का विशद विवेचन निर्दिष्ट है।[२] 'मातृका वर्णरूपिणी' कही गयी है।[३] स्वच्छन्दतन्त्र का अभिमत है कि 'मातृका से पराविद्या नहीं है।[४] अहिर्बुध्न्यसंहिता में वर्णों की उत्पत्ति-क्रम-आदि-सुस्पष्ट वर्णन किया गया है।[५]

कुमारतन्त्र में मन्त्रोद्धार के क्रम में मातृकाओं के तत्तद्वर्गस्थ वर्णों का निर्देश करते हुए मंत्रों का स्वरूपोद्धार प्रदर्शित है। मन्त्रोद्धार के प्रारम्भ में मातृका-वर्णों की पूजा की जानी चाहिये।[६] मन्त्रों के उद्धार-क्रम में मातृकाओं को आठ वर्ग में विभक्त होना कहा है। मन्त्रोद्धार क्रम के आलोडन से स्पष्ट रूप से प्रथम वर्ग में स्वर-वर्णों का समावेश है। यद्यपि ये आठ वर्ग यहाँ स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं हैं। तथापि अकार से प्रारम्भ परिगणन करने पर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं तथा अः है।)। यहाँ मन्त्रस्थ अन्यान्य वर्णों के उद्धार के लिये जो क्रम स्वीकार किया गया है उसके आधार पर प्रथम वर्ग स्वरवर्ण, द्वितीय वर्ग कवर्ग, तृतीय वर्ग चवर्ग, चतुर्थ वर्ग टवर्ग, पञ्चमवर्ग तवर्ग, षष्ठम वर्ग पवर्ग, य र ल व श, सप्तम् तथा अष्टम अर्थात् अन्तिम वर्ग ष स ह क्ष का है- ऐसा माना जा सकता है।[७] **सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थ सर्वप्रथम ओं स्त्रूं स्कन्दाय नमः** का उद्धार किया गया है। **ओं सूं सौं सुब्रह्मण्याय नमः, ओं क्रूं कुं कुमाराय नमः, ओं सुं स्वामिन् गुहाय नमः, ओं शीं शं शरणभवाय नमः, ओं**

1.क. संकर्षणसंहिता, मन्त्ररात्रम् 1/12.
ख. सनत्कुमारसंहिता, ब्रह्मरात्रम् 11/1-3.
2.क. तन्त्रालोकविवेक, तृतीय आ./232.
ख. प्रपञ्चसार, तृतीयपटल
3. ललितासहस्रनाम-167.
4. स्वच्छन्दतन्त्र पटल 11/199.
5. अहिर्बुध्न्यसंहिता, अध्याय-16.
6. कुमारतन्त्र, द्वितीय पटल-2.
7. तत्रैव, 3-4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ह्रीं षं षण्मुखाय नमः का क्रमशः उद्धार किया गया है।[१] **ओं सं सद्योजाताय नमः, ओं सिं वामदेवाय नमः, ओं सुं अघोराय नमः, ओं सें तत्पुरुषाय नमः, ओं सों ईशानाय नमः** - पञ्चब्रह्मबीज क्रम उद्धार निर्दिष्ट हैं।[२]

मन्त्रशास्त्र में बीजाक्षर, घनाक्षर तथा एकाक्षर का सर्वाधिक महत्त्व है। प्रत्येक देवता का अपना मन्त्र एवं बीजाक्षर है। बीज मन्त्र ही देवता का मूर्त रूप होता है। बीजाक्षर से मन्त्र सिद्ध होता है तथा मन्त्र देवता प्रसन्न होते हैं। भिन्न-भिन्न वर्ण भिन्न-भिन्न शक्ति रूप हैं। प्रत्येक अक्षर में स्वतन्त्र शक्ति है। देवता अपने बीज मन्त्र में ही अवस्थित रहते हैं। इसे 'बीज मन्त्र' हृदयमंत्र या मालामन्त्र बीज भी कहा जाता है। समस्त वर्ण बीज तथा योनि दो प्रकार के होते हैं। स्वर वर्ण बीज कहे जाते हैं व्यञ्जन योनि। बीज शिव रूप है और योनि शक्ति रूप। परम रहस्यमय बीज ओंकार है। तन्त्रशास्त्र में बीजाक्षर का विशिष्ट महत्त्व है। वर्तमान विज्ञान जिन प्रतीकों का प्रयोग कर रहा है, वह भी एक प्रकार से बीजविद्या ही है। बीज मन्त्रों का उद्धार तथा मन्त्र चैतन्य है। बीज मन्त्र प्रच्छन शक्ति को उदार बना देते हैं। बीज मन्त्र का उद्धार करते हुए कुमारतन्त्र में होता है। ये जातियाँ छः कही गयी हैं- १. नमः, २. स्वाहा, ३. वषट्, ४. हुम्, ५. वौषट् तथा ६. फट्।[३] कुमारतन्त्र मन्त्रों के द्वारा सामान्य रूप से ऐहिक तथा पारलौकिक उभयविध सिद्धि की विधान कहा गया है।

"मन्त्रों के हृदयादि अंग होते हैं। ये अंग हैं- हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र। इस सम्बन्ध में जाति का समन्वय अपेक्षित है।

शक्तिमन्त्रों का उद्धार करते हुए सप्तम वर्ग के चतुर्थ वर्ण को महावल्ली का बीजमन्त्र बताया गया है। इस प्रकार बिन्दु और नाद से संयुक्त करके मूल मन्त्र **'ओं व्रीं महावल्ल्यै नमः'** होगा। इसी क्रम में **'ओं देवसेनायै नमः'** का भी उद्धार किया गया है।[४]

षण्मूर्तिमन्त्र का निरूपण करते हुए षण्मूर्तियों का विवेचन किया है- १. सुब्रह्मण्य, २. कुमार, ३. हरसूनु, ४. सुराग्र, ५. सेनापति तथा ६. सुरेश- ये षण्मूर्ति कहे गये है। इनके मन्त्र **ओं सुं सुब्रह्मण्याय नमः,**

---

1. तत्रैव, 5/12.
2. तत्रैव, 13-15.
3. कुमारतन्त्र, पटल- 2/16.
4. तत्रैव, 2/17-18.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओं कुं कुमाराय नमः, ओं हं हरसूनवे नमः, ओं सुं सुराग्रजाय नमः, ओं सें सेनापतये नमः, ओं सुं सुरेशाय नमः। पुनः प्रकारभेद से छः मूर्तियों का विवेचन प्राप्त होता है- **ओं जगद्भुवे नमः, ओ वचद्भुवे नमः, ओं विश्वभुवे नमः, ओं रुद्रभुवे नमः, ओं ब्रह्मभुवे नमः, ओं भुवनभुवे नमः।**[१]

अष्टपरिवारमन्त्रों का क्रम- **ओं गं गजेन्द्राय नमः, ओं अं अग्नये नमः, ओं यं यमाय नमः, ओं नं निर्ऋतये नमः, ओं वं वरुणाय नमः, ओं सं सोमाय नमः, ओं सुं सुमित्राय नमः।**[२] मयूरबीज का उद्धार करते हुए- **ओं म्रीं मयूराय नमः,**[३] **सर्वकामार्थ सिद्ध्यर्थ शक्तिबीज ओं श्रीं शक्तये नमः** का उद्धार किया गया है।[४] नव शक्तियाँ- १. शकुनी, २. रेवती, ३. पूता, ४. महायूता, ५. निशीथिनी, ६. मालिनी, ७. श्यामला, ८. बुद्धया तथा ९. विश्वतोमुखी हैं। क्रमशः मन्त्र होगा- **ओं शं शकुन्यै नमः, ओं रं रेवत्यै नमः, ओं यं पूतायै नमः, ओं मं महायूतायै नमः, ओं नं निशीथिन्यै नमः, ओं मं मालिन्यै नमः, ओं शं श्यामलायै नमः, ओं बं बुद्ध्यै नमः, ओं वं विश्वतोमुख्यै नमः।**[५] इन शक्तियों के आयुध मन्त्रों का निरूपण भी निर्दिष्ट है।[६]

अष्टमूर्ति का स्वरूप- १. कार्त्तिकेय, २. विशाख, ३. मयूरवाहन, ४. गुह, ५. असुरान्तक, ६. सेनानी, ७. षण्मुख, ८. शक्तिपाणि हैं।[७]

कुमारतन्त्र ने मन्त्रों के ऋष्यादिकों के स्वरूप का भी निर्देश किया है। प्रत्येक मन्त्रों के ऋषि छन्द तथा देवता एवं बीजादि का ध्यान आवश्यक बताया गया है। तदनुसार- **"ओं अस्य श्री स्कन्दषडक्षरोमहामन्त्रस्य, शक्ति ऋषिः, देवीगायत्री छन्दः, श्री षण्मुखो देवता, वं बीजम्, यं शक्तिः, मं कीलकम्, मम इष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः** - इस प्रकार बताया गया है।"[८]

किसी भी जप में सम्प्रदायनुसार न्यास का विधान किया जाता है। न्यास का अभिप्राय है कि मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को साधक के अङ्गप्रत्यङ्ग में परिकल्पित कर मन्त्र के स्वरूप की मानसिक परिकल्पना करना। इससे एक ओर मन शुद्ध तथा केन्द्रित होता है और दूसरी ओर साधक अपने

---

1. तत्रैव, 2/19-20.
2. तत्रैव, 2/22, 23.
3. तत्रैव, 2/24.
4. तत्रैव, 2/25.
5. तत्रैव, 2/26.
6. तत्रैव, 2/27.
7. कुमारतन्त्र, पटल, 2/28.
8. तत्रैव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्गप्रत्यङ्ग को मन्त्र के लिये समर्पित करता है। कुमारतन्त्र में इस प्रकार न्यास का विवेचन प्राप्त है-

अथ षडक्षरन्यासः-

मूर्ध्न्यास्ये हृदये नाभौ गुह्ये पादद्वये न्यसेत्।
ओं वं हृदयाय नमः, ओं चं शिरसे स्वाहा।
ओं भुं शिखायै वषट्, ओं वें कवचाय हुम्।
ओं नं नेत्रत्रयाय वौषट्; ओं मः अस्त्राय फट्।

'वचद्भूमहामन्त्र' के अक्षरलक्षजप में न्यास अनेक प्रकार से विनियोग निर्दिष्ट हैं, जो निम्नवत् हैं-

अस्य श्री वचद्भूमहामन्त्रस्य सनत्कुमार ऋषिः ब्रह्मा-विश्वामित्रो वा, गायत्री छन्दः उष्णिखा, गुहो देवता। अक्षरलक्षजपे विनियोगः। प्रथमावृत्तौ।। पुरश्चरणमङ्गैः।। द्वितीयावृत्तौ।। जयन्ताय नमः ; अग्निकेशाय नमः ; कृत्तिकापुत्राय नमः ; भूतपतये नमः ; सेनान्यै नमः ; गुहाय नमः ; हिरण्यशूलाय नमः ; विशालाक्ष्यै नमः ; तृतीयावृत्तौ।। पत्रेषु- देवसेनापतये नमः ; विद्यायै नमः ; मेधायै नमः ; वज्राय नमः ; शक्त्यै नमः ; कुक्कुटाय नमः ; मयूराय नमः ; द्विपाय नमः, इति पूर्वादिदिक्षु आग्नेयादिकोणेषु च।। चतुर्थावृत्तौ।। पुनः इन्द्राय नमः इत्या- द्यष्टदिक्पालान्।। पञ्चमावृत्तौ।। वज्राय नमः।। इत्यादिदशायुधानि।। तत्पश्चात् ध्यान का इष्टकामनार्थ किया जाता है।

स्कन्द गायत्री का स्वरूप निम्नवत् है- **ओं कार्त्तिकेयाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्।**[1] मयूरगायत्री गजगायत्री का भी स्वरूप वर्णन उपलब्ध होता है।

विभिन्न कामनाओं के लिये यथा भोग मोक्षार्थ सुब्रह्मण्यम मन्त्र का ऋषि देवतादि का उच्चारणपूर्वक विनियोग होता है।[2]

सुब्रह्मण्यपञ्चदशाक्षरीमन्त्रस्य अमृताकर्षणदक्षिणामूर्तिः ऋषिः। गायत्री छन्दः। प्रसन्नस्कन्दो देवता। सौं बीजम्। ह्रीं शक्तिः। प्रसन्नस्कन्दप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। शरवणभवपरापरब्रह्ममयाम विद्यादेहाय हृदयाय नमः। ब्रह्मचर्याय शिखिवाहनाय शिरः। द्वादशनेत्राय शिखा। स्कन्दस्वामिकुमाराय कवचम्। ब्रह्मरुद्रतेजोमयाय नेत्रम्। ब्रह्मास्त्रनिवारणाय अस्त्रम्।

---

1. कुमारतन्त्र, पटल-2, पृ. 18.
2. तत्रैव, पृ. 12/13.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यानम्-

किंतु (नु) रूपं प्रवक्ष्यामि बालार्कायुततेजसम्।
व्याख्यसानमुद्रासहितं देवसङ्घैस्समावृतम्।।

ओं श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं ईं नळं स्वौं शरवणभव। इति मन्त्रः।। इति पञ्चदशार्णोयं मन्त्रः। विद्यारक्षाप्रधानोयं मन्त्रः।[1]

मन्त्रोद्धार-क्रम में मातृकापीठ के निर्माण का विधान है। शुद्ध भूमि भाग को गोमय से लीपकर, चन्दनादि द्रव्यों का उपलेप कर मातृकापीठ में मातृकाचक्र का कल्पन होता है। उसी मनोरमपीठ पर मन्त्रोंद्धार के लिये मातृकाओं का उल्लेख किया जाता है। कुमारतन्त्र में मातृकाचक्र की स्थापना कर उसकी विधिवत् पूजा की जाती है। पूजा क्रम में एक एक वर्ण का पाद्य, अर्घ्य आदि के द्वारा पृथक्-पृथक् अर्चन करते हैं। मातृकापीठ का स्वरूप चक्राकार अथवा पद्माकार होता है। इस चक्र में प्रथम अकारादि क्षकारान्त अवर्गादि आठ वर्गों का उल्लेख किया जाता है। पूर्व दिशा में प्रणव का लेखन करते हैं। इसी प्रकार अग्निकोण आदि सभी दिशाओं में नकारादि वर्णों की स्थापना करते हैं। कर्णिका में मूलमन्त्र का स्थापन किया जाता है। इस मालामन्त्र की सविधि उपासना कर समस्त अभीष्ट को प्राप्त करते हैं।

स्कन्दादि मन्त्रों के विवेचनोपरान्त षोडश मूर्ति ध्यान का सविस्तर निरूपण किया गया है- ज्ञानशक्तिधर, स्कन्द, देवसेनापति, सुब्रह्मण्य, गजारूढ आदि सोलह स्वरूपों का निरूपण मिलता है।

कुमारतन्त्र में प्रयुक्त एवं वर्णित मन्त्रों के विशद विवेचन तथा विश्लेषण के लिये स्वतंत्र रूप से एक पृथक ग्रन्थ की आवश्यकता है। प्रस्तुत विवेचन में इस दिशा में मात्र एक संक्षिप्त एवं सामान्य प्रयास कहा जा सकता है।

स्कन्द अर्थात् कुशल। ज्ञान की मदद से ही कुशल कार्य किये जा सकते हैं। स्कन्द ही हमारे जीवन में ज्ञान और क्रियाशीलता के एक साथ आने का भाव दर्शाता है।

रुद्रयामलतन्त्र में ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति का उपाय कुमार कार्त्तिकेय को प्रसन्न करने लिये मन्त्र निम्नवत है-

योगीश्वरो महासेनः कार्त्तिकेयोऽग्निनन्दनः।
स्कन्दः कुमारः सेनानी स्वामीशङ्करसम्भवः।।

---

1. प्रपञ्चसारसंग्रह ऑफ गिरवाणेन्द्र सरस्वती, सम्पादक- के.एस. सुब्रह्मण्यमशास्त्री, चौखम्भा सुरभारतीप्रकाशन वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योगियों में सर्वश्रेष्ठ, महान्, सेनापति, अग्नि के अवतार, कार्त्तिकेय, स्कन्द, सेनानी, स्वामी और शिव को आनन्दित करने वाले आज्ञाकारी पुत्र हैं।

गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चरिश्च षडाननः।।

इस मन्त्र में कुमार कार्त्तिकेय के नाम और गुणों का निरूपण किया गया है। गाङ्गेय अर्थात् गङ्गाजी के पुत्र, ताम्रचूड अर्थात् अग्नि के समान शिर के लालबाग, ब्रह्मचारी-बालब्रह्मचारी, शिखिध्वज-मोर पर सवार हैं। तारकासुर को मारने वाले भगवती पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र, क्रौञ्चपर्वत पर एक राक्षस मारने वाले शत्रु और छः मुखवाले षडानन हैं।

सशब्दब्रह्ममुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः।।

कुमार स्कन्द शब्दब्रह्म अर्थात् शब्दार्थों के तत्त्ववेता, सरस्वती के वरदपुत्र, गुहः कठिन साधना से जानने योग्य हैं। सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार बालखिल्यों के समान ही स्कन्द जो ही ब्रह्माजी की प्रथम मानस सृष्टि हैं। साक्षाद् भगवत्स्वरूप विष्णु और सांसारिक सभी सुख तथा अन्त में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

सर्वागमप्रणेता च वाञ्छितार्थप्रदर्शनः।
अष्टविंशति नामानि मदीयानि यः पठेत्।।

स्वामी कार्त्तिकेय सभी आगम अर्थात् दर्शनशास्त्रों के प्रणेता रचनाकार और वाञ्छित अभीष्टफल को देने वाले हैं। भगवान स्कन्द स्वयं कहते हैं कि इस प्रकार मेरे अट्ठाइस नामों को जो सूर्योदय से पूर्व पढ़ता है तो वह।

प्रत्यूषे श्रद्धायुक्तो मूको वाचस्पति भवेत्।।

व्यक्ति श्रद्धा और विश्वास करने वाला गूंगा-मूर्ख भी वाचस्पति अर्थात् बृहस्पति के समान वक्ता हो जाता है।

महामन्त्रभवामीति नात्र कार्या विचारणा।
महाप्रज्ञानमाप्नोति मम नामानुकीर्तनम्।।

यह मेरे अट्ठाइस नाम ही महामन्त्र हैं, इसमें कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये। व्यक्ति इन नामों के पाठ से महाप्रतिभा को प्राप्त कर लोक में महावक्ता ज्ञानी के रूप में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेता है।[1]

---

1. मन्त्र-विज्ञान, डॉ. राजनाथ त्रिपाठी, शिवसंस्कृतसंस्थान, वाराणसी, 2018, पृ. 17-18.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यन्त्र

मन्त्र के साथ यन्त्र का घनिष्ठ संबंध है, 'य' म और भूतादि के भयों से सबको मुक्त करता है साथ ही सबका त्राण करने में भी यह समर्थ है। इसलिए यह यम्+त्र = यन्त्र संज्ञा से विभूषित है। इसकी यह विशेषता है कि, यह केवल धारण करने के समय ही नहीं अपितु सतत रूप से अनवरत रक्षा करता है।[1] मन्त्रों के चैतन्य उद्बोधन एवं समर्थ विनियोग के लिये यन्त्र का विशेष उपयोग होता है। कुमारतन्त्र में भी यन्त्र का स्वरूप विवेचन उपलब्ध है।[2] कन्नड़ लिपि में कुमारवशीयन्त्र का स्वरूप निम्नवत् है-

Kanda Kumara Vashi Yantra

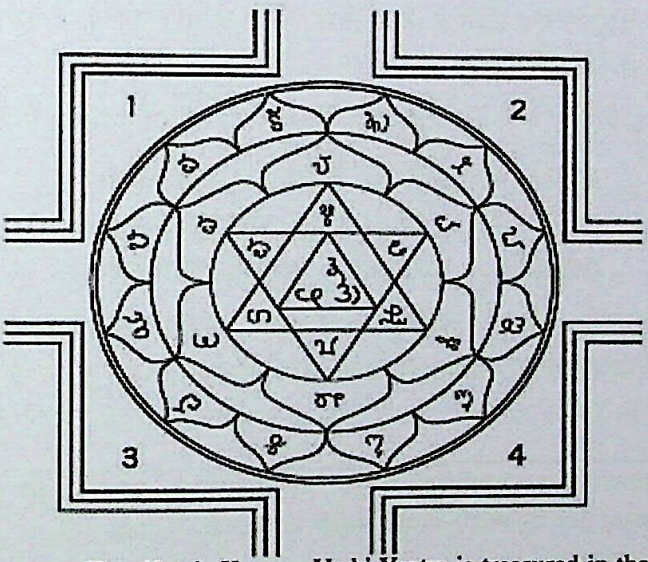

This Kanda Kumara Vashi Yantra is treasured in the Ruhunu Maha Kataragama Dewalaya in Sri Lanka

1. कुलार्णवतन्त्रम्, 17/61.
2. तत्रैव, पृ. 11.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुद्रा

तन्त्रागमशास्त्रों तथा योग के ग्रन्थों में 'मुद्रा' शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में प्रयुक्त है।[१] कुलार्णवतन्त्र में मुद्रा को परिभाषित करते हुए लिखा है-

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।
तस्मान्मुद्रादतिख्याता दर्शितव्याः कुलेश्वरि।।[२]

आचार्य रामेश्वर झा का अभिमत है कि, ईश्वर के साथ तादात्म्य प्राप्त किये हुए योगी के देह की कोई भी स्थिति जिसमें चेतन की प्रतिच्छवि दीखती हो, वही 'मुद्रा' है। इन्होंने तीन प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख किया है- 'मनोजा' जो गुरुवक्त्र (उन्मना) में रहती है, दूसरी 'वाग्भव' जो मन्त्र जपादि द्वारा उत्पन्न होती है तथा तीसरी देहो व मुद्रा देह के अवयवों के विक्षेप से जन्य होती है।[३]

कुमारतन्त्र में सर्वसिद्धिप्रदायिनी पद्ममुद्रा का स्वरूप निम्नवत् किया है-

सहितो मणिबन्धौ द्वौ कनिष्ठौ सङ्गतौ तथा।
अङ्गुष्ठौ सङ्गतौ द्वौ च शेषाः प्रविरला स्मृतः।।
पद्ममुद्रेति विख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी।।[५]

मुकुली, धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा, शक्तिमुद्रा, नेत्रमुद्रा तथा महामुद्रा का विभिन्न अवसरों पर प्रदर्शन करने का उल्लेख है।[५]

---

1. साधनमाला, 3, परमसंहिता, 14/2, परशुरामकल्पसूत्र, खण्ड-4, सूत्र 1 की व्याख्या तथा महाथमञ्जरी-परिमल, स्वामी महेश्वरानन्द, पृ. 106.
2. कुलार्णवतन्त्रम्, 17/5.
3. पूर्णताप्रत्यभिज्ञा, पृष्ठ 22-23.
4. कुमारतन्त्र, 26/4-5.
5. कुमारतन्त्र, 26/189-190, 27/99-100.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-५

प्रतिमा-विज्ञान या मूर्त्तिकला

प्रतिमा का तात्पर्य आगमशास्त्र में असाधारण रूप से 'बेर' शब्द से लिया गया है। कुमारतन्त्र के अतिरिक्त वैखानसागम तथा पाञ्चरात्रागम में भी सामान्य रूप से 'बेर' शब्द प्रयुक्त है।[१] यहाँ बेर शब्द विग्रह या बिम्ब का अर्थाभिधायक है। यह प्रयोग रूढ की तरह प्रयुक्त है। अर्चा, विग्रह, प्रतिमा, मूर्ति, बेर तथा बिम्ब पर्याय रूप में प्रतिष्ठित हैं।

विविध आराधन के आधार पर प्रतिमा के विविध भेद निर्दिष्ट हैं। देवालय में आराधन के लिए प्रयुक्त चल तथा अलच मूर्ति दो तरह की कही गयी है।[२] कुमारतंत्र में तीन प्रकार की प्रतिमाएँ बताई गयी हैं- १. चल बेर, २. चलाचल बेर तथा ३. अचल बेर।[३] अजितागम के अनुसार चल, अचल तथा चलाचल-क्रम से प्रतिमा तीन प्रकार की कही गयी है।[४] चल प्रतिमा का अर्थ उस प्रतिमा से है जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने के लिए अनुमत हो। अचल बेर किसी भी स्थिति में एक स्थान से दूसरे स्थान में परिवर्तनार्ह नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठाप्यमान प्रतिमा की संख्या के आधार पर एकबेरार्चन तथा बहुबेरार्चन की परम्परा प्राप्त होती है। एकबेरार्चन से तात्पर्य यह है कि आलय में मात्र एक ही बेर अर्थात् मूलबेर की प्रतिष्ठा एवम् आराधना होती है। बहुबेरार्चन-क्रम में बहुत से अर्थात् आलय में एक से अधिक प्रतिमाओं की आराधना प्रतिष्ठा का विधान विहित है। पाञ्चरात्रागम तथा कुमारतन्त्र में सात प्रकार की प्रतिमाओं

---

1. क. कुमारतन्त्र, 24/1
   ख. विमानार्चनकल्प पटल, 11
   ग. श्रीप्रश्नसंहिता, 14/3
2. मानसारशिल्प, 51/9.
3. कुमारतन्त्र, 24/1.
4. अजितागम (शैवागम) पटल, 36/182-183.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आराधना अधोलिखित हैं- १. मूलबेर, २. कर्मार्चा ३. उत्सवार्चा ४. स्नपनार्चा ५. बल्यर्चा, ६. तीर्थार्चा तथा ७. शयनार्चा।[१]

मूलादि बेरों के प्रयोजन सामान्य रूप से अधोलिखित बताये गये हैं। मूलबेर की प्रतिष्ठा ग्राम की रक्षा के लिए होती है। आराधन-प्रयुक्त समस्त कार्य-विधानार्थ कर्मार्चा या कौतुक-बिम्ब जरुरी है। उत्सवर्चा वह प्रतिमा विशेष है जो विभिन्न उत्सवों के अवसर पर प्रयुक्त होते हैं।

बलि-बेर का तात्पर्य उस प्रतिमा से है, जिसका उपयोग नित्य तथा नैमित्तिक बलि के अवसर पर होता है। स्नपन बेर का उपयोग विविध स्नपन के अवसरों पर देखते हैं। तीर्थ-बेर का प्रयोजन विशिष्ट उत्सवों के अवसर पर तीर्थ-यात्रा के क्रम में सम्पादित किया जाता है। भगवदाराधन-क्रम में भगवच्छायन के लिए जिस विग्रह का उपयोग होता है उसे शयन बेर की संज्ञा दी गई है।

महर्षि व्यास का मानना है कि मूलबेर अर्थात् अचल मूर्त्ति में प्रतिष्ठाकाल में भगवच्छक्ति का आवाहन किया जाता है जो सर्वदा विद्यमान रहती है। उसका विसर्जन नहीं होता। किन्तु कर्मार्चादि बेरों में आवाहित भगवच्छक्ति सर्वदा विद्यमान नहीं रहती। इन मूर्त्तियों में आराधन के अवसर पर तत्तत्कर्मों के सम्पदनार्थ मूलबेर से शक्ति का आवाहन किया जाता है तथा आराधन के उपरान्त पुनः उस शक्ति को मूलबेर में विसर्जित कर देते हैं।[२]

मूलबेर के विविध भेद तथा कल्पन विधि आदि का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। कर्मार्चादि प्रतिमाओं का उच्छ्राय अर्थात् उँचाई मानाङ्गुल से मापने का विधान है। चित्र, चित्रार्द्ध तथा चित्राभास- ये भेद प्रायः सभी आगमों समान रूप से निर्दिष्ट हैं।[३] जिस प्रतिमा में उसके सारे अवयव दिखलाई पड़ते हों तथा मान और उपमान से युक्त हो उसे 'चित्र' कहा गया है। जिस बेर का सर्वाङ्ग अर्द्धरूप से दृष्टिगोचर हो उसे चित्रार्द्ध बेर की संज्ञा प्रदान की गयी है। पट, कुड्य या भित्ति पर निर्मित बेर चित्राभास के रूप में मान्य है।[४]

---

1. क. नारदीयसंहिता, 13/349-353.
   ख. कुमारतन्त्र-पटल, 12, 13, 24, 26.
2. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 11/27/13.
3. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 50.
4. क. समूर्त्तार्चनाधिकरण, 18/11.
   ख. श्रीप्रश्नसंहिता, 11/6-7.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवस्थिति के आधार पर मूलबेर की त्रिधा स्थिति का वर्णन प्राप्त है- १. आसन, २. स्थानक तथा ३. ध्यानक[१]। आसन को योगबेर, स्थानक को भोगबेर तथा ध्यानक यान बेर कहा गया है।[२] द्विभुज बेर को सात्त्विक, चतुर्भुज बेर को राजसिक तथ द्वादश भुजाओं वाला बेर तामसिक भेद से उल्लिखित है।[३]

आगम-ग्रन्थों में यानग बेर का निर्देश मूलबेर के क्रम में प्राप्त नहीं होता है।[४] पाञ्चरात्रागम यानग मूल बेर का स्वरूप वर्णित है।[५] भृगु प्रोक्त अर्चनाधिकार में स्थानक को सात्त्विक, आसीन को राजस तथा शयान को तामस बताया गया है। कुमारतन्त्र में द्विभुज बेर को सात्त्विक, चतुर्भुज बेर को राजसिक तथा द्वाद्वशभुजाओं से युक्त बेर को तामसिक की संज्ञा दी गयी है।[६] स्थापन-स्थान तथा परिवार-देवता के न्यूनाधिक्य को आधार मानकर इन विविध प्रतिमाओं का भेद प्राप्त होता है।

मूर्त्ति की कल्पन- प्रक्रिया के क्रम में कुमारतन्त्र तथा अन्य आगम-ग्रन्थों ने प्रत्येक मूर्त्ति के एक-एक अङ्ग तथा उपाङ्ग कल्पन की विधि तथा विशेष रूप से उनके मान तथा प्रमाणादि सम्यक निर्दिष्ट है। यह विषय विवेचन अत्यन्त सूक्ष्म तथा विस्तृत है। वैखानसागम में ध्रुवबेर के अवयवों की संख्या चार सौ तिहत्तर बताई गयी है।[७] कुमारतन्त्र में पृथक रूप से कुमार के वाहन मयूर का ही लक्षण पैर से लेकर मस्तक पर्यन्त नख-शिख का वर्णन बड़ा ही सूक्ष्म रूप से प्रतिपादित है।[८] कुमारतन्त्र तथा अन्यान्य ग्रन्थों में परिवार बेर का भी सूक्ष्म-सुस्पष्ट कल्पन-निर्देशन है।

---

1. कुमारतन्त्र, 24/
2. तत्रैव, 24/
3. तत्रैव, 24/
4. निरुक्ताधिकार-13.
5. भार्गवतन्त्रम् - 4/88-89.
6. कुमारतन्त्र- 24.
7. क. विमानार्चनकल्प, पटल- 22-23.
   ख. यज्ञाधिकार, 20/1-77.
   ग. जयाख्यसंहिता, 20/9-66.
   घ. सात्त्वतसंहिता, 24/91-180.
8. कुमारतन्त्र-पटल, 24.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्दिर को ब्रह्माण्ड का रूप माना जाता है। यह केवल इसलिए कि विमान को मानवाकार माना गया है जो ब्रह्माण्ड का स्वरूप है- (यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे)। इसीलिए जिस प्रकार मानव शरीर में षट्चक्र होते हैं। उसी भाँति मन्दिर में भी षट्चक्रों के प्रतीक हैं। मुरुगन के भक्त तमिलनाडु के छः पवित्र स्थलों पर उनका दर्शन करते हैं।[१]

परिवार देवता की संख्या के अनुसार देवालय निर्माण प्रक्रिया आगम ग्रन्थों में विविध प्रकार की बताई गई हैं। प्रायः सभी प्रकार के विमानों में 'स्कन्द' का स्थान वर्णित है।[२] द्वितीयावरणभास्करादि परिवार स्थान निरूपण में सुब्रह्मण्य-आलय का स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट है-

किञ्चिद्दक्षिणमाश्रित्य ऐन्द्रद्वारस्य दक्षिणे।
सुब्रह्मण्यं समुद्दिश्य आलयं परिकल्पयेत्।।[३]

तृतीयावरण-गङ्गादि परिवार स्थान वर्णन क्रम में 'गुहालय' का विधान निम्नवत है-

इन्द्रेशानकयोर्मध्ये ज्येष्ठावासं प्रकल्पयेत्।
गुहादीनां मुखाः सर्वे रुद्रादिमुखवन्मुखान्।।[४]

पाञ्चरात्रागम षण्मुख विग्रह का वर्णन निम्नवत् करता है-

षण्मुखं च चतुर्बाहुं दाडिमीकुसुमप्रभम्।
वराभयप्रदौ मुख्यौ जघन्यौ शक्ति तोमरौ।।

कल्पयेच्छयामलं कान्त्यां चतुर्भिर्बाहुभिः क्रमात्।
गदाधरामभयदां खड्गचक्रचरायुधाम्।।

हारकेयूरमकुटनूपुरादिविभूषिताम् ।
अथवाष्टभुजां दुर्गां दक्षिणे दोश्चतुष्टये।।

अभीतिशरनिस्त्रिंशचक्रमण्डलमण्डिताम् ।
वामे गदाधनुःखड्गशङ्खायुधधरां वराम्।।

अथवा द्वादशभुजां विशेषः समुदीर्यते।
दक्षिणे परशुं शूलं वामे पाशाङ्कुशौ तथा।।

---

1. The Many Faces of Murukan, p. 176.
2. विमानार्चनकल्प पटल 14; समूर्त्तार्चनाधिकरण अध्याय 11.
3. खिलाधिकार 7/62. 4. निरुक्ताधिकार 9.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घण्टेति पञ्चपूर्वाणि यद्वा द्वादशबाहुकाम्।
अनुक्तमायुधं कल्प्यं भुजेऽन्यस्मिँश्चतुष्टये।।
द्वात्रिंशदपि वा 'हस्ताः शस्त्र मूह्यं तु चोदितम्।

पाद्मसंहिता, क्रियापाद, २२/२१-२६

नारदीयसंहिता में स्कन्द-पूजा की क्रम-विधि निर्दिष्ट है। तदानुसार अधोलिखित है-

स्कन्दयागमथो वक्ष्ये शृणुष्व मुनिपुङ्गव।
वायव्ये नैर्ऋते कोणे कुर्यात् स्कन्दालयं शुभम्।।
श्रीपत्रपुष्पसंकाशं बालरूपं चतुर्भुजम्।
शक्तिहस्तं विशेषेण बालाभरण भूषितम्।।
रुक्माथं लाञ्छितं कुर्यात् प्रसादं तु विशेषतः।
मयूरं पूर्वदिग्भागे शक्तिमाग्नेयगोचरे।।
मेधां दक्षिणपार्श्वे तु प्रज्ञां नैर्ऋतगोचरे।
द्विरदं पश्चिमे भागे वायव्ये कुक्कुटं न्यसेत्।।
उत्तरे देवसेनां तु विद्यामीशानगोचरे।
कुं कुमाराय मन्त्रोऽस्य नमोऽन्तः प्रणवादिकः।।
षठ्यां विशेषयागस्तु कर्त्तव्यस्तस्य भक्तिः।।[1]

स्कन्द प्रतिमा का स्वरूप वैखानस आगम में वर्णित है, जो निम्नवत है-

स्कन्दं पलाशपुष्पाभं षड्भुजं वा चतुर्भुजम्।
बालमौक्तिकसमायुक्तं विकचप्रीतिवाचकम्।।
देवयानीं च तत्पार्श्वे स्थाने चेन्न समाचरेत्।
आसने दक्षिणे तेन चासित्वाऽन्योन्यऽवीक्षणे।।
अर्धसाचीकृतं देव्याः तस्यार्धं भर्त्तुरिष्यते।
सर्वेषामपि देवानामासनं चैव दैविके।।
देवी श्यामनिभा तस्य देवयानी वराङ्गना।
दुहिता सा हि धर्मस्य नित्यं धर्मपरायणा।।
तस्यालये तु विधिना सुसेनं स्थापयेत् क्रमात्।
सुसेनोऽञ्जनवर्णः स्याच्छूलहस्तो गदायुधः।।

---

1. नारदीयसंहिता, 28/41-45.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाहनं हस्तिनं कुर्यान्मयूरं वा यथोचितम्।
नवहस्तमिभं कुर्यादुत्सेधः सप्तहस्तकः।।
आयामार्घ ततः शेषं नाह उदाहृतः प्रदेश
...नतो विद्याच्छिरसो मस्तकं तयोः।।
नाहेनार्घपरीणाहः पादहीनं तु गात्रयोः
गात्रार्धपरिणाहो वा पादहीनः करोर्ध्वकः।।
भूमिलम्बं तथा कुर्यात् करं वालमनुच्छितम्।
मानं नखानां तत्रैव चतुरङ्गुलमिष्यते।।
भागान्तराणां तेषां वै सर्वं बोद्धव्यमित्यथ।
तयोर्मानं ययेभस्य मानं कुर्याद् भयङ्करम्।।
इमानामेव सवषा मानमित्यमुदाहृतम्।
ऐरावतं विनाऽन्येषां नालो वर्णः प्रकीर्तितः।।[१]
अत्र शक्तिधरः कुक्कुटकेतुक फाल्गुने इत्यधिकम्।।[२]

कालिकापुराण में स्कन्द, विशाख के मूर्तिवर्णन उपलब्ध हैं।[३] विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी इनकी मूर्तियों के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है।[४] शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ मयमतम् में 'षण्मुख' प्रतिमा का स्वरूप चित्रित है।[५]

विशाख की पत्नी वैशाखिनी का स्वरूप वैखानसागम में निर्दिष्ट है-

वैशाखिनी स्वर्णनिभा शक्तिहस्ता चतुर्भुज।।
कृक्लासध्वजा रक्तवसना च गुहाधिपा।
ज्येष्ठमासे तथा देवी कृत्तिकर्क्षसमुद्भवा।।[६]

विमानार्चनकल्प में रक्तवर्णा, श्वेताम्बधरा तथा षण्मुखी वैशाखिनी को विशेष रूप से दिखाया गया है।[६] काश्यपस्य पश्चिमे चोत्तराभिमुखः पलाशपुष्पाभः षड्भुजः षण्मुखः सर्वाभरणभूषितो बालमौलियुतो देवयानीपतिर्नामाद्यक्षरबीजः शङ्खयो मयूर-ध्वजवाहनो गुहः।[८]

---

1. खिलाधिकार 15/160-170.
2. क्रियाधिकार 5/243-44.
3. कालिकापुराण 46/82-85, 60/50.
4. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 2/22/88.
5. मयमतम् 36/119-121.
6. क्रियाधिकार 5/232-233.
7. विमानार्चनकल्पपटल 20.
8. दुर्गासप्तशती 11/15.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महामुनि मरीचि प्रोक्त विमानार्चनकल्प में देवयानीपति तथा मयूरध्वजवाहन युक्त 'गुह' 'स्कन्द' को षण्मुख, सर्वाभरणभूषित बताया गया है। दुर्गासप्तशती में मोरों तथा मुर्गों से घिरी रहने वाली तथा महाशिक्त धारण करने वाली कौमारी-रूपधारिणी शक्ति का वर्णन प्राप्त होता है।[1] आगम-ग्रन्थों में स्कन्द वाहनों का स्वरूप वर्णित है। यहाँ इनके गज तथा मयूर दो वाहन पृथक् पृथक् निर्दिष्ट हैं। ऐसा लगता है कि जब योद्धा रूप में सेनाध्यक्ष होते हैं तब गजारूढ होते हैं। प्रथम गजवाहन का लक्षण इस प्रकार है-

स्याद् द्वादशकरायामो मितं करपितेस्सदा।
सतालनवहस्तः स्यादुत्सेधस्सर्वसम्मतः।।
प्रवालाभश्चतुर्दन्तः श्वेतवर्णो गजाधिपः।
दन्ताश्च युग्मसंस्थानां सुगताः शोभना मताः।।
परिणाहादिकं तेषामूर्ध्वयुक्तया समाचरेत्।।[2]
नवहस्तमितं कुर्यादुत्सेधं सप्तहस्तकम्।।
आयामार्धं ततः पादं शेषं नाहमुदाहृतम्।
प्रादेशिकं ततो विद्यात् शिरसोरस्कस्तयोः।।
नाहेनार्धपरीणाहं पादहीनं तु मात्रयो(?)
गात्रस्यार्धपरीणाहं पादहीनं करोर्ध्वगम्।
तस्मात् त्रिभागादेव स्यात् कराग्रे नाह उच्यते।
भूमिलम्बं तथा कुर्यात् करस्याग्रमनुच्छ्रितम्।।
(मानं नखानां तस्यैव चतुरङ्गुलमिष्यते।)
गात्रान्तरेषु तेषां वै सर्व बोद्धव्यमित्यतः।।
ऐरावतं विनान्येषां नीलवर्णमुदाहृतम्।।[3]

स्कन्द के द्वितीय वाहन मयूर का लक्षण अधोलिखित है-

पञ्चाक्षकाः समाख्यातास्सुन्दराः पञ्चवर्णकाः।
मयूरा ये प्रदृश्यन्ते तथा प्रकृतमानकाः।।
दिव्याश्चेदधिकं मानं देहानां च समाचरेत्।
हस्तं पादं तथायामत्रितयं तत्समं स्मृतम्।।

---

1. विमानार्चनकल्पपटल 20.
2. खिलाधिकार 15/171-173.
3. क्रियाधिकार 5/244-249.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चूडा षडङ्गुलं प्रोक्तं विस्तारः कोलकं भवेत्।
गोलकोत्सेधसौन्दर्यं वीक्ष्य कुर्यादिचक्षणः।।[१]

क्रियाधिकार को उपर्युक्त लक्षण अभीष्ट है।[२] तमिल भाषा के कवियों द्वारा मयूराधिष्ठ कुङ्कुमरक्तवर्ण सुब्रह्मण्य की तुलना नील समुद्र में उदित होने वाले सूर्य से की जाती है। इसका यह भी कारण है कि तमिल भाषी भक्त उगते सूरज को मुरुगन का ही रूप मानते हैं। रक्त और पीत वर्ण का सम्बन्ध स्कन्द से माना जाता है। आगमग्रन्थों में मूर्ति निर्माण की प्रक्रिया में ये दोनों रङ्ग परिवर्तनीय हैं। डॉ. गोपीनाथ राव का कथन है कि ये दोनों रङ्ग उदीयमान सूर्य के रङ्ग हैं। इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि सूर्य को सविता (प्रसविता) कहा जाता है। जो इनका रङ्ग है वही रङ्ग स्कन्द का भी है। इस आधार पर भी स्कन्द को सृष्टिकर्त्ता मानने में कोई आपत्ति नहीं है।[३]

भगवान् कार्त्तिकेय की उपासना विधि आगमों में, विशेषतया कुमारतन्त्र एवं गाणपत्य आगमों में प्रतिपादित है। प्रयोगसार, शारदातिलक तथा अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इनकी उपासना पद्धति में किञ्चित् अन्तर भी दिखलायी देता है। श्रीतत्त्वनिधि में भगवान् सुब्रह्मण्य के ज्ञानशक्ति सुब्रह्मण्य, स्कन्दसुब्रह्मण्य आदि १६ स्वरूपों के उदार एवं सौम्य स्वभाव का वर्णन किया गया है। प्रायः इनके ध्यान का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है।

शारदातिलक में कार्त्तिकेय का स्वरूप निम्नवत है-

सिन्दूरारुणकान्तिमिन्दुवदनं केयूरहारादिभि-
र्दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं स्वर्गस्य सौख्यप्रदम्।
वरमुद्राभयशक्तिकुक्कुटधरं रक्ताङ्गरागांशुकम्।
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां भीतिप्रणाशोद्यतम्।।[४]

अर्थात् जिनके शरीर की कान्ति सिन्दूर की भाँति लाल वर्ण की है तथा जिनका मुख चन्द्रमा के समान आह्लादक है, जिनका श्रीविग्रह हार आदि दिव्य आरभरणों से अलङ्कृत है तथा जो स्वर्गीय सुख को प्रदान करने

1. खिलाधिकार 15/177-179.
2. क्रियाधिकार 5/25628.
3. Elements of Hindu Icononography by T.A. Gopinath Rao, Vol. II, Law Printing House, Madras, 1916, p. 415.
4. शारदातिलकम् 13/121.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले हैं, जिनके हाथों में वरदमुद्रा अभयमुद्रा शक्ति और कुक्कुट सुशोभित हो रहे हैं, जिनका वस्त्र रक्तवर्ण का है तथा जो प्रणाम करने वालों के भय को दूर करने में उद्यत हैं, उन भगवान् कार्त्तिकेय का हम उपासना-वन्दना करते हैं।

ईशानशिवगुरुदेवपद्धति में सुब्रह्मण्य के विविधरूप निर्दिष्ट हैं-

षण्मुखो वैकवक्त्रो वा द्वादशाक्षभुजोगुहः।
चतुर्बाहुर्द्विवाहुर्वा रक्ताकल्पविभूषितः।
युवा कुमारो बालो वा स्कन्दो ध्येयः स्मिताननः।
पाणिभ्यां पङ्कजेऽधस्तादूर्ध्वं शक्तिं च कुक्कुटम्।
विभ्रचतुर्भुजः स्कन्दो ध्येयः पद्मासन्ने स्थित।
दक्षिणे पङ्कजं शक्तिं मातुलुङ्गं च वामतः।।
पाशं चतुर्भुजो विभ्रदेकवक्त्रो युवागुहः।
अभयं पङ्कजं शक्तिं दक्षिणे वरतोमरे।
कुलिशं षड्भुजो विभ्रदुपविष्टोऽम्बुजासने।
स्थितोऽपि षण्मुखो ध्येयस्त्वेकवक्त्रोऽथवा भवेत्।।
अभयं शक्तिशूलेषून् कुशलं चाङ्कुशं करैः।
दक्षिणे धारयंस्तद्वत् कटिस्पर्शवरप्रदम्।।[1]

गृह में गुह की प्रतिष्ठा कर उपासना करने से श्री आदि की समृद्धि होती है तथा अन्त में सभी सुख भोगकर साधक स्वर्ग को प्राप्त करता है-

नित्यपूजां गुहस्येच्छन् बिम्बं कृत्वा यथाविधि।
स्कन्ददैवत्यमन्त्रैश्च नयनोन्मीलनादिकम्।।
कृता तु कौतुकं बद्ध्वा शतमष्टोत्तरं यजेत्।
तन्मन्त्रेण समावाह्य नित्यं विधिवदर्चयेत्।।
एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य पुत्रास्तु नीरुजः।
आयुष्मन्तः श्रिया युक्ताः वर्धन्ते नात्र संशयः।
इह भुक्त्वा महाभोगान् सोऽन्ते स्वर्गमवाप्नुयात्।।[2]

---

1. ईशानगुरुदेवपद्धति 31/114-119.
2. क्रियाधिकार 15/43-46.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालीविलासतन्त्र में कार्त्तिकेय का ध्यान अधोलिखित है-

सुतप्तकनकप्रेक्षं खड्गपट्टीधरं वरम्।
सोष्णीषमस्तकं देवं मयूरवरवाहनम्।।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे वीरं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा दशधा प्रजपयेन्मुखम्।।
शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कार्त्तिकेयं यथोचितम्।
ह्रीं गुहाय कार्त्तिकेयाय सेनान्ये स्वाहयान्विता।।
चतुर्दशाक्षरी विद्या कार्त्तिकेयस्य कीर्तिता।
प्रतिमायां हृदि स्थाने दत्त्वाङ्गुष्ठं सुलोचने।
दशधा मन्त्रमुच्चार्य प्राणन्यासस्ततो भवेत्।।[१]

अंशुमद्भेदागम में सुब्रह्मण्य की मूर्ति का स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट है-

अथ वक्ष्ये विशेषेण षण्मुखस्य तु लक्षणम्।
पञ्चतालोत्तमेनैव स्कन्दं कुर्य्याद्विशेषतः।।
द्विभुजं वा चतुर्हस्तं षड्भुजं भानुहस्तकम्।
शक्तिर्बाणं च पाशं प्रसारितम्।।
सव्ये वामे तु पिच्छं च खेटकं कुक्कुटं तथा।
धनुर्दण्डं हलं चैव भानुहस्तान्यतोद्धृतम्।।
षड्भुजे त्वभयं खड्गं शक्तिर्दक्षिणपार्श्वके।
खेटकं चाक्षमाला च कुक्कुटं वामहस्तके।।
चतुर्भुजेऽभयं शक्तिर्दक्षिणे तु करद्वयम् (ये?)।
कुक्कुटं चाक्षमाला च वामहस्तोद्धृतं शुभम्।
द्विभुजे कुक्कुटं वामे शक्तिर्दक्षिणहस्तके।
अत्रान्नुक्तं तु तत्सर्वमुमास्कन्दोक्तवत्कुरु।।[२]

कुमारतन्त्र में सुब्रह्मण्य का स्वरूप अधोलिखित रूप में वर्णित है-

सिन्दूरारुणमिन्दूकान्तिवदनं केयूरहारादिभि-
र्दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं स्वर्गादिसौख्यप्रदम्।
अम्भोजाभयशक्तिकुक्कुटधरं रक्ताङ्गरागांशुकं
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां भीतिप्रणाशोद्यतम्।।

---

1. कालीविलासतन्त्रे अष्टदशपटले उद्धृत प्राणतोषिण्याम् भाग 2 काम्यकाण्डे पञ्चमपरिच्छेदे, पृ. 157.
2. अंशुमद्भेदागमे एकोनपञ्चाशपटले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यच्च-

एकवक्त्रं द्विदोर्दण्डं कटिबद्धाभयान्वितम्।
तरुणारुणसंकाशं सुब्रह्मण्यमुपास्महे।।[1]

गजवाहन-

एकाननं द्विनयनं वरकुक्कुटौ च
वामद्वये निशितशक्त्यभयद्वयं च।
बिभ्राणमीश्वरसुतं तपनायुताभं
नित्यं नमामि गजवाहनमिष्टसिद्ध्यै।।[2]

शरवणभवः-

शक्तिं घण्टां ध्वजसरसिजे कुक्कुटं पाशदण्डौ
टङ्कं बाणं वरदमभयं कार्मुकं चोद्वहन्तम्।
पीतं सौम्यं द्विदशनयनं देवसङ्घैरुपास्यं
सद्भिः पूज्यं शरवणभवं षण्मुखं भावयामि।।[3]

गोस्वामी शिवानन्द भट्ट द्वारा विरचित 'सिंहसिद्धान्तसिन्धुः' नामक ग्रन्थ तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र आगम से सम्बन्धित राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला एक उत्तम कृति है। इस कृति में निर्दिष्ट सारसंग्रह नामक ग्रन्थ से सुब्रह्मण्यम का रूप लिया गया है, जो निम्नवत् है-

सारसङ्ग्रहे-

ऋषिरग्निः समाख्यातो गायत्री छन्द उच्यते।
सुब्रह्मण्योऽस्य मन्त्रस्य देवता परिकीर्तितः।।३४०।।

पायाद्वोऽरुणाविग्रहः शशिमुखः सम्यग्दधानो भुजैः,
पद्म भीतिहर रिपुक्षयकरी शक्तिं शुभ कुक्कुटम्।
रक्तालेपन्नवस्त्रदामरुचिरो नानाविभूषान्वितः,
सुब्रह्मण्यगणाधिपः शुभकरो भक्ताघविध्वंसकः।।३४२।।

---

1. कुमारतन्त्रागमे द्वितीयपटले।
2. कुमारतन्त्रागमे द्वितीयपटले।
3. कुमारतन्त्रागमे द्वितीयपटले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय- ६

प्रतिमोपादन-द्रव्य

कुमारतन्त्र में प्रतिमा-निर्माण-विषय-प्रतिपादन के क्रम में उपादान द्रव्यों का प्रतिपादन किया गया है। सर्वप्रथम उपादान-द्रव्य के आधार पर ही प्रतिमा के दो भेद- **'शैलजं मृण्मयं बेरमचलं द्विविधं भवेत्।'**[१] शिला में रत्नविन्यास का विधान है-

वज्रं मरकतं नीलं पुष्परागं प्रवालकम्।
मौक्तिकं चैव वैदूर्यं स्फटिकञ्च महामणिम्।।[२]

लोह प्रतिमा में-

सुवर्णं रजतं ताम्रमायसं त्रपुसीसकम्।
आरकूटञ्च विदुषा देवक्तोऽहं क्रमान्नसेत्।।[३]

यहाँ यह ध्यातव्य रहे कि अन्य आगम ग्रन्थों में भी ये द्रव्य-रूप में रत्न-निर्देश मान्य हैं।[४] प्रतिमा के उपादान-द्रव्यों में शिला, रत्न तथा धातु के अतिरिक्त 'दारु' का भी परिगणन किया गया है। शूलस्थापन के सन्दर्भ में सर्वप्रथम वृक्ष-चयन का विधान है-

राजादनः सप्तवर्णः स्तम्बको रक्तचन्दनम्।
आसनं खादिरो देवदार्वेते शूलबेरयोः।।[५]

अर्थात् सप्तपर्णा, आसन, खादिर तथा देवदारु आदि दारुओं का उल्लेख है। पाञ्चरात्रागम में ग्राह्य वृक्षों की विस्तृत सूची है।[६]

वृक्ष के तीन भेद हैं- १. पुंवृक्ष, २. स्त्रीवृक्ष तथा ३. नपुंसकवृक्ष। इनके लक्षण भी निर्दिष्ट हैं। लक्षित-लक्षणों से युक्त वृक्ष को ग्रहण करके

---

1. तत्रैव, 26/58.
2. तत्रैव, 26/60-61.
3. क. कुमारतन्त्र- 26/62.
   ख. माणिक्कं पुष्परागश्च वैडूर्य नीलमेव च।
   गोमेदकं मौक्तिकच्च प्रवालं स्फटिकं तथा। तत्रैव, 26/20.
4. प्रकीर्णाधिकार- 7/13-14.
5. कुमारतन्त्र, पटल- 13/2.
6. क. पौष्करसंहिता, 40/13-3, ख. ज्ञानकाण्ड, 27.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नपुंसक वृक्ष को त्याग करने का संकेत है।[१] वृक्ष का यह विभाग-विभाजन वैखानसागम में भी स्वीकारा गया है।[२]

प्रतिमार्थ वृक्ष ग्रहण के लिए शुभाशुभ निमित्त परीक्षण का विधान भी देखते हैं। आचार्य और यजमान शुभ मुहूर्त एवं सुन्दर लग्न का शोधन करके स्वाभीष्टानुसार स्त्रीवृक्ष या पुंवृक्ष का चयन करें।

प्रतिमा-निर्माण-विधि का भी आगमशास्त्रों विशद-विवेचन है। इस क्रम में मधूच्छिष्ट क्रिया तथा प्रलम्बफलक आदि विषयों का सविस्तार निरूपण है। मृद्-मूर्त्ति के निर्माणार्थ आधारभूत शूल की आवश्यकता होती है। शूल शब्द का तात्पर्य निम्नवत है-

प्रतिमान्तःस्थदारुर्वै शूल इत्युच्यते बुधैः।
मृण्मयं कर्तुकामस्तु शूलयुक्तं समाचरेत्।
तस्माच्छूलविधानार्थं दारुसंग्रहमिष्यते।।[३]

प्रतिमान्तःस्थ दारु, स्वर्ण, रजत अथवा शिला-दण्ड को शूल कहते हैं। कुमारतन्त्र में भगवान् शिव ने स्वयं कौशिक से शूलस्थापन-उत्तमविधि का निरूपण किया है।[४] शूल के लिए चन्दनादि स्थिर दारु ग्राह्य कहे गये हैं।[५]

स्थापक की आज्ञा का आदर करते हुए विधि-विधानपूर्वक वृक्ष ग्रहण करे तथा यावन्मात्र उच्चैस्त्ववान बेर हो तावन् मात्र शूल की दीर्घता की भावना करे। शूलदण्ड का चार भाग विस्तार करके मध्य में उदर की विशालता की भावना करने का निर्देश है। अष्टस्र एवं चतुरस्रशूल का परिणाम रखे जिसमें हिक्कान्त (ग्रीवा) तक होवे। शेष अङ्गों की कल्पना पाँच भागों में बाहुपर्यन्त पूर्ण करे। वक्षदण्डादि का विस्तार पाँचवें भाग के क्रम में करें। कटिदण्डादि आयाम पञ्चांश से हीन एवं कटिदण्ड से युक्त रखें। मान-प्रमाण से युक्त प्रतिमा निर्माण करना चाहिए अन्यथा शत्रुओं की

---

1. कुमारतन्त्र पटल, 13/3-4.
2. विमानार्चनकल्प पटल- 17.
3. ज्ञानकाण्ड- 48.
4. कुमारतन्त्र पटल-13.
5. क. तत्रैव- पटल, 13/1.
   ख. पाद्मसंहिता, क्रियापाद, 13/1-20.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृद्धि होती है।[1] पाञ्चरात्रागम तथा वैखानसागम में भी शूलदण्ड स्थापन विधि पर अत्यन्त सूक्ष्मता से उल्लेख किया गया है।[2]

मूलबेर में किरीट आदि आभरणों का मान तथा आकार विधिपूर्वक वर्णित रीति का अनुपालन करते हुए शिल्पियों से करवाया जाता है। अन्यथा आभूषणों में लक्षण-हीनता के कारण धनधान्य का नाश होता है। वस्त्र के लक्षणहीन होने पर दरिद्रता, आयुधों के लक्षणहीन होने चोर और शत्रु की वृद्धि आदि कुफल भोगने होते हैं।[3]

मूलबेर पीठ की ऊँचाई तथा आकार मूर्त्ति की ऊँचाई के अनुरूप होना चाहिए। विपरीत विधान अपनाने (न्यूनाधिक्य) होने परिणाम भी भुगतना पड़ता है। प्रभा (दीपितमण्डल) तथा पीठ ठीक-ठीक वर्णित विधि, नवरत्नों का विन्यास करके पीठ पर प्रभा सहित बेर की स्थापना की जाती है।[4]

ध्रुवबेर के आय, व्यय, नक्षत्र, योनि, वार आदि की परीक्षा-विधि प्रतिपादित है। बेर की ऊँचाई को त्रिगुणित करके उसमें आठ का भाग दे, जो शेष बचे वही आय है। ऊँचाई को चतुर्गुणित करके उसमें पाँच का भाग दे, उसका शेष व्यय होता है। यदि व्यय से आय अधिक है तो शुभ है कम होना अशुभ है। ऊँचाई को अष्टगुणित करके सत्ताइस से भाग देने पर शेष को नक्षत्र कहते हैं। ऊँचाई को अष्टगुणित कर आठ से भाग देने पर शेष योनि होती है। उत्सेध को नवगुणित कर सात से भाग देने पर शेष अंशक होता है। उत्सेध को अष्टगुणित की आठ क्षय (घटाने) करने पर शेष दिन होता है। नवगुणित कर सात से विभक्त करने पर शेष वार होता है। इनके पृथक्-पृथक् फल बताए गये हैं। बेरोत्सेध को एकादशगुणी करके पन्द्रह से भाग देने पर यदि शेष बचता है सभी शुक्लपक्ष कहा जाता है। पाँच से

---

1. कुमारतन्त्र, 25/6-11.
2. क. विमानार्चनकल्प पटल, 17.
   ख. अगस्त्यसंहिता, 4/10-47.
3. क. कुमारतन्त्र-पटल, 24.
   ख. विमानार्चनकल्प पटल, 22.
4. क. कुमारतन्त्र-पटल, 24.
   ख. क्रियाधिकार, 6/31-32.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणित कर द्वादश का भाग देने पर शेष मेष राशि होती है।[१] प्रतिमा-निर्माणविधि के अन्तर्गत भगवदर्चनपयोगी पात्र आदि के निर्माण की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक निर्देश किया है। इन पात्रों में मुख्यरूप से पुष्पपात्र, आवाहनपात्र, दीपपात्र, धूपपात्र, घण्टापात्र, मयूरव्यजनदण्ड, हविष्पात्र, भेरिका, शिबिका, रथ आदि का सविस्तर मान, प्रमाण, स्वरूप, उपादान-द्रव्य तथा निर्माण-प्रक्रिया का विवरण दिया है।[२]

---

1. क. कुमारतन्त्र पटल, 24.
   ख. विमानार्चनकल्प पटल, 19.
2. कुमारतन्त्र-पटल, 35.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-७

प्रतिमा-मान

मूर्त्ति-निर्माण के लिए अपेक्षित उपादान-द्रव्यों के वर्णन के पश्चात् बेर-मान-प्रमाण (Iconometry) का विशद-विवेचन आगम-साहित्य में मिलता है। मान की तीन विधियाँ वर्णित हैं-

(१) अङ्गुलादिमान (२) मानादि विभाग तथा (३) तालमान

इन तीनों शब्दों की परिभाषा और उसकी मौलिक इकाई (Unity), उन-उन प्रमाणों के उपयोग स्थल और अवसर, तत्तत प्रतिमानों का विषय, देवलयादि में उन-उन वस्तुओं के आधार पर उनके अनुरूप सापेक्ष रूप से प्रतिमा का निर्धारण तथा प्रतिपादन प्राप्त होता है।

मूर्त्ति-माप की सबसे छोटी इकाई 'अङ्गुल' कही गयी है। अङ्गुलमान के तीन भेद- (१) मानाङ्गुल, (२) मात्राङ्गुल तथा (३) देहलब्धाङ्गुल निर्दिष्ट हैं।[१] मानाङ्गुल-माप में परमाणु या अणु सबसे छोटी अन्विति कही गयी है। परमाणु को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि गवाक्ष से भीतर कक्ष में आती हुई सूर्य की रश्मियों में दिखने वाले कणों को परमाणु अथवा लवाणु कहते हैं।[२]

खिलाधिकार में मानाङ्गुल की स्थिति अधोलिखित है-

८ अणु = १ रथरेणु	८ रथरेणु = १ केश
८ केश = १ लिक्ष	८ लिक्ष = १ यूक
८ यूक = १ यव	८ यव = १ अङ्गुल

यहाँ अणु को अप्रत्यक्ष नित्यघन अणु कहा गया है।[३]

---

1. क. कुमारतन्त्र पटल, 31/2. ख. विमानार्चनकल्प पटल, 22.
2. तत्रैव
3. खिलाधिकार, 14/3-6.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. मात्राङ्गुल

दक्षिण हस्त के मध्यमाङ्गुल के मध्य पर्व के दीर्घ का परिमाण 'मात्राङ्गुल' कहा जाता है। मात्राङ्गुल मान को उत्तम बताया गया है।[१]

३. देहलब्धाङ्गुल-लक्षण

तालगणन से विभक्त प्रतिमा के आधार पर जो अङ्गुल-मान होता है, उसे देहलब्धाङ्गुल प्रमाण कहते हैं।[२]

अङ्गुलमान का प्रयोग ब्रह्मा आदि देवताओं के प्रतिमान-कल्पन के लिए होता है।[३] मात्राङ्गुल-प्रमाण से गृह-निर्माण, शय्यासन, इध्म, स्रुक् स्रुवा आदि के पात्रों की माप होती है।[४] ध्रुवादि प्रतिमा-कल्पन में देहलब्धाङ्गुल मान का प्रयोग होता है।[५] शाखाङ्गुल मान का उपयोग अग्निकुण्डादि के निर्माणार्थ होता है।[६]

मात्राङ्गुल का ही प्रभेद शाखाङ्गुल है। यवादि मान का उपयोग गृहार्चन के लिये निर्दिष्ट है।[७]

अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी के मध्य की दूरी को प्रदेशमान कहते हैं।[८] अङ्गुष्ठ तथा मध्यमा के बीच की दूरी को तालमान की संज्ञा दी गयी है।[९] अङ्गुष्ठ तथा अनामिका के मध्य के अन्तराल को वितस्तिमान कहा गया है।[१०] अङ्गुष्ठ तथा कनिष्ठिका के बीच की दूरी को गोकर्णमान से अभिहित किया है।[११] चौबीस अङ्गुल क एक हाथ होता है, उसी को किष्कुहस्तान कहते हैं।[१२] संवृतमुष्टि को रत्निमान कहते हैं।[१३] दो यमों से अरत्निमान होता है। प्रसृत-अङ्गुल को अरत्नि कहते हैं।[१४]

---

1. विमानार्चनकल्प पटल, 22.
2. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 50.
3. क्रियाधिकार, 3/13.
4. समूर्तार्चनाधिकरण, 22/7.
5. प्रकीर्णाधिकार, 5/7.
6. (क) क्रियाधिकार, 3/15, (ख) कुमारतन्त्र, पटल-35
7. (क) यज्ञाधिकार, 19/29. (ख) तत्रैव
8. (क) विमानानकल्प, पटल 22. (ख) तत्रैव
9. (क) विमानानकल्प, पटल 22. (ख) तत्रैव
10. (क) विमानानकल्प, पटल 22. (ख) तत्रैव
11. (क) विमानार्चनकल्प पटल, 22. (ख) तत्रैव
12. क्रियाधिकार, 3/12.
13. समूर्तार्चनाधिकरण, 22/23.
14. खिलाधिकार, 14/11-12.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चार हाथ का दण्ड होता है।[१] २५ अङ्गुल का प्राजापत्य हस्तमान निर्दिष्ट है।[२] २६ अङ्गुल का धनुर्ग्रह, २७ अङ्गुल की धनुर्मुष्टि, यही क्रम दोनों अर्थात् २६ अङ्गुल का धनुर्मुष्टि तथा २७ अङ्गुल का धनुर्ग्रह भी होता है।[३] कपिञ्जलसंहिता में मान का सामान्य निर्देश प्राय: इसी तरह है।[४] शयनादि प्रतिमाओं का कल्पन वितस्तिमान से, देवालय का कल्पन प्राजापत्य हस्तमान से, प्रतिमानिर्माण धनुर्ग्रह या धनुर्मुष्टिमान से, मनुष्य अथवा ब्रह्मा का विग्रह किष्कुहस्तमान से, मनुष्य गृह, देवालय कल्पन हस्तमान से तथा ग्रामादि का कल्पन दण्डमान प्रमाण से करना चाहिए।[५]

प्रतिमा की ऊँचाई को सुनिश्चित कर दशतालादिसंख्या को द्वादश भाग में विभक्त कर उसके एक भाग को देहलब्ध अङ्गुलमान कहा जाता है।[६]

मान (Measurements) छ: प्रकार का कहा गया है। १. मान, २. प्रमाण, ३. उन्मान, ४. परिमाण, ५. उपमान तथा ६. लम्बमान।[७] यहाँ मान से तात्पर्य 'ऊर्ध्वमान' से है।[८] शरीर के पैर से लेकर सिर तक की ऊँचाई 'ऊर्ध्वमान' के नाम से अभिहित है। प्रमाण का लक्षण तिर्यङ्मान कहा गया है।[९] प्रत्येक अङ्ग के विस्तार (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई) को प्रमाण कहा गया है।[१०] उन्मान (Thickness) का अभिप्राय प्रत्येक अङ्ग की मोटाई (Diameter) से है।[११] परिधि अथवा विस्तार को परिमाण की संज्ञा दी गई है।[१२] उपमानमान को उपाङ्ग कहा गया है। पीठ, प्रभा, छत्र तथा शङ्ख-चक्रादि आयुध इसके उदाहरण हैं।[१३] लम्बमान का लक्षण सूत्रमान साहुलमान बताया गया है।[१४]

---

1. समूर्तार्चनाधिकरण, 22/23.
2. विमानार्चनकल्प, पटल 22.
3. विमानार्चनकल्प, पटल 22.
4. कपिञ्जलसंहिता, 10/60.
5. क. यज्ञाधिकार, 19/27, ख. कुमारतन्त्र, पटल-35
6. क. समूर्तार्चनाधिकरण, 22/5-6, ख. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 40.
7. विमानार्चनकल्प, पटल 22; यज्ञाधिकार 19/23.
8. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 50; अर्चनाधिकार 13; खिलाधिकार 14/13.
9. यज्ञाधिकार, 19/14.
10. खिलाधिकार, 14/13.
11. खिलाधिकार, 14/4.
12. यज्ञाधिकार, 19/15.
13. अर्चनाधिकार, 13.
14. विमानार्चनकल्प, पटल 22; अर्चनाधिकार 13.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान का पर्यायवाची शब्द आयाम, आयत तथा दीर्घ कहा गया है। प्रमाण का समानार्थक शब्द विस्तार, विस्तृति, व्यास, विपुल तथा विशाल वर्णित है। तुङ्ग, उन्नत, उत्सेध तथा उच्छ्राय उन्मान का द्योतक है। परिमाण का पर्यायवाचक शब्द निष्क्रम, निष्कृति, निर्गम तथा परिणाह है। विवर, तीव्र और अन्तर उपमान के परिचायक है।[१]

अङ्गुलमान के निरूपण के पश्चात् अब तालमान के स्वरूप पर विचार करने का यत्न होगा। तालमान एकताल से शुरू होकर दश ताल तक वर्णित है।[२] ये उत्तम, मध्यमादि भेद से पृथक्-पृथक् प्रतिपादित है।[३] किसी भी विग्रह-विशेष के मान को दश भागों में बाँटकर, उसके एक भाग को पुनः द्वादश भागों में विभक्त करने से जो एक भाग होता है, उसे अङ्गुल की संज्ञा दी गयी है। अङ्गुल का अष्टमांश यव कहा गया है। द्वादशांगुलक मान ताल के नाम से जाना जाता है। यही ताल मुख्य ताल कहा गया है। प्रस्तुत क्रम में दश ताल से विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र की मूर्ति के मान का विधान है।[४] मध्यमदशतालमान से श्रीदेवी, भूमिदेवी, उमा तथा सरस्वती की प्रतिमा बनाने का निर्देश है।[५] द्वादश आदित्य, चन्द्रमा, एकादश रुद्र तथा अष्ट वसुओं आदि की मूर्तियों का कल्पन अष्टदशतालमान में करने को कहा गया है।[६] सार्द्धनवतालमान से यक्षेश, नवग्रह की प्रतिमा का मान निर्धारित होता है।[७] खिलाधिकार का कहना है कि नवार्द्धताल का उपयोग रवि, स्कन्द तथा इन्द्र की प्रतिमा के लिए है।[८]

प्रतिमा का मान सामान्यतः विमान, द्वारमान या गर्भगृह के मान पर आधारित होता है। मूल प्रासाद की बाहरी दीवाल को दो भागों में विभक्त कर उसमें से एक भाग को पहले के दो विभागों के साथ जोड़ना चाहिए, तब उसे सत्ताईस विभागों में विभक्त करना चाहिए। इस चौड़ाई के बराबर

---

1. विमानार्ननकल्प, पटल 22.
2. खिलाधिकार, 15/142-143.
3. ज्ञानखण्ड, अध्याय 50.
4. ज्ञानखण्ड, अध्याय 50.
5. विमानार्चनकल्प पटल, 22.
6. विमानार्चनकल्प, पटल, 22-23.
7. क. विमानार्चनकल्प, पटल, 22, ख. कुमारतन्त्र, पटल-35
8. खिलाधिकार, 15/114.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवबेर की ऊँचाई कही गयी है।[१] अगर ध्रुवबेर की ऊँचाई मन्दिर की चौड़ाई (तार) के एक तिहाई हो, तो उसे सर्वोत्तम माना जाता है। ध्रुवबेर की ऊँचाई गर्भागार के चार भाग में से तीन भाग के बराबर, तीन भाग में दो के बराबर या पाँच भाग से तीन भाग के बराबर होना निर्दिष्ट है।[२] विकल्प भी वर्णित है। तदनुसार गर्भागार का आधा हिस्सा छब्बीस भागों में विभक्त कर इस परिमाण के बराबर बेर की ऊँचाई होनी चाहिए।[३] योगशयन ध्रवुबेर की ऊँचाई गर्भद्वार की ऊँचाई के एक तिहाई के बराबर होनी चाहिए।[४] ध्रुवबेर की ऊँचाई यजमान की आँख, वक्षस्थल तथा नाक के सातगुनी के बराबर होनी चाहिए।[५] यजमान के हाथ से नापी जाय। एक हस्त से आरम्भ कर छः छः अङ्गुल की वृद्धि से त्रिहस्तान्त नवधा उत्सेध वर्णित है।[६] विश्वामित्रसंहिता के अनुसार यह प्रमाण चार अङ्गुल से प्रारम्भ कर चार-चार अङ्गुल की वृद्धि से अष्टोत्तरशत अङ्गुल पर्यन्त होता है।[७] अधिष्ठानमान के अनुसार ध्रुवबेर का उत्सेध तीन प्रकार का बताया गया है।[८]

स्थानकादि ध्रुवबेर पूर्ण होना चाहिए। इसके सभी अवयव मान-उन्मान-प्रमाण की अनिवार्यता प्रतिपादित है। सभी अङ्ग-उपाङ्ग से पूर्ण प्रतिमा का निर्माण निर्दिष्ट है।[९] ध्रुवबेर का अवयव उत्तमदशतालमान के अनुसार कहा गया है।[१०] कुमारतन्त्र में विभिन्न पटलों में इन मान-प्रमाणों का निर्देशन प्राप्त होता है।[११]

---

1. विमानार्चनकल्प, पटल 22.
2. क्रियाधिकार, 6/9.
3. यज्ञाधिकार, 11/20-21.
4. अर्चनाधिकार, 8.
5. यज्ञाधिकार, 11/26-28.
6. यज्ञाधिकार, 11/24-25.
7. विश्वामित्रसंहिता, 22/31-22.
8. निरुक्ताधिकार, 13.
9. समूर्तार्चनाधिकरण, 19/20-22.
10. वासाधिकार, 4.
11. कुमारतन्त्र, पटल, 26, 27, 31, 34, 35.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-८

प्रासाद-लक्षण आलय-कल्पन तथा निर्माण

प्रतिमा-निर्माण की भाँति देवालय-निर्माण-विषय भी साक्षात् रूप से वास्तुशास्त्रीय-शिल्पशास्त्रीय विषय है। कुमारतन्त्र में प्रासाद-लक्षण विधि का वर्णन उपलब्ध है। कुमारतन्त्र में आलय के अनेक पर्याय निर्दिष्ट हैं। यथा- प्रासाद, सद्म, हर्म्य, गृह, गेह, मन्दिर, भवन तथा विमानादि[1]। कुमारतन्त्र में देवालय-निर्माण आदि विषयों का वर्णन वास्तुशास्त्रीय विषय-वर्णन के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया जा रहा है। यद्यपि कि साक्षात् सभी विषय सूक्ष्म रूप से उपलब्ध नहीं हैं फिर भी सर्वथा अभाव भी नहीं है। आवश्यकतानुसार विषय की स्पष्टता के लिए अन्य आगम-ग्रन्थों तथा वास्तुग्रन्थों की सहायता भी ली जा सकती है। प्रस्तुत-सन्दर्भ में वास्तु-प्रदेश, उसके विविध भेद, भूपरिक्षण, भूशोधन, वास्तुपद तथा वास्तुदेवता, तत्तदेवालय-स्थान बालालय कल्पनादि, प्रथमेष्टका न्यास, गर्भन्यास, आलय के भेद, आलय का स्वरूप, शिखाघट विमानतल कल्पनादि देवतादि, वर्णलेप, विमानदेवता, विभिन्न शालादि कल्पन-विचार, मण्डपादि कल्पन-स्थान तथा द्वारदेवतादि विषय प्रतिपादन।

आगम ग्रन्थों में सामान्यतः प्रासाद-कल्पनार्थ वास्तुदेश निर्देश के साथ विषय का आरम्भ होता है। वास्तुदेश का अभिप्राय यह है कि जहाँ देवालय का निर्माण होना है, उस भूमि का चुनाव करना। आलय-निर्माण के लिए अधिकृत यजमान-आचार्य का वरण करता है। यजमान लक्षण युक्त आचार्य का वरण कर आलय-निर्माण-भूमि को ग्रहण करता है। शान्तिक तथा पौष्टिक-भूमि के दो भेद हैं।[2] पाञ्चरात्रागम में भी सामान्य रूप से सिद्ध स्थान तथा असिद्ध स्थान ये दो स्थानों का उल्लेख है।[3] कुमारतन्त्र पर्वत-

---

1. कुमारतन्त्र, पटल- 31, 32.
2. शान्तिकं पौष्टिकं वा देशमाश्रित्य वृद्धिदेशं गृह्णीयात्।। ज्ञानकाण्ड, अध्याय- 4.
3. पाद्मसंहिता, क्रियापाद- 1/12-15.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिखर, नदी-तीर, वन-प्रदेश, ग्राम, नगर, पत्तन, राजधानी, वीथि, खेटक जैसे- प्रदेश-विशेष को मान्यता दी है।[१]

वास्तुदेश-परीक्षा की आवश्यकता बताते हुए कहा गया है कि वास्तु सभी सम्पन्नता का मूल है। विरुद्ध होने से ऐहिक तथा आमुष्मिक सिद्धि नहीं होती है। इसलिए पूरी तरह परीक्षण करके सभी कार्य करने चाहिए।[२]

वास्तुदेश- लक्षित देशविशेष में भूग्रहण तथा भूपरीक्षण किया जाता है। भूमिपरीक्षण-क्रम में फलानुसार उत्तमा, मध्यमा तथा कनीयसी रूप से भूमि तीन तरह की बताई गई है। परीक्षण क्रम अधोलिखित है- दण्डमात्र आयत तथा विस्तारों वाली भूमि को जानुपर्यन्त खोदते हैं, पुनः खोदी हुई मिट्टी अधिक हो जाती है तो उस भूमि को उत्तम भूमि कहते हैं। यदि मिट्टी न्यूनाधिक न होकर सम हो, तो उसे मध्यम भूमि कहते हैं।[३] उपर्युक्त परीक्षा विधि में अधिक मिट्टी वाली भूमि महती वृद्धिकारी, कम मिट्टी वाली भूमि हानिप्रद तथा सम मिट्टीवाली समानफलदायक होती है।[४] भूमिपरीक्षण की दूसरी विधि बीजवपन भी बताई गयी है। तदनुसार परीक्षणार्ह भूमि में बीज बोते हैं। यदि तीन रात्रि में बीज अंकुरित हो जाय, तो उस भूमि को ग्रहण किया जाता है, अर्थात् आलय-कल्पन के लिए ग्राह्य कहा गया है।[५] नपुंसक वृक्षों वाली, पाषाणशर्कराकीर्ण, वल्मीक, पतङ्ग-भस्म-अङ्गर-तुषक से घिरी हुई अन्त्यजाति की भूमि होती है, उसे त्याग देना चाहिए।[६]

पाञ्चरात्रागम के ग्रन्थ पाद्मसंहिता में भूमि की परीक्षा-विधि लगभग इसी तरह वर्णित है।[७]

भूपरीक्षण के पश्चात् भूमिशोधन किया जाता है। उस क्रम में वास्तु भूमि-प्रवेश के पूर्व काल पर विस्तृत विचार किया गया है। शुभ मास, पक्ष,

---

1.क. कुमारमन्त्र पटल, 26/18-20.
ख. पाञ्चरात्रागम, नारदीयसंहिता, 14/2-4.
2. ज्ञानकाण्ड, अध्याय- 11.
3. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 12.
4.क. विमानार्चनकल्प, पटल 2.
ख. समूर्तार्चनाधिकरण, 2/14-15.
5. प्रकीर्णाधिकार, 1/27.
6. विमानार्चनकल्प, पटल 2.
7. क्रियापाद, 1/32-39.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और मुहूर्त्त में भूमि का शोध करना चाहिए। इसके लिए उत्तम वर्ष में माघ, आषाढ तथा भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष से कृष्णपक्ष के बीच रेवती, रोहिणी, पुष्य, स्वाति, धनिष्ठा, श्रवण, शतभिषा, चित्रा एवं अश्विनी- इन सौम्य नक्षत्रों का होना अच्छा माना जाता है। शुभ दिन बृहस्पति, शुक्र, रवि, चन्द्र एवं मंगलवार को नन्दा आदि तिथियों में रिक्त को छोड़कर अष्टमी तथा षष्ठी तिथि विशेष रूप से तथा वैधृति, विष्कम्भ, वज्र, परिघ, व्याघात, शूल अतिगण्ड और व्यतिपात योग में भूमिशोधन शुभ कहा गया है।[१] चैत्र मास भूमि-शोधन के लिए निषिद्ध माना गया है।[२]

भूमिपरीक्षण गमन के समय शुभ शकुन का विचार देखते हैं। तदनुसार रास्ते में बैल, घोड़ा, गाय, ध्वज, छत्र, चामर, चक्र, अंकुश, पायस (खीर), देवताकृति, हल्दी, गोबर, चावल, तिल, जौ आदि अन्न, अलंकृत वेश्या एवं युवती दर्शन शुभकारी कहा गया है।[३]

वास्तुभूमि में प्रवेश करने से पूर्व बलि-प्रदान किया जाता है। यह बलि-विधान यजमान के साथ आचार्य वास्तुभूमि की सीमा पर करता है। इस अवसर पर यजमान अपने गृह से आचार्य के साथ अपने पत्नी-परिवार सहित मांगलिक बाजों के साथ भूमि की ओर प्रस्थान करता है, वहाँ रात्रि में यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रह तथा नागादि के लिए बलि-प्रदान किया जाता है।[४] यह भूतानुज्ञाना क्रिया भूतादि को वास्तुभूमि से अन्यत्र जाने की प्रेरणा के लिए की जाती है। ऐसी ही प्रक्रिया पाञ्चरात्रिकों के यहाँ भी देखी जा सकती है।[५]

भूमिशोधन-क्रम में कर्षण एक विशिष्ट कर्म है। प्रकीर्णाधिकार में आलय-निर्माण हेतु कर्षणादि-प्रतिष्ठान्त कार्य के काल पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।[६] भूकर्षण के अवसर पर वर्ण के अनुसार बैल की व्यवस्था दी गई है। ब्राह्मण वर्ण के लिए श्वेत वृषभों, क्षत्रिय के लिए

---

1. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 13.
2. यज्ञाधिकार, 2/4.
3. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 13.
4. क. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 13, ख. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 22.
5. विष्णुसंहिता 12/41-42.
6. प्रकीर्णाधिकार, 1/5-24.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्तवर्ण वृषभों, वैश्य के लिए हरित (पीला) तथा शूद्र के लिए आसित वृषभों का प्रयोग विहित है। वृषभों को खूब सजाकर जल-भोजनादि से तृप्त किया जाता है।[१] यहाँ ब्राह्मणादि वर्णों के अनुरूप हल तथा युगकाष्ठ निम्नवत् हैं-

ब्राह्मण के लिए बाँस, क्षत्रिय के लिए चम्पक, वैश्य के लिए पुन्नाग तथा शूद्र के लिए उदुम्बर।[२] शूद्र के लिए बबूर का भी निर्देश है।[३] मुनि मरीचि का मानना है कि ब्राह्मण का लाङ्गल शिरीष का होना चाहिए।[४] हलादि के मान का भी निर्देश किया गया है।[५] वर्ण के अनुसार पाश का भी वर्णन उपलब्ध है। अनेक पाञ्चारात्रागम ग्रन्थों में कर्षण-विषय वर्णित है।[६]

कर्षणक्रिया निर्दिष्ट वर्णों के वृषभों को पूजित कर भूमि के पश्चिम भाग से पूर्वाभिमुख होकर सम्पादित की जाती है। इस समय प्रणव मन्त्र को मनसा स्मरण कर, आत्मरक्षार्थ 'विष्णुर्मा रक्षतु' उच्चारण करना चाहिए। कर्षण-क्रिया विभिन्न दिशाओं से चार बार सम्पन्न करने को कहा गया है।[७] कर्षण के समय निमित्तदर्शन परीक्षण आवश्यक है।

भूमिकर्षण के अनन्तर उस भूमि को सम करके उसमें शालि, व्रीहि तथा तिलादि बीजों का आवपन करते हैं। जब उसमें फल आता है तब पशुओं के द्वारा उसे चराते हैं। इस क्रिया को गोचारण कहते हैं।[८] यह क्रिया प्रायः भूमि के संशोधन के साथ उसकी पवित्रता के लिए की जाती है।

परीक्षित भूमि को सब तरफ से ताल मात्र खोदते हैं। भूमिखनन के समय यदि रत्नादि दिखाई पड़े, तो उसे आलय के लिए शुभ समृद्धिदायक कहा गया है। यहाँ खातहोम विधान वर्णित है। यह होम मूलमन्त्र के द्वारा

---

1. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 22.
2. खिलाधिकार, 3/4-5.
3. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 22.
4. विमानार्चनकल्प, पटल 3.
5.क. खिलाधिकार 3/15-8, ख. समूर्तार्चनाधिकरण 3/6-8
6.क. खिलाधिकार 3/21, ख. अगस्त्यसंहिता 1/14-22.
7. क. खिलाधिकार 3/34, 26-32.
8. क. खिलाधिकार, 3/64-59. ख. श्रीप्रश्नसंहिता, 5/26-29.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुषसूक्त से गुग्गुल, तिल, नीवार, के द्वारा सम्पादित होता है। यदि अशुभ संकेत होवे, तो शान्ति का विधान भी करना अपेक्षित है। इसके पश्चात् खात पूर्ण करने का अवसर आता है। खात में निक्षिप्त शालि के उपर सूत्रवेष्टित कुम्भों की स्थापना होती है। ये कुम्भ लोहे अथवा मिट्टी के हो सकते हैं। इन कुम्भों में सौवर्णमयी आधारशक्त्यादि तत्तद् वस्तुओं को निक्षेप कर दिक्पालादि का पूजन किया जाता है।[१]

इस तरह सुसंस्कृत भूमि के मध्य भाग में वास्तुपूजा का विधान है। वास्तुपूजा प्रायः वास्तुपुरुष की आराधना के लिए की जाती है।[२] देवालय-कल्पन के लिए कृष्ट तथा शोधित भूमि में आलय-कल्पन से पूर्व वास्तुपद देवताओं का अर्चन आवश्यक होता है। वास्तुपद-कल्पन-क्रम के साथ उन पदों में विद्यमान् देवताओं का निर्देश अनेक आगम-ग्रन्थों में निरुपित है।[३] निर्दिष्ट पदों में मध्यस्थ नौ पद ब्रह्मपद कहे गये हैं। पद-कल्पनादि का प्रकार इस प्रकार है- चतुरस्त्र सर को परस्पर नौ रेखाओं में विभक्त करते हैं, स्वभावतः ९×९=८१ पद कल्पित होते हैं। इन पदों में स्थित नव पदों को ब्रह्मपद कहते हैं। ब्रह्म के स्थान से पूर्वोत्तर दिशास्थ पद में- (१) ईशान, (२) पर्जन्य, (३) जय, (४) महेन्द्र, (५) आदित्य, (६) सत्य (७) शृशम, (भृगु) तथा अन्तरिक्ष के स्थान प्रतिपादित हैं। दक्षिण दिशा के पदों में क्रमशः- (१) अग्नि, (२) उष्मांशु, (३) पूषा, (४) वितथ, (५) गृहक्षत, (६) यम, (७) गन्धर्व तथा (८) भृङ्गराज का स्थान वर्णित है। दक्षिण के पश्चात् पश्चिम दिशा में स्थित पदों में देवताओं का वर्णन उपलब्ध होता है- (१) ऋषि, (२) निर्ऋति, (३) दौवारिक, (४) सुग्रीव, (५) पुष्पदन्त, (६) सरित्पति, (७) असुर तथा (८) शोषण। उत्तर दिशा में पदस्थ देवों के नाम- (१) योग, (२) जवन, (३) नाग, (४) मुख्य (५) भल्लाट, (६) सोम, (७) अर्गल तथा (८) अदिति हैं। जहाँ तक ब्रह्मपद के बाह्य तथा अन्तिम पदों के मध्यस्थ पदों के देवताओं का प्रश्न है, वे निम्नवत् हैं- अग्निकोणस्थ पदों तथा ब्रह्मपद के मध्य विद्यमान पदों में सविता तथा

1.क. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 23. ख. विमानार्चनकल्प, पटल 4.
2. प्रकीर्णाधिकार, 2/19-20.
3.क. विमानार्चनकल्प, पटल 3, ख. प्रकीर्णाधिकार, 2/6-15.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सावित्र का स्थान निर्धारित है। नैर्ऋत तथा ब्रह्मपद के मध्य विद्यमान पदों में इन्द्र तथा इन्द्रानुज का स्थान घोषित है। वायव्य तथा ब्रह्मपद के बीच में रुद्र तथा अरुद्र की स्थिति बताई गयी है। ईशानकोण में पद तथा ब्रह्मपद के मध्य विद्यमान पदों में आप तथा आपवत्स का स्थान निर्दिष्ट है। अत्रि-मुनि प्रोक्त समूर्तार्चनाधिकरण और भृगु ने खिलाधिकार अपने प्रतिज्ञावाक्य में चौसठ पदों का उल्लेख करते हैं[१] किन्तु गणना में इक्यासी पदों की पुष्टि होती है। ब्रह्मपद के चतुर्दिक देवताओं के पद निर्देश के पश्चात् ब्रह्मपद की अपेक्षा बाह्यभाग के कोणों में स्थित देवताओं के अधोलिखित रूप से स्थान-निर्देश दिखते हैं- ईशानादि कोणों में क्रमशः चरकी, देवतारि (विदारी), पूतना तथा पापराक्षसी अवस्थित हैं।[२] शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में भी प्रायः इसी तरह का विवेचन देखा जा सकता है।[३]

उपर्युक्त वास्तुपद-कल्पन तथा तत्तत पदों में स्थित देवताओं के वर्णन के अनन्तर वास्तुपुरुष की स्थिति निम्नवत् हैं- वास्तुपुरुष का शिर ईशानकोण में तथा दोनों पैर नैर्ऋतकोण में होते हैं। स्वभावतः वाम तथा दक्षिण क्रमशः वायव्य तथा अग्निकोण में होते हैं। वास्तुपुरुष के कण्ठ में आप, हृदय में आपवत्स, नाभि-स्थान में ब्रह्मपद तथा कुक्षि में सविता की स्थिति बतायी गयी है। इस तरह अधोमुख स्थित वास्तुपुरुष के विभिन्न अङ्ग तत्तद् वास्तुपद-देव के स्थान पर स्थित हैं।[४] इस प्रकार वास्तुदेवों और वास्तुपुरुष का प्रोक्षण, पुष्प, गन्ध, धूप, दीप से पूजन कर कल्पन अग्रिम प्रक्रिया आरम्भ करते हैं।[५] कुमारतन्त्र में उपर्युक्त विषयों का वर्णन न्यूनाधिक्य रूप से उपलब्ध है तथा वास्तुपूजा को सर्वशोभनकारिणी कहा गया है।[६]

वास्तुदेवादि के आराधन के पश्चात् आलय-कल्पन से पूर्व बालालय-कल्पन का विधान वर्णित है। आलयनिर्माण की दो विधियाँ निर्दिष्ट हैं-

---

1. विमानार्चनकल्प पटल-31.
2.क. पाद्मसंहिता क्रियापाद, 10/136-141. ख. ज्ञानकाण्ड, 18.
3. इन्साक्लोपीडिया आफ हिन्दू आर्किटेक्चर (मानसार सीरिज), वाल्यूम 7, पृ. 65.
4. प्रकीर्णाधिकार, 2/16-19.
5. तत्रैव, 2/19-20.
6. कुमारतन्त्र, पटल-16.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामृत तथा हारक।[१] सामृत का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि बालालय में अर्चनकार्य विज्ञ जनों को सम्पादित करना चाहिए। राजा, ब्राह्मण तथा अमात्यजन सामृत के अधिकारी है, अर्थात् बालालय अवश्य बनवावें। यदि ऐसा नहीं करते, तो विपदग्रस्त होंगे, उनकी मृत्यु भी हो सकती है।[२] कुमारतन्त्र ने बालालय की चर्चा प्रासाद-लक्षण विधि-अध्याय में नहीं की है, फिर भी जिर्णोद्धार के क्रम में बालालय विषय की चर्चा की है। स्थावर बिम्ब अथवा देवालय के जिर्ण होने पर तरुणालय कल्पन का अवसर आता है। मूलालय के पूर्व तरुणालय का निर्माण करना चाहिए ऐसा नहीं करने पर बालकों का विनाश हो जाता है। अस्तु सर्वप्रयत्न कर तरुणालय बनाना चाहिए।[३] अशक्त तथा दरिद्र लोग भक्तिमात्र साधन का सहारा लेकर हारकविधि अपना सकते हैं, अर्थात् बिना बालालय-निर्माण के देवालय निर्माण कर सकते हैं।[४] तरुणालय या बालालय का तात्पर्य वह देव-मन्दिर है, जिसमें देवालय-कल्पना की अवधि तक बालबिम्ब की स्थापना कर उसका अर्चन आदि करते हैं। ज्ञानकाण्ड में तरुणालयविधि के अवसर पर यह कहा गया है कि स्थावर बिम्ब की प्रतिष्ठा कर उसी में देवाराधन करते हैं।[५] स्पष्ट है कि जब तक मुख्य देवालय का निर्माण नहीं हो जाता, तब तक उस आलय स्थित बिम्ब की शक्ति तरुणालयस्थ बालबिम्ब में संक्रमित कर दी जाती है। पुनः संस्कार के अनन्तर प्रक्षिप्त शक्ति को प्रधान बिम्ब में स्थानान्तरित कर पूर्ववत् आराधना सम्पादित होती है। यहाँ पर यह भी निर्दिष्ट है कि देवालय के निर्माण में स्वेद, रुधिर आदि दर्शनयोग की शान्ति करती चाहिए। ऐसा न करने पर महान् दोष होता है।[६] मूलालय के ऐशान्य तथा ऐन्द्र अथवा सोम भाग में तथा वायव्य या पश्चिम में बालालय बनाना चाहिए।[७]

---

1. खिलाधिकार, 2/75, वासाधिकार, 1.
2. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 21
3. कुमारतन्त्र, पटल, 22/2-4.
4. समूर्तार्चनाधिकरण, 4/37
5. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 25.
6. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 25.
7. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 23, विमानार्चकल्प, पटल 4, कुमारतन्त्र पटल, 22.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ तक बालालय के स्वरूप-विधान का प्रश्न है, उस सम्बन्ध में कहा गया है कि कम से कम पाँच हाथ की ऊँचाई का बालालय होना चाहिए। इसके विकल्प भी प्रतिपादित हैं।[१] कहा गया है कि नवहस्त का उत्तम, सप्तहस्त का मध्यम तथा पाँच हाथ उच्छ्राय वाला अधम की श्रेणी का होता है।[२] बालालय का स्वरूप आयताकार निर्दिष्ट है। कुमारतन्त्र का कहना है कि बालालय, मूलप्रासाद से अधिक विस्तार का न हो।[३]

तरुणालय के लिए उपादानद्रव्य इस प्रकार मान्य है- मिट्टी या दारु का बना हुआ बालालय सर्वोत्तम स्वीकारा गया है।[४] इष्टका तथा शिला आदि द्रव्यों का पूरी तरह निषेध है।[५] बालालय को तृणादि से आच्छादन करने को कहा गया है।[६] यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पाञ्चरात्रागम में शिला तथा इष्टका का बना हुआ बालालय उत्तम तथा मध्यम माना गया है। मिट्टी तथा दारु का अधम तथा हीन कहा गया है।[७] जो सर्वथा किसी भी दशा में उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मुख्य देवालय का निर्माण हो जाने के पश्चात् बालालय के बने रहने का कोई औचित्य नहीं रह जाता। ज्ञानकाण्ड में स्पष्ट निर्देश है कि बालालय मात्र छः मास के लिए अथवा जब तक मुख्य देवालय का निर्माण न हो जाय, तभी तक के लिए विहित है। उसके पश्चात् बालालय-बिम्ब की शक्ति का ध्रुवबेर में स्थानान्तरण कर पूर्ववत् देवराधन सम्पादित करते हैं।[८] अस्तु, वैखासन आगम सम्मत बालालय की कल्पना पूर्णतया समुचित है।

बालबिम्ब के उपादान-द्रव्यों की चर्चा करते हुए स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा दारु प्रतिमा को संस्थापित करने को कहा गया है।[९] कुमारतन्त्र प्रस्तुत

---

1. निरुक्ताधिकार 5.
2. निरुक्ताधिकार 5.
3. कुमारतन्त्र, पटल-22/7.
4. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 23.
5. यज्ञाधकार, 5/6-8.
6. विमानार्चकल्प, पटल 4.
7. पाद्मसंहिता, क्रियापाद 4/25-8; विष्णुसंहिता 13/77-78, श्रीप्रश्नसंहिता 6/3-6
8. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 25.
9. यज्ञाधिकार, 5/6-8.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग में लौह, शिला या दारु तथा मृद् मूर्त्ति की भी मान्यता दी है।[१] प्रतिमा प्रमाणमान को प्रतिपादित करते हुए सप्ताङ्गुल, नवाङ्गुल, एकादशाङ्गुल अथवा त्रयोदशाङ्गुल देवी सहित या रहित लक्षण युक्त प्रतिमा को संस्थापित करने का उल्लेख है।[२] बालालय में अर्चनार्थ बालबेर प्रतिष्ठा की सम्पूर्ण विधि निर्दिष्ट है।[३] अन्त में बालालय में नित्यार्चन का निर्देश है।[४] साथ ही प्रतिष्ठान्त उत्सवाचरण का विधान भी विहित है।[५]

आगम ग्रन्थों में नागर, द्राविड तथा वेसर भेद से सामान्यतः तीन तरह के देवालयों का स्वरूप उल्लिखित है।[६] नागर को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि यह शुरु से स्तूपिकान्त चतुरस्र होता है।[७] वेसर विमान वृत्तस्वरूप अथवा प्रस्तरान्त समचतुरस्र तथा उसके ऊपर वृत्त ग्रीवावाला कहा गया है।[८] महर्षि भृगुप्रोक्त प्रकीर्णाधिकार तथा यज्ञाधिकार में कण्ठप्रभृति वृत्तवाले को वेसर की संज्ञा प्रदान की गई है।[९] मरीचि ने द्राविड देवालय का स्वरूप स्पष्ट नहीं बतलाया है। शुरु से स्तूपिकान्त चतुरस्र तथा ग्रीवा एवं शिखर अष्टास्र आकृति को द्राविड विमान की मान्यता विद्वानों ने दी है।[१०] कुमारतन्त्र ने भी नागर, द्राविड तथा वेसर- इन तीन शैलियों में प्रासाद निर्माण का निर्देश किया है।[११] नागर को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जो चतुरस्र तथा साधनास्र हो उसे नागर कहते हैं। अष्टास्र तथा षडस्र अथवा उसके आयाम (विस्तार) से युक्त द्राविड की संज्ञा दी गयी है। व्योम सदृश (आकाश) ऊँचाईवाला विमान (प्रासाद) अधिवेसर बताया गया है।[१२]

---

1. कुमारतन्त्र, 22/9.
2. विमानार्चकल्प, पटल 4.
3. विमानार्चकल्प, पटल 4, 5.
4. यज्ञाधिकार, 5/6-8.
5. क्रियाधिकार, 3/2-3.
6. विमानार्चकल्प, पटल 4.
7. खुरादिस्थापिकान्तं चतुरस्रं नागरम्- विमानार्चकल्प, पटल 7.
8. विमानार्चकल्प, पटल 7.
9. कण्ठप्रभृति वृत्तं यद्वेसरं तत्प्रचक्षते- प्रकीर्णाधिकार, 5/11.
10. वैखानसागमकोश, भाग 1, पृष्ठ 245.
11. कुमारतन्त्र 31/41.
12. तत्रैव, 31/42.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्नतलों के आधार पर देवकालय के निम्नलिखित भाग कहे गये हैं- १. अधिष्ठान, २. पाद, ३. प्रस्तर, ४. वेदिका, ५. शिखर तथा ६. स्तूप।[१] पाञ्चरात्रागम के पाद्मसंहिता में १. अधिष्ठान, २. चरण, ३. प्रस्तर, ४. कूट, ५. शाला, ६. संस्थान, ७. पञ्जर, ८. प्रस्तर, ९. वेदी, १०. ग्रीवा, ११. शिखर तथा १२. स्तूपि अङ्ग कहे गये हैं।[२]

मुख्यतः तल तथा अधिष्ठान-भेद से देवालयों की संख्या अनन्त कही गयी है। कुमारतन्त्र में निर्दिष्ट प्रासाद अधोलिखित हैं-

१. वैजयन्तक, २. श्रीभोग, ३. श्रीविशाल, ४. स्वस्तिबन्ध, ५. श्रीकर, ६. हस्तिपीठ, ७. स्कन्दकूट तथा ८. केसर- ये एकतल के प्रासाद बताए गये हैं। द्वितल के नाम- १. स्वस्तिक, २. कैलास, ३. पर्वत, ४. स्वस्तिबन्ध, ५. कल्याण, ६. विष्णुकान्त, ७. सुमङ्गल, ८. गम्यार, ९. हस्तपृष्ठ, १०. ईश्वरकान्त, ११. वृत्त तथा १२. कौबेरकान्त। इस प्रकार यहाँ द्वादश प्रासादों का केवल नाम निर्देश देखते हैं। ईशानदेव ने ९६ के विमानों का उल्लेख किया है, ईशानदेव ने यहाँ इनकी परिभाषा भी दी है।[३] दण्डी ने ललितालय गृहनिर्माण की योग्यता की प्रशंसा के सम्बन्ध में ९६ विमानों की चर्चा की है। राजधर्मकौस्तुभ में कुछ विमानों का विस्तृत वर्णन है। ये विमान ईश्वर तथा राजा दोनों के समान हैं। इनको प्रासाद कहते हैं।[४] पाञ्चरात्रागम-ग्रन्थों ने विमान के विविध भेदों का वर्णन किया है, जिनमें पाद्मसंहिता[५], भार्गवतन्त्रम्[६] तथा श्रीप्रश्नसंहिता[७] का उल्लेख किया जा सकता है। मुख्यतः तल तथा अधिष्ठान भेद से देवालयों की संख्या विस्तृत है। द्वितल से लेकर अष्टतलान्त तक विविध तलों वाले देवालयों के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है।[८]

---

1. तत्रैव, 31/43-45.
2. पाद्मसंहिता, क्रियापाद, अध्याय 4.
3. ईशानदेवपद्धति, भाग 3.
4. समूर्तार्चनाधिकरण, भूमिका पृ. 11.
5. पाद्मसंहिता, क्रियापाद, 8/1-97.
6. भार्गवतन्त्रम्, 3/19-20.
7. श्रीप्रश्नसंहिता, 9/4-38.
8. विमानार्चनकल्प, पटल 10.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवालय-कल्पन-क्रम में आद्येष्टका-न्यास एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अतः कुमारतन्त्र के साथ आगम के अनेक ग्रन्थों ने इस विषय का विवेचन किया है।[१] सच तो यह है कि आद्येष्टका के आधार पर ही तो सम्पूर्ण देवालय की स्थिति निर्भर करती है। अस्तु, अत्यन्त सावधानी के साथ आगम-ग्रन्थों ने आद्येष्टकान्यास-विधि का वर्णन किया है। सर्वप्रथम प्रथमेष्टका काल का विचार किया गया है। जिसमें फाल्गुन, चैत्र, वैशाख मास उत्तम, श्रावण, आषाढ, कार्तिक मास मध्यम तथा शेष मास अधम कहे गये हैं।[२] कुमारतन्त्र ने दक्षिणायन के सुन्दर लग्न और शुभ मुहूर्त्त की स्वीकृति दी है।[३] प्रथम इष्टका न्यास से सम्बद्ध इष्टका दो तरह की निर्दिष्ट है- (१) शिला तथा (२) मृण्मयी।[४] इष्टका बनाने की विधि विस्तार से प्रतिपादित है।[५] इष्टका न्यास के बाद गर्भ-प्रक्षेपण का अवसर आता है, इसे गर्भन्यास भी कहा जाता है। गर्भन्यास के लिए सामान्य रूप से भूमि, पट्टिका, मस्तक, प्राकार, गोपुर, महानस तथा स्नपनालय स्थान स्वीकार किये गये हैं।[६] गर्भन्यास की विधि का निरुपण करते हुए कहा गया है कि प्रासाद, मण्डप, प्राकार, गोपुर तथा परिवारालय इन सभी स्थलों पर प्रथमेष्टिका-स्थापन को गर्भन्यास कहते हैं।[७] गर्भन्यास की विधि का निरुपण करते हुए कहा गया है कि प्रासाद, मण्डप, प्राकार, गोपुर तथा परिवारालय इन सभी स्थानों पर प्रथमेष्टिका स्थापन को गर्भन्यास कहते हैं।[८] गर्भन्यासार्थ आवश्यक वस्तुओं में अनेक स्थलों से लाई गई मृत्तिका का उल्लेख प्राप्त होता है यथा- समुद्र, नदी, पर्वत, तीर्थदेश, ह्रद, कुलीरवास, वल्मीक आदि।[९] अधोलिखित वस्तुओं के मूल भी ग्राह्य हैं- (१) उत्पलमूल, (२) पद्म-मूल, (३) कौमुद-

---

1.क. कुमारतन्त्र, 30. ख. ज्ञानकाण्ड, 29.
ग. विमानार्चनकल्प, पटल 6.
2. विमानार्चनकल्प, पटल 6.
3. कुमारतन्त्र, 30/11.
4.क. प्रकीर्णाधिकार, 4/1-2. ख. खिलाधिकार, 4/1-2.
5. क. ज्ञानकाण्ड, अध्याय 29 ख. कुमारतन्त्र, 30/4.
6. खिलाधिकार, 5.
7. कुमारतन्त्र, पटल 29/1-2
8. कुमारतन्त्र, पटल 29/1-2.
9. समूर्तार्चनाधिकरण, 10/1-3, 10/8-9.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूल, (४) नीलोत्पल-मूला।[१] गर्भन्यासार्थ द्रव्यों में अधोलिखित रत्नों का परिगणन भी किया गया है- (१) वज्र, (२) मौक्तिक, (३) स्फटिक, (४) वैडूर्य, (५) शङ्ख, (६) पुष्पक, (७) चन्द्रमणि, (८) नील, (९) ब्रह्ममणि[२]। (१) मनःशिला, (२) हरिताल, (३) श्यामसीसक, (४) सौराष्ट्र, (५) रोचन, (६) गैरिक तथा (७) पारद- ये धातुएँ गर्भन्यासार्थ निर्दिष्ट हैं। इन सबके अतिरिक्त अधोनिर्दिष्ट वस्तुएँ गर्भभाजन में प्रक्षेपार्थ विहित हैं- (१) सुवर्ण, (२) रजत, (३) ताम्र, (४) पित्तल, (५) आयस, (६) लोहा।[३] इन गर्भप्रक्षेपार्ह वस्तुओं का परिगणन प्रायः इसी तरह पाञ्चरात्रागम ग्रन्थों में भी उपलब्ध है।[४] गर्भन्यास का समय रात्रिकाल बताया गया है। फेलाकल्पन[५] (गर्भभाजनवाचक), फेलाशोधन[६], फेला-द्रव्यनिक्षेप[७] की क्रिया सम्पन्न की जाती है। गर्भन्यासाङ्ग होम सम्पादन के साथ पूर्वोक्त द्रव्यों से युक्त गर्भभाजन को गर्त में रखकर गर्त को परिप्लुत किया जाता है। कुमारतन्त्र में प्रायः गर्भन्यास विधि उपर्युक्रम से निर्दिष्ट है।[८]

गर्भन्यास के पश्चात् प्रासाद-कल्पन का अवसर आता है। समूर्तार्चनाधिकरण के तीन हस्त परिमाण से आरम्भ कर पचास हाथ परिमाणोच्छ्रित एकभूमि (एकतल) से द्वादश तल-पर्यन्त आलय कल्पन का निर्देश किया है।[९] पाद्मसंहिता में एक भूमि से द्वादश भूमि-पर्यन्त, आलय-कल्पन का विधान कहा है।[१०] इस क्रम में शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत, सार्वकामिक एक तल अधिष्ठानाद्युत्सेध, मान, विमान का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है।[११] द्वितल आदि अष्टतलान्त विविध तलों वाले देवालयों का स्वरूप निरूपित

---

1. विमानार्चनकल्प, पटल 13.
2. समूर्तार्चनाधिकरण, 10/5-6.
3. विमानार्चनकल्प, पटल 13.
4. समूर्तार्चनाधिकरण, 10/35.
5. विमानार्चनकल्प, पटल 13.
6. निरुक्ताधिकार 6.
7. समूर्तार्चनाधिकरण, 10/17-31.
8. कुमारतन्त्र, पटल 29.
9. समूर्तार्चनाधिकरण, 7/1-5, 11-14.
10. पाद्मसंहिता, क्रियापाद, 6/46-47.
11.क. विमानार्चनकल्प, पटल 9, ख. कुमारतन्त्र, 31/9-10.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है।[१] गर्भगृह, मुखमण्डप, कवाट, प्रस्तर, ग्रीवा, शिखर, नासिका तथा स्तूपी आदि विमानांगों का विस्तार से स्वरूप उल्लिखित है।[२]

आलय में अन्ततः शिखाघट-स्थापन तथा उसके लिए स्तूपी-विन्यास का अवसर आता है, किन्तु उससे भी पहले मूर्ध्नेष्टकान्यास किया जाता है। एतावता पहले यहाँ मूर्ध्नेष्टकान्यास का सामान्य विचार उसके पश्चात् स्तूपीन्यासपूर्वक शिखाघट की चर्चा होगी। विमानार्चनकल्प में मूर्धेष्टका के स्थान पर समाप्तेष्टका शब्द का प्रयोग हुआ है।[३] वस्तुतः यह अन्वर्थ कहा जा सकता है। इस इष्टकान्यास के अनन्तर प्रायः आलय के ऊपर इष्टका का कोई भी कार्य शेष नहीं रह जाता। शुभ मुहूर्त्त में शिलाओं या इष्टकाओं का स्नपन तथा पूजन कर विमान के उपरिस्थल में इष्टकाओं का आरोपण होता है।[४] कुमारतन्त्र में मूर्ध्नेष्टका विधि विशद रूप से वर्णित है।[५]

मूर्ध्नेष्टकान्यास के पश्चात् स्तूपी-कील करते हैं। इसका उपादानद्रव्य स्वर्ण, रजत या ताम्र का होना कहा गया है। लोह द्रव्य भी स्वीकार्य है।[६] स्तूपी-कीलवृत्त, चतुरस्र अथवा शिखराकार रूप में बनाये जा सकते हैं। काश्यपशिल्पशास्त्र तथा शिल्परत्न में इसके लिए स्तूपी-दण्ड संज्ञा दी गयी है।[७] स्तूपी-कीलों का अधिवासन किया जाता है। उसके पश्चात् सुधमालिप्य कर विष्णुसूक्त के द्वारा स्तूपीकील की स्थापना की जाती है। उसके अनन्तर शिल्पियों को बुलाकर सुधा के द्वारा स्तूपी को दृढ करते हैं।[८] कुमार तन्त्र मान-प्रमाण के स्तूपिदण्ड का प्रायः इसी तरह निरूपण है।[९]

स्तूपीन्यास के पश्चात् शिलाघट-स्थापन का विधान किया जाता है। विमान के ऊपर शिखाघट का स्वरूप आलय के अनुसार किया जाता है। वृत्त तथा चतुरस्र आलय पर समवृत्त शिखाघट, वृत्तायत आलय पर

1. विमानार्चनकल्प, पटल 10.
2. विमानार्चनकल्प, पटल 9, 13.
3. विमानार्चनकल्प, पटल 13.
4. विमानार्चनकल्प, पटल 13.
5. कुमारतन्त्र, पटल 32.
6. विमानार्चनकल्प, पटल 9, 13.
7. क. काश्यपशिल्पशास्त्र, अध्याय 42;
   ख. शिल्परत्न, अध्याय 34.
8. विमानार्चनकल्प, पटल 1.
9. कुमारतन्त्र, 32/5-9.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुरस्त्र शिखाघट निर्मित होते हैं। स्तूपीन्यास के बाद तुरन्त शिखाघट की स्थापना करनी चाहिये। शिखाघट नाना रत्नों तथा लोहों से परिपूरित होते हैं। घट का अग्र मुकुलाकार या दीपकार होना चाहिए। उसके नीचे सुमनोहर कमल का कल्पन निर्दिष्ट है।[१]

देवालय निर्माण की प्रक्रिया के साथ-साथ आलय के प्रथम, द्वितीय आदि आवरणों के विधान के वर्णन को भी देखा जा सकता है।[२] आलय के निर्माण तथा प्राकार-कल्पन का उद्देश्य देवालय की रक्षा, मंगलार्थ एवं शोभा के लिए बताया गया है।[३] देवालय के अन्तर्गत बनाये जाने वाले मण्डपों की निर्माण-प्रक्रिया का भी निर्देश किया गया है।[४] ये मण्डप तीन प्रकार के कहे गये हैं। श्रीवत्स मण्डप उत्तम, स्वस्तिक मण्डप को मध्यम तथा पद्मक मण्डप को अधम बताया गया है।[५] महर्षि भृगु ने इन मण्डपों का लक्षण भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है।[६] महामण्डप का निरूपण विमानार्चनकल्प में निर्दिष्ट है।[७] सामान्य रूप से प्राकारों को गोपुर-युक्त होना कहा गया है। व्यावहारिक रूप से भी दक्षिण भारत के देवालयों में यह देखा जा सकता है। प्राय: सभी अच्छे मन्दिरों के प्राकार गोपुर-युक्त होते हैं। विमानार्चनकल्प में सात प्राकारों का निर्देश है।[८] यहाँ प्राकार-गोपुरों पर देवताओं की मूर्तियों का कल्पन भी निर्दिष्ट हैं। द्वारशोभा, द्वारशाला, द्वारप्रासाद, द्वारहर्म्य तथा द्वारगोपुर- ये गोपुर के पाँच पर्याय हैं।[९] द्वारशोभादि मान का विस्तार से वर्णन है।[१०] कुमारतन्त्र में प्राकार-लक्षणविधि प्राय: उपर्युक्त क्रम से प्रतिपादित है।[११]

आलय-कल्पन-प्रकार-वर्णन के प्रसंग में कुछ ग्रन्थों ने विमानतलों में कल्पनीय देवताओं का स्थान-निर्देशपूर्वक किया है। ये देवता विमान के

1. पाद्मसंहिता, क्रियापाद 9/30-40.
2. समूर्तार्चनाधिकरण, 9/12-13, 25-26.
3. विमानार्चनकल्प, पटल 11.
4. प्रकीर्णाधिकार 11.
5. खिलाधिकार 7/65-66.
6. खिलाधिकार 7/65-66.
7. विमानार्चनकल्प, पटल 11.
8. विमानार्चनकल्प, पटल 11.
9. यज्ञाधिकार 10/1-2.
10. विमानार्चनकल्प, पटल 11.
11. कुमारतन्त्र, पटल-33.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन-उन तलों एवं उन-उन दिशाओं में कल्पित होते हैं, इसका विशद विवेचन अनेक ग्रन्थों में निरूपित है।[1]

आलय के पूर्व दिक् में पुष्पावास, आग्नेय कोण में महानस तथा महानस से भी अग्निकोण में चुल्ली का स्थान बताया गया है। चुल्ली के पश्चिम में नित्याग्नि-आयतन का स्थान तथा नैर्ऋत कोण में धान्यागार का स्थान कहा गया है। पश्चिम भाग में हेतिभवन तथा वायव्य कोण में कुसूल के लिए स्थान मान्य हैं। आलय के उत्तर में नर्तनस्थान तथा ईशानकोण में जल का स्थान स्वीकृत है। ये सब प्रथमावरण या द्वितीयावराण या तृतीयावरण में स्वेच्छानुसार बनाए जाने चाहिए। इसके इतर निम्नलिखित रूप से स्थानों का निर्देश किया गया है-

स्थान		आवास
द्वितीय, तृतीयावरण	ईशानकोण	कूपस्थान, यागशाला
	उत्तर दिशा	तडाग (तालाब)
	आग्नेय कोण	गोष्ठागार
	नैर्ऋत्य	नृत्तमण्डप, अस्त्रशाल
		वाहनावास
	पश्चिम आग्नेय	विप्रभोजनस्थान[2]

प्रकृत अध्याय में कुमार देवालय से सम्बद्ध जिन विषयों का विवेचन किया गया है, वे आगम ग्रन्थों में प्राय: समान रूप से ही प्रतिपादित हैं। इनका कहीं कुछ विस्तार, तो कहीं कुछ संक्षेप अवश्य है। यहाँ निर्दिष्ट विषयों का आधार शिल्पशास्त्र ही कहा जा सकता है, क्योंकि शिल्पशास्त्र के ग्रन्थों में जिस प्रकार नगरविन्यासादि की योजना के क्रम में देवालय-कल्पन का प्रतिपादन हुआ है, सामान्य रूप से आगमशास्त्र में भी उसी तरह वर्णित है। चूँकि आगमशास्त्र में देवालय विषय की प्रधानता के कारण कुछ सूक्ष्मता अवश्य है, पर मौलिक रूप से ये सारे विषय वास्तुशास्त्रीय ही हैं।

---

1. विमानार्चनकल्प, पटल 12, कुमारतन्त्र, पटल-34.
2. क. यज्ञाधिकार 10/9;
   ख. खिलाधिकार 7/119-20;
   कुमारतन्त्र, पटल-34/27-31.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय- ९

भगवत्-प्रतिष्ठा

कुमारतन्त्र ने मूर्ति-निर्माण, आलप-कल्पन आदि विषयों के विवेचन के पश्चात् विधिवत् कल्पित देवालय में सलक्षण मूर्त्ति की स्थापना तथा उसकी प्रतिष्ठा का साङ्गोपाङ्ग वर्णन भी किया है। कुमारतन्त्र में अनेक अध्यायों में प्रतिमा तथा आलयादि-प्रतिष्ठा विषय का विवेचन भी देखते हैं। इस क्रम में जीर्णोद्धारादि विषय की चर्चा निर्दिष्ट है। इस सन्दर्भ में प्रतिमा-स्थापनादि से सम्बद्ध कुछ अन्यान्य विषय भी वर्णित हैं। इस प्रतिष्ठा-प्रसंग में प्रतिमा-प्रतिष्ठा के साथ-साथ देवालय से सम्बद्ध अनेक वस्तुओं की प्रतिष्ठा का भी विधान किया गया है।

प्रतिष्ठा शब्द प्रति उपसर्गपूर्वक 'स्था गतिनिवृत्तौ' धातु से निष्पन्न होता है। एक परिभाषा इसे स्पष्ट करेगा- आचार्यवेदान्तदेशिकाचार्य जी का कहना है- "सर्वव्यापकस्य परमात्मनः समूर्त्तौ भावनामन्त्रैश्च यो विशेषः सन्निधिः क्रियते, सा प्रतिष्ठेत्युच्यते बुधैः।" वस्तुतः विविध उपादान-द्रव्यों से कल्पित प्रतिमा की प्रतिष्ठा के बिना कोई महत्त्व नहीं है। बिना प्रतिष्ठा के प्रतिमा देवत्व को नहीं प्राप्त कर सकती। प्रतिमा में देवात्वापादान के लिए प्रतिष्ठा'कर्म अवश्यमेव अत्यन्त अपेक्षित है। अतः इस प्रतिष्ठा क्रम में यहाँ प्रतिष्ठा के अङ्गभूत विषयों, जैसे- प्रतिष्ठा के लिए प्रशस्तकाल, यागशालादि विषय, बिम्ब-संस्कार, नेत्रोन्मीलन, भगवत्स्नपन तथा आराधन, अर्चाभिमानी जीव की मूर्त्ति में संयोजन, शक्ति-संयोजन, कलशस्थापन, अग्निप्रतिष्ठापन, प्रतिसरबन्ध, शयनाधिवास, रत्नन्यास, कलान्यास, जलाधिवास तथा उत्सवादि।[१] इस प्रकार प्रतिष्ठा प्रक्रियापूर्ण करने पर स्कन्द लोक की प्राप्ति होती है।

---

1. क. विमानार्चनकल्प पटल- 33.
   ख. कुमारतन्त्र, पटल- 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 26, 27.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अजितमहातन्त्र में स्कन्दस्थापन (कार्त्तिकेय) विधि का वर्णन सम्यक्तया किया गया है। भगवान् शङ्कर ने स्वयं कहा है कि- मेरे ही पराक्रम के सदृश अर्थात् मेरे ही स्वरूप में स्कन्द की उत्पत्ति होगी। वह स्कन्द काल के वश में भी नहीं आते हैं। वह स्कन्द जीवों को सभी प्रकार के पापों से संरक्षित करते हैं। इसीलिये उनका नाम स्कन्द पड़ा है। जिसके पास कुत्सित भाव रहता है, वैसे लोगों को स्कन्ददेव हनन करते हैं। उनका रक्षण देवताओं के सेनों करती हैं।[२] स्कन्द के मन्त्रों को जाप करने से चतुर्वर्ग के फल की प्राप्ति होगी। स्कन्द को प्रसन करने के लिये स्कन्दगायत्री अतीव प्रसिद्ध है **''सुब्रह्मण्याय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात् इति।**[३] इसी गायत्री से उनका प्रतिष्ठान करना चाहिए। स्कन्दलिङ्ग का स्थापन गाँवों में या शिवालयादि स्थानों में करना चाहिए। उस स्थान के चारों ओर गोमयादि से पोतना चाहिए, साथ ही उसमें कुशादि की भी स्थापना होनी चाहिए। उसका मधु, दुग्धादि सुवर्ण के पात्र में रखकर स्थान करायें। पुनः उसको दूर्वा आदि से पूजन करें। अर्थात् उस स्कन्दलिङ्ग को धृत में स्नान करना चाहिए वह अग्निमन्त्र का उच्चारण करते हुये। गायत्रीमन्त्र के द्वारा एवं पञ्चामृत के द्वारा स्कन्दलिङ्ग समाराधन करना चाहिये। उस लिङ्ग को गाँव के दक्षिण दिशा में स्थापित करना चाहिए। उस लिङ्ग को गाँव के दक्षिण दिशा में स्थापित करना चाहिए। उस लिङ्ग को समीप के जलाशय में ले जाकर पूर्वोक्त विधि के द्वारा जलाधिकार करना चाहिये। जलाधिवास के अनन्तर उस स्कन्दलिङ्ग को अच्छे से अर्थात् शुद्ध वस्त्र से पोंछना चाहिए। फिर सुन्दर सुवर्णादि द्वारा निर्मित स्थान पर पूर्व की ओर शिर लगाकर सुलाना चाहिए। उस स्कन्दलिङ्ग के समीप में कलश को स्थापित करना चाहिए और अत्यन्त सुन्दर पञ्चरत्नों से युक्त, सूत्रादि द्वारा परिवेष्ठित करके उसको सुसज्जित करना चाहिए। उसके बाद उस स्कन्दलिङ्ग को गन्धादि अक्षतों से अच्छे से सम्पूर्ण दिशाओं छिड़कते हुये अर्चन करना चाहिए। बाद में पुष्पादि से अर्चन करें, साथ में और सवविधि से भी कराना चाहिए।

---

1. कुमारतन्त्र पटल- 23.
2. अजितमहातन्त्रम्, पटल-50, श्लोक 2-8.
3. तत्रैव, 50/2-13.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस स्कन्दलिङ्ग के समीप हवनकुण्ड का निर्माण संस्कारपूर्वक करना चाहिए। उस कुण्ड में हवन या तो सौ बार कराये, या तो उसका आधा कराना चाहिये, वह भी मूलमन्त्रों के साथ। "शतमर्धं तदर्धं वा होम द्रव्यं च सर्वकम्। सर्वत्रैव समिद्धोमं मूलमन्त्रेण कारयेत्।।" हवन में अनेन प्रकार के समिधाओं से आहुति देनी चाहिये। उसमें पलाश, पिपल, बरगद आदि के भी समिधा होनी चाहिए। हवनकाल में गायत्री का जप भी आवश्यक है। उसके मन्त्रोच्चारणपूर्वक कलशों का स्पर्श करते हुये प्रातःकाल में स्नान करके, प्रतिमा स्थापित करने वाले (देवालय में) जाकर प्रदक्षिणापूर्वक, स्कन्द गायत्री का उच्चारण करते हुये, उस मण्डप के बीचों बीच (मध्यभाग) में पुण्याहवाचनपूर्वक पाँच नैष्ठिक ब्राह्मणों द्वारा उस स्कन्द प्रतिमा को स्थापित किया जाता है। उसके प्रतिमा पर अनेक प्रकार के आभूषण द्वारा सुसज्जित किया जाता है और उस प्रतिमा के चारों ओर कलश स्थापित किया जाता है। विशेषकर आठ कलशों को स्थापित किया जाता है। तदनन्तर प्रत्येक अक्षरों से अर्थात् क से लेकर ज्ञ पर्यन्तों से स्कन्दलिङ्ग के सम्पूर्ण अङ्गों को न्यास द्वारा पूजन करना चाहिए। कहा है- **तवर्गं कुक्षिप्रदेशे तु कूटं च हृदये न्यसेत्। तारं सर्वत्रमप्यस्य स्कन्दगायत्रिमुच्चरन्।।** फिर उस स्कन्दलिङ्ग के चारों ओर भूमि पर अर्थात् वेदि के ऊपर मन्त्रों के समुच्चारणपूर्वक सम्पूर्ण जीवों को भी स्थापना करें। इस प्रकार से जो स्कन्दलिङ्ग का स्थापना करके पूजन करता है तो पुत्रार्थी को पुत्र, विजय चाहने वालों को जय, विद्यार्थी को विद्या और मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष मिलता है।[१]

---

1. अजितमहातन्त्रम्, सम्पादकौ- प्रो. एन.आर. भट्ट तथा जीन फिलिओजात, प्रकाशित इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र तथा मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, नई दिल्ली, सन् 2005 ई., पटल-50.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-१०

उत्सव

आगमशास्त्र ने 'सव' का अर्थ यज्ञ बताया है। यज्ञ से भी उद्गत अर्थात् उत्कृष्ट होने के कारण भगवदाराधन-रूप इस क्रिया-विशेष को उत्सव कहते हैं। उत्सव के द्वारा लोक में शान्ति और पुष्टि होती है।[१] कुमारतन्त्र में उत्सव को सर्वभूतसुखप्रद, सर्वलोकसुख-पुण्यप्रद, सदा-विजय देने वाला, सर्वशान्तिकर, सर्वशत्रुक्षयकारी तथा भुक्ति-मुक्तिप्रदायक कहा गया है।[२]

कुमारतन्त्र में भगवत्-प्रतिमा-प्रतिष्ठा-सम्पादन क्रम के अन्त में ततङ्गभूत उत्सवाचरण का विधान-निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त भी वर्ष में अनेक बार अनेक प्रकार के भगवदाराधन परक उत्सवाचरण का स्वरूप कुमारतन्त्र में वर्णित है। 'उत्सव' विषय इस आगम के महत्त्वपूर्ण विषयों में अन्यतम है। कुमारतन्त्र के त्रयोदशपटल में लगभग चार सौ श्लोकों में स्कन्दोत्सवविधि का साङ्गोपाङ्ग निरूपण है।[१] प्रस्तुत क्रम में उत्सव-शब्दार्थ, उसका काल, उत्सवाङ्ग, अग्निकार्य, उत्सव-रात्रदेवता, उत्सव-बिम्बोपयोग, उत्सवबलि, उत्सव-क्रम में नित्याराधन, प्रतिसरबन्ध, तीर्थोत्सव क्रम, स्नपन, भगवदाराधन, तीर्थयात्रा तथा पुष्पयागादि विषयों का विवेचन प्राप्त होता है।

उत्सव सामान्य रूप से तीन तरह के होते हैं- १. मासोत्सव, २. महोत्सव तथा ३. भक्त्योत्सव।[३] एक मास तक चलने वाला उत्सव मासोत्सव है। तीन, पाँच, सप्ताह, नवाह तथा द्वादश दिनों तक चलने वाला उत्सव महोत्सव कहा गया है। भक्तों के पुण्य दिनों पर आयोजित उत्सव भक्त्योत्सव के नाम से अभिहित है। यह उत्सव बलिहीन होता है।[४] उपर्युक्त तीन तरह के उत्सव के अतिरिक्तत महोत्सव के छः भेद- (१) पैतृक-

1. क. वैखानसागम-समूर्त्तार्चनाधिकरण, 54/2-3.
   ख. पाञ्चरात्रागम-नारदीयसंहिता, 18/1-2.
2. कुमारतन्त्र पटल, 13/1-30
3. तत्रैव, 13/4-5.
4. तत्रैव, 13/5-7.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादशाह, (२) नवाह-सौख्य, (३) सप्ताह-श्रीकर, (४) पञ्चाह-भौतिक, (५) सात्त्विक-त्र्याह, (६) एकाह-शिव के नाम से निर्दिष्ट है।[१]

कृष्णपक्ष के षष्ठी तिथि को सभी मासों में गुहोत्सव किया जाना चाहिए। राजा के जन्मदिन, या अभिषेक आदि अवसरों पर गुह का उत्सव मनाना चाहिए।

उत्सवाचरण के लिए अधो निर्दिष्ट काल कहे गये हैं- मार्गशीर्ष माघमास में फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, उत्तराषोढ, श्रवणात्तक उत्तम तिथियों में उत्सवाचरण विहित है। ग्राम का जन्मदिन, राजा का जन्मदिन, विजय अभियान के दिन उत्सव-विधान करना चाहिए।[२]

उत्सव ध्वजारोहणपूर्वक होना चाहिए। सर्वप्रथम-अङ्कुरकर्म, द्वितीय-शिखियाग, तृतीय- भेरीताडन, चतुर्थ ध्वजारोहरण, पञ्चम-यागकर्म, षष्ठ-अस्त्रयाग, सप्तम-बलिदान, अष्टम-यानक्रम, नवम-परिवेष, नीराजन-दशम, एकादश-कौतुक, द्वादश-तीर्थ संग्रहण, त्रयोदश-चूर्णकार, तीर्थ-चतुर्दश, पञ्चदश-ध्वजारोहण तथा षोडश-स्पनप- ये षोडश भेद उत्सव के कहे गये हैं।[३]

ध्वजारोहणपूर्वक, भेरीताडन एवं अङ्कुरारोपण- ये त्रिविध उत्सव विधान है। उत्सव के रात्री में बीज का निर्वाण करना चाहिए। अङ्कुरार्पणपूर्वक ध्वजा का आरोहण कर्म करने के अनन्तर अवभृथ्य का सायंकाल में आचरण करना चाहिए। रात्री, सायं, दिवस, या प्रातः से शास्त्र का निर्णय है इनमें केवल मन्त्र का भेद होता है क्रिया भेद नहीं होता है। शिवोत्सव प्रकार से सभी क्रियाओं को पूर्ण करना चाहिए। यक्ष्यभोज्यादि पदार्थों के द्वारा श्री विघ्नेश का पूजनविधि सम्पन्न कर लेना चाहिए। जो कर्म अङ्कुर रहित होता है वह निष्फल कर्म ही माना गया है। ध्वजाङ्कुर प्रथम एवं उत्सवाङ्कुर द्वितीय कर्म के रूप में परिगणित कर्म है। तीर्थाङ्कुर को तृतीय कर्म कहा गया है। ध्वजाङ्कुर को ध्वजा का अङ्ग माना गया है, ध्वजा से पूर्व तर्पण करना चाहिए।

नवाह, पञ्चाह सप्ताह वा त्र्याह, इन्हीं दिनों में अङ्कुर कर्म अधिक शुभ होता है। सात हाथ का अधम नव हाथ का मध्यम दश हाथ का उत्तम ध्वज पट्ट माना गया है। ब्राह्मण का ध्वज स्वेत क्षत्रिय के लिए रक्त ध्वज, पीत

---

1. कुमारतन्त्र, 13/8-10.
2. तत्रैव, 13/14-20.
3. तत्रैव, 13/25-29.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्वज वैश्य के लिए किन्तु स्वेत वस्त्रध्वज सभी के लिए उपयुक्त है। ध्वजा के ऊपर मयूर का चित्र बनाए, गज या कुक्कुट भी सम्भव है। पट के मध्य में सभी शुभ लक्षणों से युक्त पद्मपीठ को चित्रित करें। इस प्रकार चित्रित ध्वज को लिखें। ध्वजदण्ड के लिए वेणु, पलाश, यग्तोध, चन्दन, खादिरार्जुन बिल्व, पूरा नारिकेल साल, ताल इनमें से किसी भी वृक्ष के द्वारा दण्ड का निर्माण करें। सत्ताइस हाथ का प्रमाण वाला दण्ड उत्तम माना गया है। मध्यम चौबीस एवं १२ अङ्गुल का ध्वज अधम माना गया है। पूर्वाह्न में विप्रवृद्धिः मध्याह्न में राजवृद्धि रात्री में विट्शूद्रवृद्धि को देने वाला ध्वजारोहण कर्म होता है। गजमुक्ता पद्म सप्तधान्य आदि का प्रक्षेप करने के उपरान्त दण्ड की स्थापना करें। इसके अनन्तर बालू से पूर्ण करें। प्रासाद के अभिमुख स्कन्ध वलय दक्षिण में होवे। उसके मूल में वेदिका का निर्माण करें जो चतुर्ताल प्रमाण वाला हो। इटों से या शिलाओं से ऊचे कमलाकृति की कल्पना करें। इस प्रकार से स्कन्द देव की पूजा करने के अनन्तर उत्सव को देव को विज्ञापित कर प्रासाद के अग्र भाग में रम्य मण्डप की कल्पना करें। मण्डप का गोमय से उल्लेपन कर्म का सम्पादन करें।

मण्डप का संस्कार करके पुण्याहवाचन करना चाहिए। तीन प्रकार से स्थण्डिल का निर्माण करना चाहिए जगद् भूव इति मन्त्र के द्वारा तीनों स्थण्डिलों का प्रेक्षण करना चाहिए। पञ्चगण्य के द्वारा प्रेक्षण करके त्रिपादूर्ध्वेति मन्त्रेण न्यासादि क्रिया सम्पन्न करें।

जलाधिवासन कर्म का विधानार्पण के साथ अर्धनाडिका के द्वारा करें। पूर्ववत शयन करके स्थण्डिल के अग्र में देवता का सन्निधान में सम्पन्न करें।

पवित्र दर्भों को फैलाकर ध्वजा को उसी पर सुलाना कहा गया है। मध्यम स्थण्डिल पर मयूर कुम्भ की स्थापना करके अर्चना करें। मयूरासन की अर्चना करने के उपरान्त मूर्ति की पूजा करें, पुनः मयूर का आवाहन करने के अनन्तर ध्यान स्मरण आदि क्रिया करें।

"नीलकण्ठाय विद्महे, चित्रयक्षाय धीमहि तन्नो मयूरः प्रचोदयात्"- इस मयूरगायत्री का पाठ करें। उसी के आगे स्थण्डिल का निर्माण करें जो कि हस्तमात्र प्रमाणवाला हो। अग्निकार्य को पूर्ण करने के लिए शिवाग्नि को प्रज्वलित करें। इसके बाद मयूर को पूजित कर के मूलमन्त्र के द्वारा समिदाज्य आह्वान करते हुये लाजा आदि का वपन करें। व्याहृति सहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हवनीय पदार्थों के द्वारा हवन करें, जयादि, अभ्यधान का राष्ट्रमृत का क्रमपूर्वक प्रयोग करें। धूपदीपादि का दान करके भस्म से रक्षा विधान किया जाता है।

वसिमन्त्र से बलिदान करने के उपरान्त क्षेत्रपाल के निमित्त बलि के क्षय करें। ध्वजा के समीप में ही षट्कर्णिकाओं से युक्त पद्मालेखन करें। प्रत्येक दल का तण्डुल एवं तिल के द्वारा विभूषित करें। मध्य में इन्द्र का एवं दक्षिण में विष्णु का बायीं ओर ब्रह्मा का क्रमिक रूप में अर्चन करें। अस्त्रराज का अलंकार करके इच्छा ज्ञान क्रिया शक्ति के रूप में पुनः अर्चना करें।

उर्ध्वपत्र में इन्द्र का मध्यपत्र में माधव भगवान विष्णु का तथा अधः पत्र में विधाता (ब्रह्मा) का पूजन करें। उसी क्रम में पार्वती, सरस्वती एवं महालक्ष्मी का भी पूजन करें। घट के मुख में महासेन वल्लीसेना का पार्श्वमात्र में तथा दण्ड के अग्रभाग में गणनाथ का दण्डाग्र में गणनाथ के अनन्तर मध्य में भास्कर का दण्ड के मूल में सुमित्रेशं मयूर का पीठ के मध्य में स्थापन करें। अष्टशक्ति, वसुन्धरा आदि की पूजा करने के अनन्तर मयूरमन्त्र का उच्चारण करके त्र्यम्बक मन्त्र के द्वारा एक बार तोयक्षेपण करें। इदं विष्णु इस मन्त्र के द्वारा दो बार गुरुताडन करें। पुनः ब्रह्मण ज्ञानं इस मन्त्र के द्वारा तीन बार ताडन करें। शिवदीक्षा से विशुद्ध आत्मा वाला पुरुष ही स्कन्ध पर भेरी को आरोपित करे। शिवादि सभी देवताओं को, इन्द्रादि लोकपालों को, तैतीस कोटि देवताओं को, समुद्रों को, पर्वतों को, नागों को, पाताल लोक स्थित महान सर्पों को, ऋषियों को इन सभी को बुलाकर पूजा अर्चना करें। तत्पश्चात् पुट को ताडित करें, तदनन्तर सिंहनाद की गर्जना इसके बाद पञ्चम वाद्य तथा झम्पट का घोष करें। धूपदीप से युक्त घण्टा का नाद ये सभी कार्य ध्वजोत्सव के अवसर पर करना चाहिए। एक द्रोण अथवा आधा चावल को पकावें जिससे बली दी जाती है। ब्रह्मादि से ईशानपर्यन्त सभी के निमित्त बलि का विधान करें।

बलिदान के अवसान में ताल नृत्त गीत आदि के द्वारा मंगलमय कालक्षेप करें। इस प्रकार पूजन कर लेने के अनन्तर अस्त्ररज्जु के द्वारा ध्वजपट्ट का बनधन करे उसमें छोटे घण्टे को भी लटका दे रक्तमाला आदि को भी बांधे। पुनः पुण्याहवाचन करें, जल के द्वारा वेदिका का अभ्युक्षण करें। अनन्त कूर्म आदि देवताओं का कोण में आवाहन करें। इस प्रकार स्वामी कार्त्तिकेय का पूजन करके उत्सव विज्ञापित करें। विधिवत सम्पादित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्सव सुमुहूर्त एवं सुलग्न में जो सर्ववाद्य समन्वित होवे। मयूरताल गजताल आदि के द्वारा ध्वजा का मयूर मूलमन्त्र उच्चारण करते हुए शीघ्र ही आरोपित करें। शुद्धोदक का पिण्ड अष्टदिशाओं वाले दलों में, अथवा नवपिण्डों को दिशाओं और विदिशाओं में निवेदित करके अचर्ना करें।

उन पिण्डों के प्राशन करने से पुत्र की कामना वाली नारी स्नानादि से निवृत्त होकर प्रथम पिण्ड का प्राशन करें तो पुत्रवती होती है। जो विधवा हो अथवा कन्या हो वह ध्वजपिण्ड का प्राशन कभी न करें। रोगी के रोग का विनाश होता है। प्राणी के सम्पूर्ण पाय का दाय होता है। जहाँ पर ध्वज की यष्टि होती है। वहा सम्पूर्ण वृद्धि की प्राप्ति होती है तथा अकाल मृत्यु एवं दुर्भिक्ष का भय सदा के लिए समाप्त हो जाता है। कृतघ्न, ब्रह्महत्यारा, गौ को मारने वाला ध्वज के दर्शन मात्र से दोषरहित हो जाता है।

वेदिका निर्माण की विधि का वर्णन के क्रम में सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित वेदिका निर्माण की विधि वर्णित है। इसके बाद कुण्ड निर्माण विधि है। चतुरस्त भगाकार अर्धचन्द्र एवं त्रिकोण वृत्त षडस्त्रक पद्माकार अट्ठाश्र इतने कुण्डों का वर्णन किया गया है। कुण्डों के लक्षणों से युक्त सभी कुण्डों का निर्माण करना चाहिए। नवकुण्डों वाला उत्तम होता है। पाँच कुण्डों वाला मध्यम तथा एक कुण्ड वाला अधम याग होता है। पुण्याहवाचन करने के उपरान्त नैऋत्य एवं इशान कोण में वास्तु होम का विधान करना चाहिए। पर्यग्निकरण करके वेदी के ऊपर आठ द्रोण चावल के द्वारा चावलों को छीटकर या फैलाकर स्थण्डिल का निर्माण करें। चावल व तिल के द्वारा कमल की आकृति बनाकर उसके बीच में स्कन्दकुम्भ को डाल से भरकर सूत्रों से वेष्टित करके नवरत्नों से प्रधान स्वर्णमय वर्धकी में स्थापित करें। फिर आठों दिशाओं में स्कन्द के विभिन्न नाम मन्त्रों का पूजन करें। सूत्र से वेष्टित करके सविधि वस्त्रादि सहित पूजन को पूर्ण करें, एवं स्वर्णकुम्भो को पूर्वादिषु क्रम से प्रत्येक दिशाओं में स्थापित करें। वेदि के बाह्य भाग में समीपस्थ सम्मूख ही रखकर यथा विधि वज्र शक्ति दण्ड खड्ग पाश तथा अङ्कुश गदा त्रिशूल पद्म एवं चक्र इन दश आयुधों की रक्षा की काना से दशो दिशाओं में पूजा करें। दशों आयुधों की पूजा करके "हं फड्" इस स्वनाम मन्त्र के द्वारा हे शक्र = इन्द्र सावधान होकर याग के अन्त में भगवान स्कन्द की आज्ञा से अपनी दिशा में शान्ति के निमित्त स्थिर रहे "ऐसा वचन कहे।" पुनः पञ्चभूतों की पूजा करें। कुण्डों की विधि पूरी हो जाने पर सभी कुण्डों में होम कर्म का सम्पादन करें। होम सामग्री में समिधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज्य चरन्लाजा अपूप, गुलक, मधु, तिल, सर्पिष आदि पदार्थों को ग्रहण करें- पलाश, दूर्वा, खैर, कुश, अश्वत्थ = पीपल-गुलर, वट एवं अकवन इन्हीं को समिधा कहा गया है। मूलमन्त्र के द्वारा आहुतियाँ प्रदान करें। सक्तु आदि मन्त्रों के द्वारा क्रमेण सभी समिधाओं का दान करें। सभी द्रव्यों को हव्यवाह के द्वारा होम करे जयादि के निमित्त राष्ट्रभृत का हवन करें। आचार्य के दक्षिण भाग के तीन मण्डलों की कल्पना करें। प्रथम मण्डल में इन्द्रादि देवताओं के निमित्त बलिदान करें। द्वितीय मण्डल में अष्टभागों के लिए बलि का दान करें। तृतीय मण्डल में आदित्यों के लिए। अग्नि को प्रदीप्त करके हविदान करें जो कि गुह कुमारस्कन्द के निमित्त हो। हवन करते समय सदा भेरी एवं घण्टा की ध्वनि होनी चाहिए। इसी प्रकार अस्त्रराज का आगे करके सभी कर्मों का आचरण करना चाहिए एवं तीर्थ पवित्र दिवसों में सायं एवं प्रातः हवन करना चाहिए। होम के अन्त में ध्वजदेव के लिए नैवेद्य दान करें गजादि परिवारों के लिए भी हवन का दान करें। इन्द्रादि देवताओं के लिए एवं विष्णु के निमित्त महापीठ पर बलिदान करें। इसके अनन्तर वास्तुदेव के निमित्त, अनन्तादुपदंश पसिपात्र का त्याग करें। बलिबेर की गन्धाक्षतपूष्प के द्वारा यथाविधि पूजन करें। पञ्चायुधों को सिर से धारण करें, पूर्वाहरण में अन्नलिङ्गं मध्याह्न में पुष्पलिङ्ग सायं में अक्षतलिङ्ग इस प्रकार निकाल का विशेष महत्त्व है। गुह के आगे स्थण्डिल की रचना कर ले, जो षट् तन्तुओं से युक्त हो। नूतन वस्त्र से वेष्टित करके षट्सूत्रों को लगाकर स्थण्डिल का कार्य पूर्ण करें। पुनः पुष्प धूप ताम्बूलादि द्वारा पूर्ण पूजन प्रक्रिया सम्पन्न करें। इस प्रकार सर्वशक्ति सम्पन्न श्री स्कन्द की पूजा करने से पद-पद पर अश्वमेध के तुल्य फल प्राप्त होता है। लोकप्रदक्षिणा पाँच प्रकार का नृत्त तथा वाद्य समूहों के साथ प्रदक्षिण करनी चाहिए। नर्तकों के दल के साथ गायक को साथ में लेकर परिक्रमा करनी चाहिए। पाद्य आचमन अर्घ्य के द्वारा गुहदेव की पूजा करनी चाहिए। आरती आदि सम्पूर्ण पूजन सम्बन्धी क्रियाओं को पूर्ण करने के अनन्तर दर्पण आदि दिखाकर छत्र चमर और व्यंजन से सेवा करें। नित्य ही याग होम करना आवश्यक कर्म होता है। विचक्षण विद्वान को पूर्वोक्त विधि से अग्निकार्य, होमकार्य सम्पन्न करना चाहिए। मूल मन्त्र के द्वारा पूर्णाहुति, एवं परिषेचन का आरण करना होता है। पुनः तत्तत निमित्तो से बलिदान करना होता है। विघ्नेश्वर- चतुर्वक्त्र ब्रह्मा भूत गन्धर्व आदि के लिए एवं इन्द्रादि, देवताओं, ऋषियों, विष्णु, असुर, शिव इन सभी दिनाधिप एकादिक्रम से कहे गए। इन सभी के लिए तन्नाममन्त्रों से लड्डू आदि प्रिय पदार्थ समर्पित करें। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार सभी प्राणियों को सुख देने वाला वलि विधान सम्पादन करके पाद प्रछालन करें। पुनः याग स्थान में प्रवेश करके चन्दन कुङ्कुम आदि पदार्थों को देव के लिए अर्पित करें। शुद्ध पायस अन्न आदि का निर्माण कर उसे भी अर्पित करें। पूजन विधि पूर्ण होने पर श्रोत्रिय के लिए, दीन-हीन के लिए शिव भक्तों को दान करें। इस प्रकार सम्पूर्ण कार्य का सम्पादन करते हुए षण्मुख श्री स्कन्दकुमार कार्त्तिकेय को सुगन्धित द्रव्य निवेदित करें। जो भक्त भक्ति से भावित होकर श्री भगवान् कार्त्तिकेय सम्बंधित कृष्णगन्ध का लेपन करते हैं उनके जन्म एवं जन्मान्तर के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

षष्ठी आचरण विधि

षष्ठी का आचरण मुख्यतया तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आन्ध्र, तेलंगाना में मनाया जाता है। जब शुक्ल पक्ष की पंचमी तथा षष्ठी एक साथ आती है तब स्कन्द षष्ठी का आचरण होता है। जब पंचमी तिथि पूर्ण होकर षष्ठी तिथि की आरंभ होती है, तब सूर्योदय और सूर्यास्त के मध्य स्कन्द तिथि शुरु होती है।

सुब्रह्मण्य षष्ठी आचरण के कुछ नियम होते हैं- १. लोगों मे मांसाहार, प्याज, लहसुन आदि नहीं खाना चाहिए। २. ब्रह्मचर्य का संयम से पालन करना चाहिए। ३. उपवास करना चाहिए।

इन नियमों का पालन करते हुए सुबह को लोग नहा के मंदिर जाते हैं। इन मंदिरों में भी भगवान की विशेष पूजा की जाती है। अभिषेक किया जाता है। पूजान्त में 'स्कन्द षष्ठी कवचम्', 'सुब्रह्मण्य भुजंगम्' और 'सुब्रह्मण्य पुराण' आदि का पारायण किया जाता है। घरों में भक्त उपवास रहकर साँप की बाँबी के यहाँ पूजा करते हैं और बाँबी में दूध डालते हैं। घर पर एक सदाचारी ब्राह्मण को शुचिपूर्वक भोजन परोसकर दक्षिणा तथा वस्त्रदान करके सुब्रह्मण्य स्वामी का प्रतिरूप मानकर नतमस्तक हो जाते हैं।

सुब्रह्मण्य षष्ठी को सच्चे मन से अनुष्ठान करना चाहिए। माना जाता है कि स्वामी सर्व शक्तिमान है और इनकी भक्ति से पूजा करने से शत्रु भय नहीं रहता है। चर्मरोग तथा अंगारक ग्रह दोषों से मुक्ति के लिए, विवाह, संतान, सर्प हत्या दोष परिहार के लिए सुब्रह्मण्य क्षेत्रों में विशेष पूजा, हवन आदि किये जाते हैं। निष्ठा के साथ की गयी पूजा से इष्ट फल सिद्धि होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति के साथ षष्ठी को मनाने से दैवानुग्रह के अलावा स्वास्थ्य भी सुधर जाता है। नियमों का पालन निष्ठा से करने से शिष्टाचार तथा अनुशासन का भी पालन करते हैं। इससे आत्मविश्वास भी बढ़कर जीवन सुधर जाता है। व्यसनों से दूर रहने से हम रोग मुक्त होते हैं। उपवास करने से देह के विष पदार्थ बाहर आ जाते हैं। ये ही नियम आदत बन जाते हैं तो व्यक्ति जीवन में सही रास्ते पर चलता है।

भक्तों के अभीष्ट पूर्ण करने वाले सुब्रह्मण्य स्वामी को शत शत प्रणाम।

गांगेयं वह्निगर्भं शरवण जनितं ज्ञानशक्तिं कुमारं
ब्रह्मण्यं स्कन्ददेवं गुह ममलगुणं रुद्रतेजस्स्वरूपम्।
सेनान्यं तारकघ्नं गुरु मचलमतिं कार्तिकेयं षड़ास्यं
सुब्रह्मण्यं मयूरध्वजरथसहितं देवदेवं नमामि।।

अत: सब प्रकार से भक्त को अपने ललाट में कृष्ण गन्ध का लेपन करना चाहिए। षण्मुख के षडक्षर मन्त्र का जाप करना चाहिए। प्रत्येक सन्धि में बलिदान करना चाहिए, जहाँ तिराहा या चौराहा हो। आलय में प्रवेश करके सभी को भस्म देना चाहिए। कर्त्ता (यजमान) आचार्य की पूजा करें जिसमें वस्त्र हेमाङ्गुलीय भी सम्मिलित करें। इसके बाद दक्षिणा देवे जो गो भूमि एवं हिरण्य से युक्त हो। षण्णिष्कक को अधम, दस निष्कक को मध्यम एवं विंशति = बीस निष्कक वाली दक्षिणा श्रेष्ठ मानी गई है। यागान्त में बची हुई सभी सामग्री को देशिक के लिए दान करें। भक्तों एवं परिचरों को यथा शक्ति दान एवं दक्षिणा का विधान है। जो भी मनुष्य इस प्रकार पूर्वोक्त विधि विधान का पालन करता हुआ श्री स्कन्ददेव कार्त्तिकेय का पूजन करता है। वह पुण्य गति को प्राप्त करता है साथ ही पुरुषार्थ चतुष्टय को भी प्राप्त कर लेता है।

विविध-विधान से वर्णित तथा भक्ति-भावना-प्रदर्शन तथा उपासना के लिए प्रदर्शित इन विविध उत्सवों का क्रम या स्वरूप इस आगम-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। आज भी दक्षिण-भारत में तमिल-प्रदेश के देव-मन्दिरों में ये उत्सव भव्य समारोह पूर्वक सम्पादित होते हैं। उत्सव भावनाओं के अगणित रंगों का समुच्चय और उसकी अभिव्यक्ति का सरस माध्यम है। यह आध्यात्मिक प्रतिरूप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय- ११

स्नपन

विविध यागादि तथा आगमिक अनुष्ठानों में स्नपन अर्थात् अभिषेक एक प्रमुख क्रिया के रूप वर्णित है। स्कन्द अभिषेक प्रिय देवता हैं। कुमारतन्त्र में विविध अवसरों स्नपन का विधान विहित है। द्वादश पटल में दो सौ से अधिक श्लोकों में स्नपन अभिषेक विषय विस्तृतरूप से प्रतिपादित है।

अङ्गारवार, षष्ठीतिथि, ग्रहण, कृतिका-नक्षत्र, उत्सव के अवसर पर प्रतिष्ठा के समय में जन्मदिवस में, एवं नित्य नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों के उद्देश्य से एवञ्च शान्ति कर्म के अवसर पर स्नपन किया जाता है। प्रसाद में या वेदीरहित मण्डप में काष्ठ मण्डप या शिलामण्डप में पञ्चमण्यादि द्रव्यों के द्वारा स्नपन कार्य किया जाना चाहिए। तोरणादि से सजाकर भूमि शोधन करके लेपन करके कार्त्तिकेय का स्नपन कार्य सम्पादित करना चाहिए। कार्त्तिकेय के स्नपन-द्रव्य में कलश का चयन भी सावधानीपूर्वक करने का निर्देश है। काला आदि दाग लगा हुआ न हो, फटा हुआ न हो, टूटा हुआ भी न हो, गन्धयुक्त एवं पुराना कलश ग्रहण नहीं करना चाहिए। काले कलश से कलह होता है। भिन्न कलश से कुलनाशक होता है। सुषिर कलश महामारी देने वाला होता है। टूटा हुआ कलश, नाशकारक होता है। लीन कलश व्याधिकारक होता है। दुर्गन्धित कलश बालनाशक होता है। पुराना कलश स्त्री का नाश करता है।

अतः अति सावधानीपूर्वक कलश का चयन करते वक्त सभी दोषों का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार कलश का चयन करने के उपरान्त गन्धाक्षत आदि द्रव्यों से षण्मुख का स्नपन कार्य किया जाता है। स्नानान्तरं लाजपुष्पतिलैर्दध्नैर्विकिरान करके स्नपन कार्य करना चाहिए। पुष्पवाचन भी किया जाता है। इसके बाद स्नान कार्य को करना चाहिए। नव प्रकार के स्नपन बताया गया है- प्राकसूत्र, देवसूत्र, उद्वसूत्र, स्कन्दकुम्भ आदि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा स्नपन का कार्य किया जाना चाहिए। तदनन्तर पाद्यअर्घ्य आत्मनीय आदि के द्वारा पञ्चगण्य को उपयोग का विषय करते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर पञ्चविंशति स्नपन का वर्णन किया गया है। दक्षिणोत्तर वधिर्नि के अनुसार हेमसंयुक्त वर्धिनि में पाद्य अर्घ्य आचमन आदि का गण्य के साथ उपयोग करें।

दूध दधि धृत भस्म हरिद्रा मञ्चरी, नारिकेल, बिल्व जम्बू आदि के द्वारा प्रथमावरण में लगाकर पूजन करें- इन्द्रादि द्विजवर्णों को द्वितीयावरण में जोड़े।

द्वादशादित्यों को एवं एकादश इन्द्रों को पूर्वादि दिशाओं में तृतीया वरण में जोड़े। इस प्रकार यथा न्याय न्यास पूर्वक श्री महादेव शंकर केशव श्री कार्त्तिकेय जी का वर्धमीद्वयजल से शक्ति आदि के सहित पूजन करे। इस प्रकार पूर्वोक्त विधि से सुरेश्वर श्री कार्त्तिकेय जी को स्नान करने के अनन्तर इक्यासी कलशों की स्थापना करें। इस प्रकार आवरणत्रय का विधान करके प्रत्येक आवरण की विधि- विधान से पूजा करें। दूध दधि आदि अङ्ग पदार्थों को प्रथम आवरण में रखना चाहिए। मधु लाजा हरिद्रा आदि मांगलिक द्रव्यों को द्वितीयावरण में रखे। चन्द कर्पूर लवङ्ग आदि को तृतीयावरण में स्थापित करें। अपामार्ग तुलसी नीलकमल इत्यादि औषधिय गुण सम्पन्न वस्तुओं को चतुर्थावरण में रखने का विधान है। पूर्वोक्त सभी द्रव्यों को यथाकाल संग्रह करके उन्हीं द्रव्यों के द्वारा स्कन्द का पूजन करे।

इसी प्रकार शकुनयादिष्ट शक्तियों को प्रथमावरण में स्थापित करके उनका पूजन करना चाहिए। धरो ध्रुव सोम आय आदि देवताओं का तथा अष्टवसुओं का यथाक्रम न्यास करे, तदनन्तर द्वितीयावरण में यथाक्रम से स्थापन एवं यजन करें।

कार्त्तिकेय, विशाख, गुह आदि भगवान् कार्त्तिकेय के विभिन्न नामों का उच्चारण करते हुए उनकी अर्चना पूजा करनी चाहिए। यही यजन का क्रम है। वज्र कार्मूक खेट आदि चौबीस देवताओं का तृतीयावरण में रखकर पूजन विधान सम्पन्न करे। चतुर्थावरण में ईशान पर्जन्य जयन्त एवं महेन्द्रादि ३२ बत्तीस देवताओं का यजन करना चाहिए।

इस प्रकार प्रणवमन्त्र का आदि में प्रयोग करके तथा अन्त में नमो (नमः) जोड़कर तत्तत्नामों से अर्चना करनी चाहिए। अर्चना के अन्त में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभूत होम का विधान है। स्कन्द के निमित्त हविषदान करें तथा अभिप्सित पदार्थ की प्राप्ति की प्रार्थना करें। तत्पश्चात् आचार्य की पूजा करें।

ब्राह्मण भोजन कराने के अनन्तर दीनजनों को यथानुकूल पदार्थों का दान करके सन्तुष्ट करें। अनाथों का दान देवे।

उन्यासी कलशों के द्वारा स्नान करावें। इसके बाद एक सौ आठ कलशों से स्नान कराने की विधि बतायी गई है। जिसमें पच्चीस पदों के मध्य में द्विपद को छोड़कर चारों दिशाओं में त्रिपदों का न्यास करना चाहिए। द्वादश द्वार से युक्त स्कन्द व्युह के मध्य में आग्नेयादि के मध्य में क्रम से चार धर्मादि व्यूह की स्थापना करे। तीन-तीन व्यूह कोणों में स्थापित करे। प्रत्येक कुम्भों के मध्य में कमल की आकृत्ति का निर्माण करे, कुशों का परिस्तरण करके सुन्दर चिन्हों से सुशोभित कलशों की स्थापना करें। पाद्य, अर्ध्य, आचमन, गन्ध आदि के द्वारा प्रथमावृत्ति में पूजा करें। तिल बिल्वपत्र मलयचन्दन इत्यादि के द्वारा अग्निकोण में स्थापित पाँच कलशों का पूजन करें। षोडश द्रव्यों को द्वितीयावरण में रखकर पूजन करें।

तृतीयावरण में पाँच कलशों पर नैऋत्यकोण में हरिद्राचूर्णादि का विधान करे। चतुर्थावरण में मूलविद्या का विलेखन करना चाहिए। पञ्चमावरण में क्रमेण नवों कलशों पर लक्ष्मी सहदेवी आदि की स्थापना करें। इसी प्रकार क्रम से प्रथमादि आवरणों में शकुन्यादि अष्ट शक्तियों की यथाविधि यथाक्रम पूजन करने के उपरान्त गर्भगृह में प्रवेश करके वेर की शृद्धि के लिए आचरण करना चाहिए। स्कन्दकुम्भस्थजल के द्वारा स्कन्द कुमार श्री कार्त्तिकेय की पूजा करनी चाहिए। एक सौ आठ कलशों का जिनका पूर्व में वर्णन किया गया है उन्हीं कलशों के क्रम से स्नपन कार्य करना चाहिए। तदनन्तर जो भूमि धन एवं वाहन के द्वारा आचार्य की पूजा करनी चाहिए।

अष्टोतरसहस्त्र स्नपन की विधि भी वर्णित है। जिसमें चावल के चूर्णों के द्वारा २५ पदों का निर्माण कर मध्य में स्थापित करें। दश आयुधों से युक्त दर्म माला से वेष्टित मण्डप के मध्य में सूत्रान्तिरित करे। इसके बाद पश्चिम से पूर्व तक सूत्र से वेष्टित करे। उसके मध्य में शङ्खवादि की स्थापना करें। इसके बाद षोडश सूत्रों के द्वारा वृत्त का निर्माण करें। पूर्व पश्चिम की तरह ही दक्षिणोत्तर दिशा में भी सूत्र के द्वारा वेष्टित करके पद निर्माण करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए। स्वर्णालंकार के मध्य में तिलतण्डुलशालि के द्वारा स्थण्डिल कलशों के प्रति कल्पना करनी चाहिए। प्रथमावरण में आठ द्वितीयावरण में सोलह तृतीयावरण में चौबीस तथा चतुर्थावृत्ति में बत्तीस एवं इसी प्रकार पाँचवें आवरण में चालीस कलशों को स्थापन करना चाहिए। इसी क्रम में आठ-आठ की संख्या को बढ़ाते हुए प्रत्येक आवृत्ति में कलशों को प्रतिष्ठित करें। इसी प्रकार अष्टोत्तर सहस्र कलशों को विन्यस्त करके रत्न लोहकधातूत्थ बीजोद सुगन्धिततोय, रत्नोदक, बीजोदक इन सभी से युक्त सुगन्धित गन्धोदक तोय (जल) के द्वारा मार्जन करना चाहिए। तुलसी बिल्वपत्र तमालपत्रादि के द्वारा उपस्कृततोय पत्रतोय कहा जाता है ऐसे तोय से मार्जन किया जाता है। पुष्पों से सुवसित जल पुष्पतोय, मान्योरक, शुद्धतोयमस्त्रोदक, फलों से युक्त फलोदक, कषायोदक, गन्धत्रय से समायुक्त मध्यतोय, सूर्यकान्तादि मणियों से युक्त कान्ततोय, भूलोदक, कुशोदक आदि से युक्त ब्रह्मकूप इत्यादि उदकों के द्वारा मार्जन करना चाहिए। विविध धातुओं पत्रों पुष्पों से युक्त जल के द्वारा मूलमन्त्रेण विन्यस्त करना चाहिए। कृष्ण वस्त्र को छोड़कर अन्यान्य रंग के वस्त्रों के द्वारा कुमारस्वामी का परिधान संकरण करें। कुमार स्वामी के मध्य में कुम्भ की स्थापना करके पूजन करें तथा दक्षिण में वर्धनी महावल्ली की पूजा करें। जथन्ताख्यं अग्निशिख आदि नामों के द्वारा द्वितीयावरण में सम्यक् प्रकार से द्विवार पूजा करें।

गंगा यमुना नर्मदा आदि का यजन पाँचवे आवरण में धीमाण पुरन्ण को करना चाहिए। अनन्त आदि नागों का आवाहन एवं पूजन भी षष्ठमावृत्ति में करें। एवमेव सप्तमादि आवरणों में नवनिधियों का आवाहन करें। एवं गन्धपुष्प आदि के द्वारा स्वरूप नामों के द्वारा पूजन करें। अनन्तर स्कन्द गायत्री के द्वारा शतबार हवन करना चाहिए। जयादि एवं राष्ट्रमृत होमों के क्रम से हवन करना चाहिए। मध्य में कुम्भ के वर्धनी करके धामप्रदक्षिणा पूर्वक गर्भगृह में प्रवेश करके बेरशुद्धि के निमित्त आचरण। व्यवहार का सम्पादन करें। पुनः स्कन्दबीज का उद्धार करके बेर के हृदय में स्थापित करें, पुनः उसी कुम्भ में स्थित जल से शङ्करात्मज श्री कुमार कार्त्तिकेय का पूजन करें। दक्षिणस्थित वर्धिनी में महावल्ली की पूजा करें। उत्तरस्थितवर्धिनी में देवसेना की पूजा करें। इसके अनन्तर यथाक्रम से स्थापित सभी कलशों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को ग्रहण करके सर्वदेवस्वरूप श्री कुमार कार्त्तिकेय को पूजें। पूर्वोक्त विधान से श्री अम्बिकासुत श्री कुमार कार्त्तिकेय जी का पूजन यथाविधि करें, अनन्तर महाहवि का निवेदन करें तत्पश्चात् ताम्बुलादि अर्पण करें। कामनानुसार प्रार्थना करने के बाद नमस्कार विधि को सम्पन्न करें। पुनः आचार्य पूजन करें, जिसमें ब्राह्मण के लिए गो भूमि धन एवं सुवर्ण आदि का दान भी करें।

देशिक श्रेष्ठ विद्वान् भी दक्षिणा पञ्चनिष्ठ अधम माना गया है। दो गुना मध्यम माना गया है। अतः तीन गुणा दक्षिणा ही उत्तम दक्षिणा होती है जो ब्राह्मण देशिक के लिए दान करें। भक्त परिवार एवं दीनानाथों की पूजा करके ब्राह्मणों का भोजन सम्पन्न करें। जो मनुष्य इस प्रकार से सम्पूर्ण विधिविधान का सम्पादन करता है वह सभी पापों से युक्त हो जाता है। ऐसा करने से विद्या की प्राप्ति होती है। धन को भी प्राप्त करता है। राज्य की कामना करने वाला राज्य को प्राप्त कर लेता है। विजय का भी विजयी बनता है।

संक्षेपतः सभी कामनाओं की पूर्ति इस कुमार के स्नपन विधि से प्राप्त करके अन्त में कौमार लोक को प्राप्त होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-१२

दीक्षा-विधि

निगमागमीय-चिन्तन में दीक्षा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतएव उभयविध परम्पराओं में दीक्षा को एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में स्वीकार कर उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। स्कान्दागम में दीक्षा की विधि एवं प्रक्रिया वर्णित है। यहाँ दीक्षा कोई एकाकी कर्म विशेष न होकर विशिष्ट क्रिया-कलापों का समूह है। दीक्षा-सम्पादन क्रम में अग्नि-अराधन का अवसर आता है। प्रस्तुत अग्नि-अराधन केवल दीक्षा-विधि में ही विहित नहीं है, बल्कि स्कान्द-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा तथा उत्सवादि अनेक अवसरों में अग्नि-अराधन अर्थात् अग्नि-कुण्ड में विधिवत् होम सम्पादन का विधान किया गया है। कुमारतन्त्र में दीक्षा-विधि निरूपण के सन्दर्भ में ही अग्निकुण्ड-कल्पन प्रकार, कुण्ड के लक्षण तथा होमादि का क्रम निर्दिष्ट है।[१] पाञ्चरात्रागम में भी अग्नि-कुण्ड लक्षणादि का निर्देश किया गया है।[२]

अग्नि-स्थापन के पश्चात् दीक्षा के अङ्गभूत कार्य मण्डलाराधन का अवसर आता है। कुमारतन्त्र ने दीक्षा-विधि-प्रकरण में ही पृथक् एक अध्याय में मण्डलार्चन-विषय का वर्णन किया है। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मण्डलार्चन न केवल दीक्षाङ्ग प्रक्रिया है, अपितु प्रतिष्ठा, पवित्रारोपण तथा उत्सवादि विधानों में भी मण्डलार्चन आदि आचारपरक विधान भी किया जाता है।[३] श्री भद्रमण्डल का विधान सुब्रह्मण्य-दीक्षा में सभी वर्णों के लिये प्रशस्त बताया गया है।[४] गुहदीक्षा मण्डल की सन्निधि में सम्पन्न होनी चाहिये। कुमारतन्त्र में मण्डल बनाने की विधि[५] तथा

---

1. कुमारतन्त्र, सप्तम पटल, नवम् पटल
2. जयाख्यसंहिता, पटल-16.
3. कुमारतन्त्र, पटल-10/1-2.
4. तत्रैव, 10/6.
5. तत्रैव, 10/3-4.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मण्डलाराधन का फल भी प्रतिपादित है।[१] पाञ्चरात्रागम के अनेक संहिताओं मण्डलाराधन विधि-विधान का विस्तृत विवेचन किया गया है।[२]

कुमारतन्त्र में गुहदीक्षा पर प्रकाश डालते हुए दीक्षा-महात्म्य निरूपित है। कहा गया है कि यह सर्वपापहरण-पुण्यप्रदायक तथा सर्वकामफल प्रदान करने वाला है।[३] शिवदीक्षा के अनन्तर गुहदीक्षा का विधान कहा गया है। दीक्षा-विधि में सभी अलंकारों से सम्पन्न होकर कौषेयवस्त्रधारणपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये।[४] मूल-मन्त्र का दस बार जप करके मण्डल के पूर्वद्वार से विप्र, दक्षिणद्वार से क्षत्रिय, पश्चिमद्वार से वैश्य एवं उत्तरद्वार से शूद्र तथा सभी वर्णों के लिये पश्चिमद्वार से ही प्रवेश का विधान है। दैवी सुरक्षा के लिये प्रणव-मन्त्र का जप करते हुए शिष्य मण्डन में प्रवेश करे तथा आचार्य से दक्षिण में कुशासन पर बैठे- मुमुक्ष शिष्य को उत्तराभिमुख एवं बुभुक्षु (भोग की इच्छा वाला) शिष्य को दक्षिणाभिमुख बैठाकर यतिमान् गुरु दीक्षा क्रिया को सम्पादित करे- शिष्य के शरीर में मन्त्रादि का (मूलमन्त्रादि) यथाक्रम भावित करें।[५] इस प्रकार से दीक्षा-विधि सम्पन्न कर गुरु को अपनी शक्ति के अनुसार शिष्य दक्षिणा देवें। स्कान्दयामल में यह निर्दिष्ट है कि जो शिष्य गुरु की पूर्णपूजा में असफल हो जाता है या किसी कारणवश नहीं कर पाता है, वह तत्त्वज्ञ होने पर भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। वह सौ जन्मों तक अधिकारी वर्ग का ही स्तर प्राप्त करने के लिए विवश रहता है। उसके बाद मुक्ति पद की ओर अग्रसर होता है। अस्तु निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि, येन केन प्रकारेण गुरु को अर्चित करने के बाद पुष्कल दक्षिणा से उसे सन्तुष्ट करना ही चाहिए।[६]

---

1. तत्रैव, 10/7-8.
2.क. पौष्करसंहिता, 5/1-18.
ख. नारदीयसंहिता, अध्याय-8.
ग. विश्वामित्रसंहिता- 15/1-39.
3. कुमारतन्त्र, 11/1.
4. तत्रैव, 11/2-3.
5. तत्रैव, 11/4-14.
6. तन्त्रालोक अष्टाविंशमाह्निक, श्लोक 430.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थल पुराण के अनुसार वाराणसी जनपद के निकट (स्वतन्त्र चन्दौली जिले के) चकिया तहसील में एक यगेश्वरनाथ का महादेव का मन्दिर है। मन्दिर में षण्मुख का विग्रह विराजमान है उसे गाँववासी तथा आसा-पास की जनता छह मुहाँ बाबा के नाम से अर्चना कर पुण्य लाभ लेते हैं।

इस प्रकार गोपनीय गुहदीक्षा को जो प्राप्त करता है, वह समस्त भोगों को भोगकर देहोपरान्त कुमार लोक को प्राप्त करता है।[१]

---

1. तत्रैव, 11/15-16.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय- १३

प्रायश्चित्त-विधान

धर्मशास्त्र में 'प्रायश्चित्त' का विशद विवेचन किया गया है। यहाँ प्रायश्चित्त के दो रूप हैं- प्रथम पाप तथा उसके उपशम के लिए उपाय दूसरा धार्मिक अनुष्ठानों में हुई भूलों का निवारण। कुमारतन्त्र में इसका प्रयोग दूसरे लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया गया है। कुमारतन्त्र ने प्राय: दो सौ श्लोकों में प्रायश्चित्त विषय का निरूपण चौदहवें पटल में किया है।

ध्वज, घण्टा, दशायुध तथा पूजनोपयोगी नैवेद्यादि से विहीन स्कन्द की पूजा दु:ख एवं पीडा देने वाली होती है जिसके निवारण के लिए प्रायश्चित्त आवश्यक है।

गमनकाल में, बेर में, पत्तन में, अङ्गहीन तथा दीक्षा से हीन शूद्रों के द्वारा प्रतिमा का स्पर्श होने पर, तथा उसी यज्ञशाला में शुनकादि के द्वारा प्रतिमा का स्पर्श होने पर जिस ग्राम में उत्सव का आयोजन किया गया होता है उसी ग्राम में मनुष्यों के मरने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। शान्ति होम करना चाहिए तथा पुन: ध्वजा को रोपे- यदि उपदेवी विहीन कार्य हो रहा हो तो यम को देने वाला दोष लगता है।

ध्वज के रस्सी के खण्डित हो जाने पर अथवा वहीं पर ध्वज के गिर जाने पर कर्त्ता एवं गुरु को शान्ति होम का आचरण करना चाहिए। दूसरे रस्सी से दृढतापूर्वक बाधकर सम्प्रोक्षण करें, घण्टा से रहित होने पर बालकों का नाश होता है। पुण्याहवाचन करने के अनन्तर सौ बार मूलमन्त्र का जप करें, घण्टा को प्रोक्षण करके पुन: संधान करें। यदि भेरी का ताडन नहीं हुआ है तो भूतादियों का उपद्रव बढ़ जाता है। स्थण्डिल को विधि विधान पूर्वक बनाकर समीप में कुम्भ की स्थापना करें। यागशाला के अग्नि से जल जाने पर राजा की मृत्यु सुनिश्चित होती है। अत: सब कुछ त्यागकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ववत् संकल्प लेकर कल्पित करें। स्रुक्, स्रुवा आदि से विहिन होम कर्म होने पर ग्रामवासी ज्वर एवं महामारी से पीडित होते हैं।

वेदी को वस्त्ररहित नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो दुर्भिक्ष होता है। सौ बार मूलमन्त्र का जाप करें, तदनन्तर सभी कर्मों का सम्पादन करें। यागदीप से रहित होने पर नेत्ररोग होता है। अतः शान्ति होम का विधान करके द्वीगुणदीप को देवें। अस्त्र के दण्ड के भग्न होने पर नए दण्ड का प्रयोग करने पर उसे पञ्चगव्य से प्रोक्षण करें अनन्तर बलिकर्म को पूर्ण करें। आयुधों के नष्ट होने पर महामारी फैल जाती है। तथा राक्षसों का उपद्रव शुरु हो जाता है। अतः षडक्षर मन्त्र का अष्टोत्तर शत बार जाप करें पुनः नष्ट आयुधों को स्थापित करें। स्कन्द सूक्त का सौ बार जाप करें पुनः शान्ति होम का विधान करें।

यदि पूजन विधि निराजन से रहित ही पूर्ण हो गई हो तो अग्नि का भय व्याप्त रहता है। अतः उसके शान्ति के लिए षडक्षर मन्त्र का जाप करके नीराजन करें। पताका यदि अग्नि से जल जाए तो महावायु का प्रकोप होने की सम्भावना बनती है, अतः उससे शान्ति पाने के लिए मन्त्र का जप करें। मूर्ति के निमित्त होम करके कौतुकास्नान करना चाहिए। चूर्णोत्सव से विहीन होने पर गाँव की स्त्रियाँ विधवा हो जाती है। सुमित्र-याग से हीन होने पर सभी कर्म फलहीन हो जाते हैं। इसलिए गुह का स्नपन करने के अनन्तर सौमित्र याग का अवश्य आयोजन करें।

आचार्य की दक्षिणा से हीन एवं ब्राह्मणों के भोजन से हीन होने पर कर्त्ता को उस कर्म का फल प्राप्त नहीं होता, तथा निश्चित ही विनाश को प्राप्त करता है। अतः इस दोष से बचाव करने के लिए शान्ति होम करें। आचार्य को दक्षिणा दें एवं ब्राह्मणों को आदरपूर्वक भोजन करावें शीघ्र ही गुह का स्नपन करें एवं बन्धन का विधान करें। ऋतुमती-स्त्री, चोर, चाण्डाल, प्रेतक एवं पातक इन सवों के द्वारा स्पर्श होने पर तथा गर्भगृह में प्रवेश होने पर राष्ट्र में महामारी आता है एवं ये सब भी नरकगामी होते हैं। प्रतिलोकज, अनुलोमज, पतित, पापरोगी यदि ये सभी मूल बेर में प्रवेश करते हैं अथवा स्पर्श करते हैं तो ये सभी नरक के भागी होते हैं। इनके प्रवेश करने पर अथवा छूने पर मिट्टी के भाण्डों को त्यागकर गोबर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से लेपन करें। तैलभ्यङ से विहीन होने पर ग्रामवासियों में दारिद्र बढ़ता है। अतः मूलमन्त्र से सौ बार तैलभ्य करना आवश्यक होता है। मन्त्र संस्कार दोषेण मन्त्र के संस्कार में यदि दोष होता है, तो राज एवं राष्ट्र का विनाश होता है।

अतः संप्रेक्षण करके उसी मन्त्र से अर्थात् उसी मन्त्र के द्वारा सम्प्रेक्षण करके पूजा करनी चाहिए। आचार्य को ग्राम का नाश से बचाए इस भावना से मूर्ति होम आदि कार्य को पूर्ण करें। तथा पूर्वाचार्य के साथ पूजन करें। जो कुछ भी यदि अन्य त्रुटि हो जाय उन सभी त्रुटियों के लिए शान्ति होम पर्याप्त होता है। चाहे मन्त्र में कोई त्रुटि हो गई हो या फिर क्रिया सम्बंधी कोई अशुद्धि हो सभी समस्याओं का समाधान एक मात्र मूर्तिहोम है। इस प्रकार जो मनुष्य इस स्कन्द पूजन विधि की अशुद्धियों को ध्यान में रखकर सावधानीपूर्वक पूजा विधान सम्पादित करता है। उसके सारे पापताप संताप मिट जाते हैं एवं अत्यन्त पुण्य को प्राप्त करता है।[१]

---

1. कुमारतन्त्र पटल- 14.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय-१४

स्कन्द-गवेषणा-सम्बन्धी प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य

१. कुमारतन्त्रम्-

सम्पादक, श्री इ.एम. कन्दस्वामी शर्मा, द साउथ इण्डिया अर्चक एसोसिएशन १०/११, थाम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास ६००००१, १९७४, ५१ पटलों में, आगमों की परिपाटी के अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ में क्रिया एवं चर्या का साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्राप्त होता है- कुमारतन्त्र के प्रथम पटल में ग्रन्थावरण एवं द्वितीय पटल मन्त्रोद्धार दोनों को संयुक्त रूप में तन्त्राव तार पटल की संज्ञा दी गई है। तृतीय पटल शोचाचमन प्रकरण निर्दिष्ट है। चतुर्थ पटल स्नानुष्ठान विधि के लिए प्रख्यात है। पञ्चमपटल को नित्यार्चनविधि कहा गया है। षष्ठपटल में नैवेद्यविधि का विवेचन है। सप्तमपटल अग्निकार्य विधि का निरूपण है। अष्टमपटल नित्योत्सव का स्वरूप दर्शाया गया है। नवम पटल में कुण्डलक्षण का निरूपण है। दशमपटल मण्डल स्वरूप के नाम से जाना जाता है। एकादशपटल में दीक्षाविधि, द्वादश पटल में स्नपन का निरूपण है। त्रयोदश स्कन्दोत्सविधि का स्वरूप, चतुर्दश प्रायश्चित्तविधि का विवेचन है। पञ्चदश जीर्णोद्धारविधि का निरूपण है। षोडशपटल में वास्तुपूजा, होम एवं विधि का विधान वर्णित है। सप्तदश शान्तिहोम विधि, अष्टादश दिशाहोम विधि, एकोनविंश में मूर्त्तिहोमविधि प्रदर्शित है। बीसवें पटल में पञ्चगव्य का स्वरूप वर्णित है। एकविंश पटल में पञ्चामृतविधि का विधान, द्वाविंश बालस्थापनविधि, त्रयोविंश में संप्रोक्षा विधि निदर्शिष्ट है। चतुर्विंश में प्रतिमालक्षण सविस्तार, पञ्चविंश में शूलस्थापनविधि, षड्विंश में अचलस्थापन विधि वर्णित है। सप्तविंश में चलबेरप्रतिष्ठाविधि का वर्णन है। अष्टविंश शक्त्यास्त्रस्थापनविधि के लिए प्रख्यात् है। एकोनत्रिंश में गर्भन्यास विधि, त्रिंशपटल में आद्येष्टका विधि, एकत्रिंश पटल में प्रासादलक्षण का निरूपण है। द्वात्रिंश पटल में मूर्ध्नेष्टिकाविधि विवेचन है। त्रयत्रिंश में प्राकार लक्षण विधि प्रदर्शित है। चतुरत्रिंशत् पटल में परिवारविधि का विवेचन किया गया है। पञ्चत्रिंशत् पटल में करणलक्षणविधि बताई गयी है। षट्त्रिंशत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पटल में पादुकाप्रोक्षण का निरूपण है। सप्तत्रिंशत् पटल में आत्मार्थ यजनविधि का विधान निरूपित है। अष्टत्रिंशत् पटल तैलाभ्याङ्ग विधि, एकोन्चत्वारिंशत् पटल में मासपूजाविधि प्रदर्शित है। चैत्रमासपूजा, वैशाखमासपूजा, वसन्तोत्सवविधि, ज्येष्ठमासपूजा, आषाढमासपूजा, क्षीरपूजा, पवित्रारोपणविधि, श्रावणमासपूजा विधि, भाद्रमासपूजा विधि, आश्वयुज (आश्विनमास) पूजाविधि, कार्तिकमासपूजाविधि, धनुर्मास (आर्द्रा) पूजाविधि, मार्गशीषमासपूजाविधि, पुष्यमासपूजाविधि, माघमासपूजाविधि (शिवरात्रिपूजाविधि), फाल्गुनमासपूजाविधि में नवनैवेद्यम् विधि।

चत्वारिंशत् पटल में अङ्कुरार्पणविधि विवेचित है। एकचत्वारिंशत् महावल्लीदेवसेनास्थापन विधि वर्णित है। द्विचत्वारिंशत् सुमित्रस्थापनविधि, त्रिचात्वारिंशत्पटल में गजस्थापनविधि, चतुःचत्वारिंशत्पटल में रथप्रतिष्ठाविधि, पञ्चचत्वारिंशत्पटल में महाभिषेकविधि, षट्चत्वारिंशत्पटल में स्कन्दकलान्यासविधि वर्णित है। सप्तचत्वारिंशत् पटल में मातृकान्यासविधि प्रदर्शित है। अष्टचत्वारिंशत् पटल में सुब्रह्मण्यमकवच विधि निर्देशित है। एकानपञ्चाशत् में प्रदक्षिणानमस्कार विधि, पञ्चाशत् पटल में आचार्यलक्षणविधि निर्दिष्ट है। एकपञ्चाशत् पटल सायरक्षा विधि (शयनविधि) बताई गई है। इसी के साथ इसमें तत्त्व ज्ञान एवं क्रिया का भी वर्णन प्राप्त है, आचार्य ने सम्पूर्णग्रन्थ को संस्कृत भाषा में निबद्ध किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ अर्वाचीन है।

२. स्कन्दशारीरकम्-

यह ग्रन्थ के० साम्बशास्त्री द्वारा सम्पादित त्रिवेन्द्रम् से सन् १९३८, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली के ग्रन्थाङ्क १३७ श्री चित्रोदयमंञ्जरी के ग्रन्थाङ्क २६ में प्रकाशित है। इस में स्कन्द को ज्योतिषशास्त्र का प्रणेता माना गया है जिन्होंने संसार के कल्याण के लिए इसका प्रणयन किया। यह आठ अध्यायों में विभक्त है- १. संज्ञा, २. संकीर्ण रेखा लक्षण ३. स्थान तथा स्थान विशेष में बनी हुई रेखाओं का लक्षण ४. प्रतिरेखा, प्रतिरेखा का लक्षण ५. मुखगतरेखा का वर्णन ६. उच्चनीच भागों का लक्षण ७. कण्ठ से ऊपर के अङ्गों का लक्षण तथा फल और विप्रकीर्ण रेखा का लक्षण ८. तटस्थ चेष्टादि का लक्षण। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रतीत होता है किन्तु इसका पूर्वार्द्ध उपलब्ध नहीं हैं। शरीरगत रेखाओं के आधार पर साधक को अनिष्ट निवारण के पश्चात् इष्टप्राप्ति का उपाय बताया गया है।

३. कार्त्तिकेयकथार्णवम्-

श्री टि.के. मुत्तुस्वामीशास्त्री द्वारा सप्तशत श्लोकों में तमिलभाष्य के साथ ग्रन्थ का प्रणयन किया है। द्रविड़ भाषा में अनुवाद कार्त्तिकेय के विभिन्न पक्षों को पूर्णतया व्याख्यायित किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. कुमारम्-

श्री शिवयोगी, के. शिवराजन् द्वारा विरचित, तिरुमूलर योग सेण्टर, कोयम्बटूर-२९, से सन् २०११ में प्रकाशित है।

५. कार्त्तिकेय-चरित-तीर्थ एवं मन्दिर-

सम्पादक- श्री विनोद कुमार पचौली, प्रकाशक- महन्त बंशी पुरी, श्रीपृथ्वीश्वर महादेव मन्दिर पृथूदक तीर्थ-पिहोवा।

६. Skanda/Karttikeya-

इस ग्रन्थ के लेखक प्रो० पृथ्वीकुमार अग्रवाल हैं। ग्रन्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग द्वारा सन् १९६७ ई० प्रकाशित किया गया। विद्वान् लेखक ने परिश्रम पूर्वक वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, महाकाव्य, पुराणों तथा पुरातत्त्व आदि स्रोतों से सामग्री संकलित की है, प्रयास श्लाघ्य है।

७. ON KARTTIKEYA-

डॉ. उपेन्द्र ठाकुर, प्रकाशक- चौखम्बा ओरिएण्टलिया गोपाल मंदिर वाराणसी, इसमें ऐतिहासिक सभी शोध प्राप्त हैं। इतिहास एवं कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विद्वान् गम्भीर गवेषणा करते हुए पुरातात्त्विक एवं मूर्ति कला पेंटिङ्ग और समस्त ऐतिहासिक स्रोतों का पुङ्खानुपुङ्ख विवेचन किया है। भारतीय इतिहास की दृष्टि से यह ग्रन्थ सदा ही प्रेरणास्रोत शोध के लिए है।

७. Lord Shanmukha and His Worship by Swami Shivanand Published by The Divine Life Society, P.O. Shivanand Nagar 249192 Distt. Tehri Garhwal, Uttrakhand, IIIrd Edition, 1996

८. The Many Faces of Murukan, The History and meaning of a South Indian God-

इस पुस्तक के प्रणेता श्री फ्रेड डब्लू क्लोथी हैं आप पिटसबर्ग विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। पुस्तक का प्रकाशन माउंटेन पब्लिशर्स, दी हेग, नीदर लैण्ड सन् १९७८ में हुआ है। ग्रन्थकार ने सभी विशेष स्थलों पर विषय से सम्बद्ध विविध ग्रन्थों के उद्धरणों को स्थल पुराणों तथा मौखिक परम्पराओं द्वारा उपस्थापित किया है। वस्तुतः श्री क्लोथी ने एक असाधारण कार्य किया है। अतः सब तरह से यह अनुकरणीय सारस्वत अनुष्ठान स्वागत के योग्य है।

❖❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

१. अथर्ववेद, आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर संवत् १९५७।

२. अनिरुद्धसंहिता, श्रीनिवास अय्यंगर मैसूर ई० १९५७।

३. अमरकोश, अमरसिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२९।

४. अहिर्बुध्न्यसंहिता, भाग १, २ पं० वी० कृष्णामाचार्य, अडियार लाईब्रेरी रिसर्च सेन्टर, मद्रास, द्वि० सं० १९६६।

५. आगम और तन्त्रशास्त्र, आचार्य व्रजबल्लभ द्विवेद्वी, परिमल प्रकाशन दिल्ली १९८४।

६. आगम कोश, वैखानस एवं पाञ्चरात्रागम भाग २, ३, कल्पतरु रिसर्च अकादमी बंगलोर १९९०।

७. आगम परिज्ञान और प्रभातिलक, शम्भुलिंग शिवाचार्य, पं० काशीनाथ शास्त्री मैसूर १९३०।

८. आगमप्रामाण्यम्, यामुनाचार्य, गायकवाड़ ओररियन्टल इन्स्टिच्यूट, बड़ौदा १९७६।

९. आनन्दसंहिता (तेलगु) ईगापालेम, आन्ध्रप्रदेश १९२४।

१०. आपस्तम्बश्रौतसूत्र, संपादक रिचर्ड गार्वे, मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिसर्स दिल्ली, द्वि० सं० १९८३।

११. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, आचार्य अभिनवगुप्त, भाग १-३ सं० प्रो० रामचन्द्र द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९८६।

१२. ईश्वरसंहिता, सुदर्शन प्रेस, कांजीवरम् १९२३।

१३. ऋग्वेद, योगेश्वरगुरु गंगेश्वर चैरिटेबल ट्रस्ट, तुलसीनिवास चर्चगेट बम्बई, विक्रमाब्द २०४८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१४. कपिंजलसंहिता, राघवाचार्य और गोपाचार्य, के सी० पी० प्रेस कुड्डापेठ १८९६।

१५. कार्त्तिकेय कथार्णवम् (Text in संस्कृत with commentary in tamil) T.K. Muthuswamy Sastrigal, प्रकाशित- k.e.s. Krishnan, c-203, Yamuna Apartments, Alaknanda, New Delhi-19, 1982.

१६. काश्यप ज्ञानकाण्ड, सम्पादक आर० पार्थसारथि भट्टाचार्य; तिरुमलै तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति १९४८।

१७. गुह्यसमाजतन्त्र, सम्पादक—विनयतोष भट्टाचार्य, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा १९३१।

१८. गौतमधर्मसूत्र, सम्पादक-डॉ उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६६।

१९. चरकसंहिता, चक्रपाणि, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२०. चिन्मयभारत, डॉ कुबेरनाथ राय हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९९६।

२१. छान्दोग्य उपनिषद्, श्रीरंगरामानुज मुनि, सुन्दरम् चैरिटिज, मद्रास १९७३।

२२. जयाख्यसंहिता, गायकवाड ऑरियन्टल सीरीज, बड़ौदा १९३१।

२३. तन्त्र और तसव्वुफ, प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी, राका पब्लिकेशन, इलाहाबाद, १९८९।

२४. तन्त्र दर्शन, परमहंस निरंजनानन्द, श्री पंचदशनाम परमहंस, अलखवाडा देवघर १९६३।

२५. तन्त्रालोक (जयरथटीका), भाग-२, प्रथम आह्निक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९८७।

२६. तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१५।

२७. तैत्तिरीय आरण्यक, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२८. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी०वी० काणे (हिन्दी संस्करण), हिन्दी समिति लखनऊ १९७५।

२९. नाट्यशास्त्र-अभिनवभारती, कन्हैयालाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन दिल्ली १९८४।

३०. नारदपाञ्चरात्र, अनु० स्वामी विजयानन्द, पाणिनि ऑफिस, इलाहाबाद, १९२१।

३१. नारदीयसंहिता, डॉ० राघवप्रसाद चौधरी, केन्द्रीय सं० विद्यापीठ, तिरुपति १९७१।

३२. निगम तथा शैव-शाक्त-वैष्णव आगम परम्पराओं का अन्तः सम्बन्ध, प्रो. राधाबल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, नई दिल्ली, २०१० ई.।

३३. परमसंहिता, डॉ० एस० कृष्णस्वामी अय्यंगार, गायकवाड सीरीज, बड़ोदा १९४०।

३४. पाञ्चरात्र परिशीलन, प्रो. अशोक कुमार कालिया, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, नई दिल्ली, २०१० ई.।

३५. पाञ्चरात्रागम डॉ० राघवप्रसाद चौधरी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९८७।

३६. पाद्मसंहिता, श्रीमती सीतापद्मनाभम् और डॉ० आर० एन० सम्पत् (भाग-१),पाञ्चरात्र परिशोधन परिषद्, मद्रास, १९७४।

३७. पारमेश्वरसंहिता श्रीरंगम् १९५३।

३८. पुराण विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी तृ० सं० १९८७।

३९. पौष्करसंहिता, एच० एच० श्रीयतिराज सम्पत् कुमार एवं रामानुज मुनि ए० निवास एण्ड थिरुमल चैरिटी, बंगलोर १९३४।

४०. बृहद्देवता (शौनक), सं० रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी १९८९।

४१. बौद्धचर्यावतार, हिन्दी अनुवादक डॉ० रामनिवास तिवारी, ऑकर ग्रन्थमाला, वाराणसी १९९३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४२. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, हिन्दी समिति, लखनऊ, द्वि० सं० १९७६।

४३. भारतीय दर्शन का इतिहास (भाग ३) डॉ० एस० एन० दासगुप्त राजस्थान, हिन्दी अकादमी, जयपुर १९७४।

४४. भारतीय संस्कृति और साधना, म०म०पं० गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९७७।

४५. भारद्वाजसंहिता, प्रो० बाबूलाल शुक्ल, खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बम्बई, १९९०।

४६. मनुस्मृति, सम्पादक आचार्य जगदीशलाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९८३।

४७. महाभारत, सम्पादक श्रीपद कृष्ण बेलवलकर, भण्डारकर ऑरियन्टल रिसर्च इस्टीच्यूट, पुणे १९५४।

४८. मार्कण्डेयसंहिता, सी०वी० शेषाचार्युलु, तिरुमलै तिरुपति देवस्थानम् १९७५।

४९. लक्ष्मीतन्त्र, वी कृष्णमाचार्य, अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास, १९५९।

५०. वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्ड, सम्पादक ए० सुब्रह्मण्यम् अय्यर, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, १९८३।

५१. वाल्मीकिरामायण, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८३।

५२. विमानार्चनकल्प, सम्पादक श्री व० रघुनाथ चक्रवर्ती भट्टाचार्य, चेन्नपुरी, मद्रास, १९२६।

५३. विश्वामित्रसंहिता, उनदेमानशंकर भट्ट, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति १९७०।

५४. विष्णुपुराण, नाग पब्लिसर्स दिल्ली १९८५।

५५. विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (प्रथम भाग) ऑरियन्टल रिसर्च इस्टीच्यूट, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर, १९६१।

५६. विष्णुसंहिता, सम्पादक गणपतिशास्त्री, नाग पब्लिसर्स, दिल्ली १९९१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५७. विष्वक्सेनसंहिता, लक्ष्मीनरसिंह भट्ट, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति १९७२।

५८. वैखानस आगम कोश, भाग १-११, सम्पादक, प्रो. लक्ष्मीनृसिहं भट्ट आदि, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, १९९३-२०१० ई.।

५९. वैखानस विजय, उत्तमूर टी० वीर राघवाचार्य, तिरुपति १९६३।

६०. वैखानसश्रौतसूत्र, डॉ डब्लू० कैलेण्ड, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिसर्स, दिल्ली, १९९१।

६१. वैखानसस्मार्तसूत्र, डॉ डब्लू० कैलेण्ड, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास पब्लिकेशन दिल्ली, १९८९।

६२क.वैष्णवागम विमर्श, आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेद्वी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९७।

ख. श्रीवैखानस पैतृमेधिक प्रयोगः, प्रधान सम्पादकः, श्री सन्निधान सुदर्शन शर्मा, श्री वेङ्कटेश्वरवेदविश्वविद्यालय, तिरुपति, २००९।

६३. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत (हिन्दी संस्करण), डॉ० आर० जी० भाण्डारकर, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६७।

६४. शतपथब्राह्मण, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी १९८१।

६५. शाण्डिल्यसंहिता, अनन्तशास्त्री फडके, सरस्वती भवन, टेक्स्ट ६०, वाराणसी १९३५-१९३६।

६६. शारदातिलक, म०म० श्री मुकुन्द झा बक्शी, चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी, १९३।

६७. शिवमहिम्नस्तोत्र, अँग्रेजी अनुवाद डॉ० रामनिवास तिवारी, पिलिग्रिम्स बुक हाऊस, काठमाण्डु।

६८. श्रीप्रश्नसंहिता, श्रीमती सीतापद्मनाभम्, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति १९६९।

६९. श्रीपाञ्चरात्ररक्षा, श्रीवेदान्तदेशिक, अडियार लाईब्ररी एण्ड रिसर्चसेण्टर, मद्रास, १९६९।

७०. श्रीभाष्य, श्रीललितकृष्णगोस्वामी, श्री निम्बार्काचार्य पीठ, प्रयाग १९७४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७१. श्रीशक्तिसंगमतन्त्र, डॉ० बी० भट्टाचार्य, गायकवाड़ ऑरियन्टल इस्टीच्यूट, बड़ोदा १९७८।

७२. शुक्लयजुर्वेद, पं० जगदीशलाल शास्त्री, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, १९७१।

७३. समूर्ताचनाधिकरण, श्री० व०रघुनाथ चक्रवर्ती भट्टाचार्य, तिरुमलै तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति, १९४३।

७४. सर्वदर्शनसंग्रह, माधवाचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८४।

७५. सांख्यतत्त्वकौमुदी, रमाशंकर भट्टाचार्य मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६७।

७६. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, शैवभारती भवन, जंगमबाडीमठ, वाराणसी १९८९।

७७. सीतोपनिषद् (ईशादि-अष्टोत्तरशतोपनिषद्) श्री वासुदेव लक्ष्मण पणिकर चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९९०।

७८. संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास (तन्त्रागम खण्ड) उ०प्र० संस्कृत संस्थान, लखनऊ १९९७।

७९. सन्मार्ग, आगम विशेषांक, सन्मार्ग दैनिक, तुलसीघाट, वाराणसी, १९८०।

८०. सन्मार्ग, भारतीय संस्कृति विशेषांक, सन्मार्ग दैनिक तुलसीघाट, वाराणसी, १९८०।

८१. हयशीर्षसंहिता, कालीकुमार दत्त और कल्याणकुमार दासगुप्त एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९७५।

82. Agama Susama, Editors, Prof. Lakshminarasimha Bhatt & others, Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati, 2005.

83. Agamas And South India Vaisnvism, Dr. Vardachari, Prof. M. Rangacharya Memorial Trust Tripalichen, Madras, 1982, I Ed.

84. A History of Indian Literature, Maurice Winternitz, University of Calcutta, 1938.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

85. Aspects Of Visnuism, J. Gonda, Motilal Banarsidass Publisher, Delhi, 1954.

86. Discriptive Bibiliography of The Panchratra (Part1-2), Dr. H. Deniyal Smith, Orientel Institute, Barodara, 1975, 1980.

87. Elements of Hindu Iconography, T.A. Gopinath Rao, Vol. I, part I, Madras 1914.

88. Hindu Tantrism Gupta, Goudriaan And Moens, Leiden, 1979.

89. History of Dharmashastra Vol. 2, P. V. Kane, Bhandarker Oriental Research Ins. Poona, 1974.

90. Introduction of The Pancratra And The Ahirbudhnya Samhita, F.O. Schrader, Adiyar, 1916.

91. Journal of The Karnatka University Homantism, 1970.

92. Journal of The Oriental Research, Madras, 1964-66.

93. Journal of The Royal Asiatic Society, London, 1931.

94. Journal of The Tirumal Tirupati Devsthanam, Tirupati, May-June-1967.

95. Kasyapa's Book of Wisdom, T. Goudriaan, Mouton & Co Hague, 1965.

96. Laxmi Tantra, Sanukta Gupta, Liden, 1974.

97. Sakti And Sakta, Sir John Woodroffe, Ganesh & Co, Madras, 1954, X Ed. 1994.

98. Sanskrit English Dictionary, Sir Monier Williams, Oxford Clarendon Press, 1960.

99. South Indian Images of God And Goddesses, H. Krishna Shastri, Madras, 1916.

100. The Development of Hindu Iconography, J.N. Banerjea, Calcutta, 1956.

101. The Tantra Study On Their Religion And Literature, Chinta haran Chakravarti, Punthi Pustak Prakashan, Calcutta.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

102. The Tantric Tradition, Agehanand Bharti, B. I. Pub., III Ed. 1983.

103. The Visnu Samhita, Dr. N.P. Unni, Trivedrum Sanskrit Series LXXXV, Nag Pub. Delhi, 1925.

104. Vaikhanas Worship, Prof. S. K. Ramchandra Rao, TT Devasthanams, Tirupati 2004.

105. Proceeding of the National Conference on Vedas and Sastras, Tirumala Jan. 29-Feb. 3, 1992 Published by Sri Ajeyakallam, TT Devasthanams, Tirupati, First Edison 2004

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशिष्ट शब्द सूची

अ

अजातशत्रु, ४
अनुग्राहक, ६
अनुवर्तन, १७
अश्वत्थ, ३९
अज, ४३
अनिल, ६३
अग्नितारा, १०१
अमरत्व, १०५
अभयमुद्रा, १२९
अष्टास्त्र, १५०
अनुलोमज, १७७
अलौकिक, ३
अविच्छिन्न, ३
अभिव्यक्ति, ४
अगेहानन्द, ९
अथर्ववेद, ४२
अठवाह्यिसूत्र, ४६
अग्रगण्य, ४८
अधोवस्त्र, ९०

आ

आलोडन, ११६
आहुताग्नि, ४४
आगमन, ७
आगमिक, ६
आप्त, ४, ५
आध्यात्मिक, ५
आगम, ७
आदित्य, २४
आर्यामित्र, ८८
आसुरी, १०७

इ

इतिकर्तव्यता, ११
ईश्वरशिव, १४
ईशान, २५

उ

उत्सव, १६०, ४७
अन्मान, १३९
उद्घोष, ३६
उद्भावक, १२
उशना, १३
ऊर्ध्वमुख, ३९
उर्वराशक्ति, ४८
उत्कीर्णन, ६६
उच्छकल्प, ८५
उत्कीर्ण, ८९
उर्वरक, १०७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ए

एकदन्त, ३३
एण्ड्रूज, ९१

ऐ

ऐश्वर्य, १०९

ओ

ओरिजेन, ४७

औ

औसम, ७३

ऋ

ऋग्वेद, १६

क

कनिंघम, ८७
कंकालीटोला, ८४
कटम्पू, ६०
कुषाण, ८९
केन्दया इदतेन, ९४
क्रौञ्चमित्र, ७२
कौररवै, ९३
कोशल, ५८
कुल, ११
कार्त्तिकेय, ३७, ५०
कुषाणकालीन, ५५
कान्तल, ६०
कावति, ६१
करुम्बस, ६१
क्रौञ्चपर्वत, ६६
कसरवाद, ८८
कुटारगाम, ९२
काली, १०७

ख

खण्डमय, ४६
खानाखेरा, ८४

ग

गाणपत्य, १२८
गुह, ४२, ५४, ५५
ग्रावाणाञ्चल, ७३
गौतम, १३
ग्रहपति, २४
गजास्य, ३३
गुह्य, ४२
गौराङ्ग, ७६
गयूरसफ्रा, ८४
गरुडपुराण, ९०
गजारूढ, १२०

घ

घुघुआ (उड़ीसा), ८०
घण्टी, ५२
घयटापात्र, १३६

च

चैतन्य, ११९
चण्डकौशिक, ८१
चरनन्द, ४०
चंकम, ६०
चित्रांकन, ८७
चम्पा, ९२
चन्द्रोदय, १०८
चक्राकार, १२०
चन्दनादि, १२०
चित्राभास, १२३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज
जातहारिणी, १०७
जातकगाथा, ५३
जुरोस्टर, १५
जरा, १
जयद्रथयामल, १३
जैनागम, २२
जगच्चक्षु, २३
जिष्णु, ४९
जातहारिणी, १०७
त
ताम्रमुद्रा, ८८
तारकजित्, ६७
तिरोहित, ५७
तसव्वुफ, १४
तन्तुवाय, ११
त्रिगुणवपु, २६
तगष्पन, ९७
त्रिकालगत, २
तक्कारिजात, ४४
तिमिर, ५२
तारकारि, ७२
तोतलकप्पियम्, ८२
तुङ्गहुवाङ्ग, ९१
त्रिचिरापल्ली, ९६
द
दीघनिकाय, ५१, ५३
द्योतक, ५९
द्यूर्तकल्प, ७१
दीक्षा, १२
देवमधु, २५
देवसेना, ७२
द्यौस, १०२
दहराकाश, १११
ध
धूम्रकेतु, ३३
धूपपात्र, १३६
न
नादविन्दु, ३४
निराकुलज्ञान, २
नृतत्त्व, १
नेजमेष, ७१
नैगमेष, ८६
नक्कीरर, ८२
निबन्धन, ३
निगम, १, ११
नटराज, ३८
प
प्रसाधक, ११६
पर्जन्य, १०२
पुरञ्जीवेण्डन, ६६
पशुबलि, ७५
पाश, ९९
पद्मभव, ११०
पेषी, ४१
पशुपत, ५८
पाशुपत, २२, ३१
पशुपति, ५२
पदार्थवृत्ति, २८
पुरुषाप्तवाद, ८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीकवाद, २०
पृथ्वीतत्त्व, १
परमज्ञान, ५
परम्पराख्याति, ८
पञ्चमकार, १६
परशुरामकल्पसूत्र, ३३
पुरुरवा, ५६
पहुपत्तु, ६८
प्रणव, ९९
पिशाची, १०७

फ

फेलाशोधन, १५५
फिल्लीओजात, ११

ब

बेर, १२२
बीजाक्षर, ११७
ब्रह्माबेला, ७७
बुद्धचरित, ५४
ब्रह्म, १
ब्रह्मदेवक, ९८
बोधक, १११

भ

भूमा, ५७
भद्रवर्मन, ९३

म

मेरिका, १३६
मन्त्र, ११५
महानग्नी, १६
मज्झिमनिकाय, ५६
मुरुगान, ५०, ६०, ६३, ६४
मुर्गा, ७२
मातुलुङ्ग, ८९
मयूरधर्मी, १००
मुक्तिकामा, १११
महावला, १२१
मूलबेर, १२३
मातृकाचक्र, १२०
मानाङ्गुल, १३७
मण्डलार्चन, १७३
मन्थन, १२
मोहनजोदड़ो, २०
मधुकर, २५
मार, ४६
महासेनभट्ट, ५५
मौञ्जी, ६७
महामित्र, ८८
महाभूतिमित्र, ८८
मृत्युञ्जय, १००
मोहिनी, १०७
मणिपुर, १०९
मातृकापीठ, १२०

य

योगवेर ,१२४
यजुर्वेद, २५
यौधेय, ८०, ८८
याम्या, १०७
यक्षी, १०७
याप्यदेवी, १०७
योनि, १३५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

र

रलिम, ४९
रहस्यविग्रह, ३४
रश्मिमाला, ११
राजतरंगिणी, २०
बलदेव, ६८
रुद्रयामलतन्त्र, १२०

ल

लिङ्गपूजा, १५
लकुलीश, ३१
लम्बोदर, ३३
लिकनान, ६१

व

वंशावली, ४५
वलय, ९०
वातायन, ९८
विराटवपु, ११०
वोचम, ९२
वेदकाचार, १३
विमलज्ञान, २
वृषभदेव, ३
विहङ्गम, ८
वररुचि, ८
वैरवानस, २८
विल्सन, ४१
वंशावली, ४५
वृत्रासुर, ५६
वज्र, ६७
विजयमित्र, ८८
वारुणी, १०७

श

शक्र, ७७
शलिपपणि, ११८
शूलदण्ड, १३४
शूलगव, ४६
शूद्रक, ७८
श्वेताम्बर, ७६
श्रुतिमूलक, २
शत्रुनाशन, २५
शाङ्खायन, ५६
श्रुष, ७३
श्वेताम्बर, ७६
शक्तिधर, ७९
शरजन्मा, ८३

ष

षडानन, ११२
षण्णिष्कक, १६७
षट्कर्म, १६
षण्मुख, ७०, ७९, १०१
षष्ठी, १०७

स

स्नवन, १६८
स्कन्दबीज, १७१
सेनाध्यक्ष, १२७
सप्तपर्णा, १३३
सुवहला, १०६
स्वर्णाण्ड, १०७
सुब्रह्मण्य, ६३, ६६, ६८, ८०
समालोचना, ७४
सरिया, १०९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्रोतास्विनी, १
स्वानुभूत, ४
साधना, १३
सेमेटिक, १४
सौरागम, २३
सेखसुत्त, ५६
समुद्रगुप्त, ६८
सरकण्डा, ७२
स्तोष, ७३
स्कन्दनगर, ८१
सत्पुरुष, ११०

ह

हिरण्यगर्भ, ४७, ४९
हडप्पा, २०
हंस, २४
हरिदश्व, २४
हेरम्ब, ३३
हायकिन्स, ४०
हेरास, ६४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठीकल्पः

(SCRIPTURE OF ṢAṢṬHĪ MĀNAVA GṚHYASŪTRA II.13)

अथातः षष्ठीकल्पं व्याख्यास्यामः।।१।। शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यां प्रत्यङ्मुखो हविष्यमन्नमश्नीत।।२।। अधः शयीत दर्भेषु शालिपलालेषु वा प्राक्शिरा ब्रह्मचारी।।३।। श्वोभूत उदित आदित्ये स्नानं पानं भोजनमनुलेपनं स्रजो वासांसि न प्रत्याचक्षीत।।४।। यावद्दद्यात्तावदश्नीयात्। यद्यद्दद्यात्तत्तदश्नीयादन्यत्रामेध्यपातकिभ्योऽभिनिविष्टवर्जम्।।५।। अस्तमित आदित्ये पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा। अथैतैर्नामधेयैर्जुहोति—

धनदां वसुमीशानां कामदां सर्वकामिनाम्।
पुण्यां यशस्विनीं देवीं षष्ठीं शक्र जुषस्व मे।।१।।

नन्दी भूतिश्च लक्ष्मीश्च आदित्या च यशस्विनी।
सुमना वाक्च सिद्धिश्च षष्ठी मे दिशतां धनम्।।२।।

पुत्रान्पशून्धनं धान्यं बह्वश्चाजगवेडकम्।
मनसा यत्प्रणीतं च तन्मे दिशतु हव्यभुक्।।३।।

कामप्रदां रजनीं विश्वरूपां षष्ठीमुपवर्ततु मे धनम्।
सा मे कामा कामपत्नी षष्ठी मे दिशतां धनम्।।४।।

आकृतिः प्रकृतिर्वचनी धावनिः
पद्मचारिणी मन्मना भव स्वाहा।।५।।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।६।।

नानापत्रका सा देवी पुष्टिश्चातिसरस्वती।
अरिं देवीं प्रपद्येयमुपवर्तयतु मे धनम्।।७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिरण्यप्राकारा देवि मां वर।
आगच्छत्वायुर्यशश्च स्वाहा।।।।

अश्वपूर्णां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्।।

उपयन्तु मां देवगणास्त्वागाश्च तपसा सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् श्रीः श्रद्धां दधातु मे।।

श्रियै स्वाहा। ह्रियै स्वाहा। लक्ष्म्यै स्वाहा। उपलक्ष्म्यै स्वाहा। नन्दायै स्वाहा। हरिद्रायै स्वाहा। षष्ठ्यै स्वाहा। समृद्ध्यै स्वाहा। जयायै स्वाहा। कामायै स्वाहेति।।६।। जयप्रभृति समानम्।।७।। षण्मासान्प्रयुञ्जीत। त्रीन्वोभयतः पक्षान्।।८।। शतसाहस्रसंयोग एकवरो वा।।९।। गौरनड्वाँश्च दक्षिणा।।१०।।

[*Mānvava* G.S., pp. 53-4, ed. Dr. Friedrich Knauer, St. Petersburg, 1987; pp. 76-78, ed. of Śrī Bhīmasena Śarmā, Iṭāwā with Hindi Translation]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीसुब्रह्मण्यकवच प्रारम्भः

नारद उवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मन् वागीशतत्त्वतः।
सुब्रह्मण्यस्य कवचं कृपया वक्तुमर्हसि।।१।।

ब्रह्मोवाच

महर्षे शृणु मद्वाक्यं बहुना हि तवानघ।
मन्त्राश्च कोटिशस्सन्ति शम्भुविष्णवादिदैवताः।।२।।

सहस्रनाम्नाङ्कोट्यश्च ह्यङ्गन्यासाश्च कोटिशः।
उपमन्त्रास्त्वनेके च कोटिशस्सन्ति नारद।।३।।

मालामन्त्राः कोटिशश्च ह्यश्वमेधफलप्रदाः।
कुमारकवचन्दिव्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।।४।।

सर्वसम्पत्करं श्रीमद्वज्रसारसमान्विदम्।
सर्वात्मके शम्भुपुत्रे मतिरस्त्यत्र किन्तव।।५।।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि भक्तोऽसि त्वं महामते।
यस्येदं शरजं जन्म यदि वा स्कन्द एव च।।६।।

तेनैव लभ्यते चैतत्कवचं शङ्करोदितम्।
ऋषिच्छन्दोदेवताश्च कार्याः पूर्ववदेव च।।७।।

ध्यानन्तु ते प्रवक्ष्यामि येन स्वामिमयो भवेत्।
ओङ्कारह्रपिणं देवं सर्वदेवात्मकं प्रभुम्।।८।।

देवसेनापतिं शान्तं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
भक्तप्रियं भक्तिगम्यं भक्तानामार्तिभञ्जनम्।।९।।

भवानीप्रियपुत्रञ्च महाभयनिवारकम्।
शङ्करं सर्वलोकानां शङ्करात्मानमव्ययम्।।१०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वसंपत्प्रदं वीरं सर्वलोकैकपूजितम्।
एवं ध्यात्वा महासेनं कवचं वज्रपञ्जरम्।।११।।

पङ्क्तेन्नित्यं प्रयत्नेन त्रिकालं शुद्धिसंयुतः।
सत्यज्ञानप्रदं दिव्यं सर्वमङ्गलदायकम्।।१२।।

ॐ अस्य श्रीसुब्रह्मण्यकवचस्तोत्रमहामन्त्रस्य— परब्रह्म ऋषिः। देवी गायत्रीच्छन्दः। प्रसन्नज्ञानसुब्रह्मण्या देवता। ओं बीजम्। श्रीं शक्तिः। सौं कीलकम्। प्रसन्नज्ञानसुब्रह्मण्य प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। श्रीसुब्रह्मण्याय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। षट्त्रिंशत्कोणसंस्थिताय अनामिकाभ्यां नमः। सर्वतोमुखाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। तारकान्तकाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। श्रीसुब्रह्मण्याय हृदयाय नमः। शक्तिधराय शिरसे स्वाहा। षण्मुखाय शिखायै वषट्। षट्त्रिंशत्कोणसंस्थिताय कवचाय हुम्। सर्वतोमुखाय नेत्रत्रयाय वौषट्। तारकान्तकाय अस्त्राय फट्। भूर्भुवः सुवरोमिति दिग्बन्धः।।

ध्यानम्–

षड्वक्त्रं शिखिवाहनं त्रिनयनं चित्राम्बरालङ्कृतं
शक्तिं वज्रमसिं त्रिशूलमभयं खेटं धनुश्चक्रकम्।
पाशं कुक्कुटमङ्कुशश्च वरदं दोर्भिर्दधानं सदा
ध्यायेदीप्सितसिद्धये शिवसुतं स्कन्दं सुराराधितम्।।

द्विषड्भुजं षण्मुखमम्बिकासुतं कुमारमादित्यसमानतेजसम्।
वन्दे मयूरासनमग्निसम्भवं सेनान्यमद्याहमभीष्टसिद्धये।।२।।

[1](गाङ्गेयं वह्निगर्भं शरवणजनितं ज्ञानशक्तिं कुमारं
सुब्रह्मण्यं मयूरध्वजरथसहितं देवदेवं नमामि।।)

कनककुण्डलमण्डितषण्मुखं वनजराजिविराजितलोचनम्।
निशितशस्त्रशरासनधारिणं शरवणोद्भवमीशसुतं भजे।।३।।

इति ध्यात्वा लं पृथिव्यात्मने इत्यादिना पञ्चपूजा कार्या।।[2]

सुब्रह्मण्यः शिरः पातु शिखां पातु शिवात्मजः।
शिवः पातु ललाटं मे भ्रूमध्यं क्रौञ्चदारणः।।१।।

---

1. अस्य पूर्वार्धं न लभ्यते।
2.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रुवौ पातु कुमारो मे नेत्रे पातु त्रिनेत्रकः।
पायाद् गौरीसुतः श्रोत्रे गण्डयुग्मं हरात्मजः।।२।।

दक्षनासापुटद्वारं प्राणह्रपी महेश्वरः।
सर्वदेवात्मकः पातु जिह्वां सारस्वतप्रदः।।३।।

दन्तान् रक्षतु देवेशस्तालुयुग्मं शिवात्मजः।
देवसेनापतिः पातु चुबुकश्चाद्रिजासुतः।।४।।

पार्वतीनन्दनः पातु द्वावोष्ठौ मम सर्वदा।
षण्मुखो मे मुखं पातु सर्वदेवशिखामणिः।।५।।

सिंहगर्वापहन्ता मे ग्रीवां पातु सनातनः।
तारकासुरसंहन्ता कण्ठं दुष्टान्तकोऽवतु।।६।।

सुभुजो मे भुजौ पातु स्कन्धमग्निसुतो मम।
सन्धियुग्मं गुहः पातु करौ मे पातु पावनः।।७।।

कराङ्गुलीः श्रीकरोऽव्यात्सुररक्षणदीक्षितः।
वक्षःस्थलं महासेनस्तारकासुरसूदनः।।८।।

कुक्षिं पातु सदा देवः सुब्रह्मण्यः सुरेश्वरः।
उदरं पातु रक्षोहा नाभिं मे विश्वपालकः।।९।।

लोकेशः पातु पृष्ठं मे कटिं पातु धराधरः।
गुह्यं जितेन्द्रियः पातु शिश्नं पातु प्रजापतिः।।१०।।

अण्डद्वयं महादेव ऊरुयुग्मं सदा मम।
सर्वभूतेश्वरः पातु जानुयुग्ममघापहः।।११।।

जङ्घे मे विश्वभुक्पातु गुल्फौ पातु सनातनः।
वल्लीश्वरः पातु मम मणिबन्धौ महाबलः।।१२।।

पातु वल्लीपतिः पादौ पादपृष्ठं महाप्रभुः।
पादाङ्गुलीः श्रीकरो म इन्द्रियाणि सुरेश्वरः।।१३।।

त्वचं महीपतिः पातु रोमकूपांस्तु शाङ्करिः।
षाण्मातुरः सदा पातु सर्वदा च हरप्रियः।।१४।।

कार्त्तिकेयस्तु शुक्लं मे रक्तं शरवणोद्भवः।
वाचं वागीश्वरः पातु नादं मेऽव्यात्कुमारकः।।१५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वस्यान्दिशि सेनानीर्मां पातु जगदीश्वरः।
आग्नेय्यामग्निदेवश्च क्रतुह्वपी परात्परः।।१६।।

दक्षिणस्यामुग्रह्वपः सर्वपापविनाशनः।
खड्गधारी च नैर्ऋत्यां सर्वयक्षोनियामकः।।१७।।

पश्चिमस्यां दिशि सदा जलाधारो जितेन्द्रियः।
वायव्यां प्राणह्वपोऽव्यान्महासेनो महाबलः।।१८।।

उत्तरस्यान्दिशि सदा निधिकर्ता स पातु माम्।
शम्भुपुत्रस्सदा पातु दिश्यैशान्यां महाद्युतिः।।१९।।

ऊर्ध्वं ब्रह्मपतिः पातु चतुर्मुखनिषेचितः।
अधस्तात्पातु विश्वात्मा सदा ब्रह्माण्डभृत्परः।।२०।।

मध्यं पातु महासेनः शूरसंहारकृत्सदा।
अहङ्कारं मनो बुद्धिं स्कन्दः पातु सदा मम।।२१।।

गङ्गातीरनिवासी मामादियामे सदाऽवतु।
मध्ययामे सुरश्रेष्ठस्तृतीये पातु शाम्भवः।।२२।।

दिनान्ते लोकनाथो मां पूर्वरात्र्यां पुरारिजः।
अर्धरात्रे महायोगी निशान्ते कालह्वपधृत्।।२३।।

मृत्युञ्जयस्सर्वकालमन्तस्तु शिखिवाहनः।
बहिःस्थितं शक्तिधरः पातु मां योगिपूजितः।।२४।।

सर्वत्र मां सदा पातु योगविद्यो निरञ्जनः।
पातु मां पञ्चभूतेभ्यः पञ्चभूतात्मकस्सदा।।२५।।

तिष्ठन्तमग्निभूः पातु गच्छन्तं शूरसूदनः।
विशाखोऽव्याच्छयानं मां निषण्णन्तु सुरेश्वरः।।२६।।

मार्गे मे नीलकण्ठश्च शैलदुर्गेषु नायकः।
अरण्यदेशे दुर्गे चाभयन्दद्याद्भयापहः।।२७।।

भार्यां भद्रप्रदः पातु पुत्रान् रक्षेत् हरात्मजः।
पशून् रक्षेन्महातेजा धनं धनपतिर्मम।।२८।।

राजराजार्चितः पातु ह्रस्वदेहं महाबलः।
जीवनं पातु सर्वेशो महामणिविभूषणः।।२९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्योदये तु मां सर्वः ह्यश्विन्याद्याश्च तारकाः।
मेषाद्या राशयश्चैव प्रभवाद्याश्च वत्सराः।।३०।।

अयने द्वे षड् ऋतवो मासाश्चैत्रमुखास्तथा।
शुक्लकृष्णौ तथा पक्षौ तिथयः प्रतिपन्मुखाः।।३१।।

अहोरात्रे च यामादिमुहूर्ता घटिकास्तथा।
कलाः काष्ठादयश्चैव ये चान्ये कालभेदकाः।।३२।।

ते सर्वे गुणसंपन्नास्सन्तु सौम्यास्तदाज्ञया।
ये पक्षिणो महाक्रूरा उरगाः क्रूरदृष्टयः।।३३।।

उलूकाः काकसङ्घाश्च श्येनाः कङ्कादिसंज्ञकाः।
शुकाश्च सारिकाश्चैव गृध्राः कङ्का भयानकाः।।३४।।

ते सर्वे स्कन्ददेवस्य खड्गजालेन खण्डिताः।
शतशो विलयं यान्तु भिन्नपक्षा भयातुराः।।३५।।

ये द्रव्यहारिणश्चैव ये च हिंसापरा द्विषः।
ये प्रत्यूहकरा मर्त्या दुष्टमर्त्या दुराशयाः।।३६।।

दुष्टभूपालसन्दोहा ये भूभारकरास्सदा।
कार्यविघ्नकरा ये च ये खला दुष्टबुद्धयः।।३७।।

ये च मायाविनः क्रूरास्सर्वद्रव्यापहारिणः।
ये चापि दुष्टकर्माणो म्लेच्छाश्च यवनादयः।।३८।।

नित्यं क्षुद्रकरा ये च ह्यस्मद्बाधाकराः परे।
दानवा ये महादैत्याः पिशाचा ये महाबलाः।।३९।।

शाकिनी-डाकिनीभेदा वेताला ब्रह्मराक्षसाः।
कूष्माण्डभैरवाद्या ये कामिनी मोहिनी तथा।।४०।।

अपस्मारग्रहा ये च रक्तमांसभुजो हि ये।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ये च देवस्य योनयः।।४१।।

ये च प्रेताः क्षेत्रपाला ये विनायकसंज्ञकाः।
महामेषा महाव्याघ्रा महातुरगसंज्ञकाः।।४२।।

महागोवृषसिंहाद्या सैन्धवा ये महागजाः।
वानराश्शुनका ये च वराहा वनचारिणः।।४३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृकोष्ट्र-खरमार्जारा ये चातिक्षुद्रजन्तवः।
अघातभूता भूताङ्गग्रहग्राह्यप्रदायकाः।।४४।।

ज्वालामालाश्च तडितो दुरात्मानोऽतिदुःखदाः।
नानारोगकरा ये च क्षुद्रविद्या महाबलाः।।४५।।

मन्त्रयन्त्रसमुद्भूतास्तन्त्रकल्पितविग्रहाः।
ये स्फोटका महारोगा वान्तिका वैद्यकाश्च ये।।४६।।

सन्निपात-श्लेष्मकाश्च महादुःखकरास्तथा।
माहेश्वरा वैष्णवाश्च महाज्वराः।।४७।।

चातुर्थिकाः पाक्षिकाश्च मासषाण्मासिकाश्च ये।
सांवत्सरा दुर्निवार्या ज्वराः परमदारुणाः।।४८।।

सृष्टका ये महोत्पाता ये जाग्रत्स्वप्नदूषकाः।
ये ग्रहाः क्रूरकर्तारो ये वा बालग्रहादयः।।४९।।

महाशिनो मांसभुजो मनोबुद्धीन्द्रियापहाः।
स्फोटकाश्च महाघोराश्चर्ममांसास्थिसम्भवाः।।५०।।

दिवाचोरा रात्रिचोरा ये च सन्ध्यासु दारुणाः।
जलजास्थलजाश्चैव स्थावरा जङ्गमाश्च ये।।५१।।

विषप्रदाः कृत्रिमाश्च मन्त्रतन्त्रक्रिया-कराः।
मारणोच्चाटनोन्मूलद्वेषमोहनकारिणः।।५२।।

गरुडाद्याः पक्षिजाता उद्भिदश्चाण्डजाश्च ये।
कूटयुद्धकरा ये च स्वामिद्रोहकराश्च ये।।५३।।

क्षेत्रग्रामहरा ये च बन्धनोपद्रवप्रदाः।
मन्त्रा ये विविधाकारा ये च पीडाकरास्तथा।।५४।।

ये चोक्ता ये ह्यनुक्ताश्च भूपातालान्तरिक्षगाः।
ते सर्वे शिवपुत्रस्य कवचोच्चारणादिह।
सहस्रधा लयं यान्तु दूरादेव तिरोहिताः।।५५।।

फलश्रुतिः

इत्येतत्कवचं दिव्यं षण्मुखस्य महात्मनः।
सर्वसंपत्प्रदं नृणां सर्वकार्यार्थसाधनम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्ववश्यकरं पुण्यं पुत्रपौत्रप्रदायकम्।।५६।।
रहस्यातिरहस्यञ्च गुह्याद्गुह्यतरं महत्।
सर्वदेवप्रियकरं सर्वानन्दप्रदायकम्।।५७।।
अष्टैश्वर्यप्रदं नित्यं सर्वरोगनिवारणम्।
अनेन सदृशं वर्म नास्ति ब्रह्माण्डगोलके।।५८।।
सत्यं सत्यं पुनस्सत्यं शृणु पुत्र महामुने।
एकवारं जपन्नित्यं मुनितुल्यो भविष्यति।।५९।।
त्रिवारं यः पठेन्नित्यं गुरुध्यानपरायणः।
स एव षण्मुखस्सत्यं सर्वदेवात्मको भवेत्।।६०।।
पठतां यो भेदकृत्स्यात्पापकृत्स भवेद्ध्रुवम्।
कोटिसङ्ख्यानि वर्माणि नानेन सदृशानि हि।।६१।।
कल्पवृक्षसमञ्चेदं चिन्तामणिसमं मुने।
सकृत्पठनमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते।।६२।।
सप्तवारं पठेद्यस्तु रात्रौ पश्चिमदिङ्मुखः।
मण्डलान्निगडग्रस्तो मुच्यते न विचारणा।।६३।।
विद्वेषी च भवेद्वश्यः पठनादस्य वै मुने।
कृत्रिमाणि च सर्वाणि नश्यन्ति पठनाद्ध्रुवम्।।६४।।
यं यं च याचते कामं तन्तमाप्नोति पूरुषः।
नित्यं त्रिवारं पठनात्खण्डयेच्छत्रुमण्डलम्।।६५।।
दशवारं जपन्नित्यं त्रिकालज्ञो भवेन्नरः।
इन्द्रस्येन्द्रत्वमेतेन ब्रह्मणो ब्रह्मताऽभवत्।।६६।।
चक्रवर्तित्वमेतेन सर्वेषाञ्चैव भूभृताम्।
वज्रसारतमं चैतत् कवचं शिवभाषितम्।।६७।।
पठतां शृण्वताञ्चैव सर्वपापहरं परम्।
गुरुपूजापरो नित्यं कवचं यः पठेदिदम्।।६८।।
मातुस्तन्यं पुनः सोऽपि न पिबेन् मुनिसत्तम।
कुमारकवचञ्चेदं यः पठेत्स्वामिसन्निधौ।।६९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकृत्पठनमात्रेण स्कन्दसायुज्यमाप्नुयात्।
सेनानीरग्निभूः स्कन्दस्तारकारिर्गुणप्रियः।।७०।।

षाण्मातुरो बाहुलेयः कृत्तिकाप्रियपुत्रकः।
मयूरवाहनश्श्रीमान् कुमारः क्रौञ्चदारणः।।७१।।

विशाखः पार्वतीपुत्रस्सुब्रह्मण्यो गुहस्तथा।
षोडशैतानि नामानि शृणुयाच्छ्रावयेत्सदा।।७२।।

तस्य भक्तिश्च मुक्तिश्च करस्था नैव संशयः।
गोमूत्रेण तु पक्त्वान्नं भुक्त्वा षण्मासतो मुने।।७३।।

सहस्रं मूलमन्त्रञ्च जप्त्वा नित्यमतन्द्रितः।
सप्तविंशतिवारन्तु नित्यं यः प्रपठेदिदम्।।७४।।

वायुवेगमनोवेगौ लभते नात्र संशयः।
य एवं वर्षपर्यन्तं पूजयेद्भक्तिसंयुतः।।७५।।

ब्रह्मलोकञ्च वैकुण्ठं कैलासं समवाप्स्यति।
तस्मादनेन सदृशं कवचं भुवि दुर्लभम्।।७६।।

यस्य कस्य न वक्तव्यं सर्वथा मुनिसत्तम।
पठन्नित्यञ्च पूतात्मा सर्वसिद्धिमवाप्स्यति।
सुब्रह्मण्यस्य सायुज्यं सत्यञ्च लभते ध्रुवम्।।७७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे ईश्वरप्रोक्ते स्कन्दागमरहस्ये मन्त्रकल्पे ब्रह्मनारदसंवादे प्रसन्नज्ञानसुब्रह्मण्य-दिव्यमङ्गलकवचं संपूर्णम्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीसुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्रप्रारम्भः

ऋषय ऊचुः–

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ सर्वमोक्षार्थसाधक।
वयञ्चातिथयः प्राप्ता आतिथेयोऽसि साम्प्रतम्।।१।।

ज्ञानदानेन संसारसागरादुद्धरस्व नः।
कलौ कलुषचित्ता ये नराः पापरतास्सदा।
केन स्तोत्रेण मुच्यन्ते सर्वपातकबन्धनात्।।२।।

इष्टसिद्धिकरं पुण्यं दुःखदारिद्र्यनाशनम्।
सर्वरोगहरं स्तोत्रं सूत नो वक्तुमर्हसि।।३।।

श्रीसूतः–

शृणुध्वमृषयस्सर्वे नैमिषारण्यवासिनः।
तत्त्वज्ञानतपोनिष्ठास्सर्वशास्त्रविशारदाः।।४।।

स्वयंभुवा पुरा प्रोक्तं नारदाय महात्मने।
तदहं संप्रवक्ष्यामि श्रोतुं कौतूहलं यदि।।५।।

ऋषयः–

सूतपुत्र महाभाग वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
यदाह भगवान्ब्रह्मा नारदाय महात्मने।।६।।

श्रीसूतः–

दिव्यसिंहासनारूढं सर्वदेवैरभिष्टुतम्।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्येदं ब्रह्माणं भुवनेश्वरम्।
नारदः परिपप्रच्छ कृताञ्जलिरुपस्थितः।।७।।

नारदः–

लोकनाथ सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञ करुणाकर।
षण्मुखस्य तु यत्स्तोत्रं परमं पापनाशनम्।।८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तात त्वं पुत्रवात्सल्यात्तद्वद प्रणताय मे।
उपदिश्य तु मां देव रक्ष रक्ष कृपानिधे।।९।।

ब्रह्मा–

शृणु वक्ष्यामि देवर्षे स्तवराजमिदं परम्।
मातृकामालिकायुक्तं ज्ञानमोक्षसुखप्रदम्।।१०।।

सहस्राणि च नामानि षण्मुखस्य महात्मनः।
यानि नामानि पुण्यानि दुःखरोगहराणि च।
तानि नामानि वक्ष्यामि कृपया त्वयि नारद।।११।।

जपमात्रेण सिद्ध्यन्ति मनसा चिन्तितान्यपि।
इहामुत्र परं भोगं लभते नात्र संशयः।।१२।।

इदं स्तोत्रं परं पुण्यं कोटियज्ञफलप्रदम्।
सन्देहो नात्र कर्त्तव्यश्शृणु मे निश्चितं वचः।।१३।।

ॐ।। अस्य श्रीसुब्रह्मण्यसहस्रनाममातृकामालिकास्तोत्र-महामन्त्रस्य-ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीप्रसन्नज्ञानसुब्रह्मण्यो देवता। शरजन्माक्षय इति बीजम्। शक्ति जोऽक्षय इति शक्तिः। कार्त्तिकेय इति कीलकम्। क्रौञ्चभेदीत्यर्गलम्। शिखिवाहन इति कवचम्। षण्मुख इति ध्यानम्। प्रसन्नज्ञानसुब्रह्मण्यप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।। अथ करन्यासः। ॐ शं, ॐङ्कारस्वह्रपाप ओजोधराय ओजस्विने सुहृद्याय हृष्टचित्तात्मने भास्वद्रूपाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ रं, षट्कोणमध्यनिलयाय षट्किरीटधराय श्रीमते षडाधाराय षडाननाय ललाटषण्णेत्राय अभयवरदहस्ताय तर्जनीभ्यां नमः।। ॐ वं, षण्मुखाय शरजन्मने शुभलक्षणाय शिखिवाहनाय षडक्षराय स्वामिनाथाय मध्यमाभ्यां नमः।। ॐ णं, कृशानुसंभवाय कवचिने कुक्कुटध्वजाय शूरमर्दनाय कुमाराय सुब्रह्मण्याय अनामिकाभ्यां नमः।। ॐ भं, कन्दर्पकोटिदिव्यविग्रहाय द्विषड्बाहवे द्वादशाक्षराय नित्यज्ञानस्वह्रपाय द्वादशाक्षाय मूलप्रकृतिरहिताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः।। ॐ वं, सच्चिदानन्दस्वह्रपाय सर्वह्रपात्मने खेटधराय खड्गिने शक्तिहस्ताय ब्रह्मैकह्रपिणे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।।

अथ हृदयादिन्यासः।। ॐ शं, ओङ्कारस्वह्रपाय ओजोधराय ओजस्विने सुहृद्याय हृष्टचित्तात्मने भास्वद्रूपाय हृदयाय नमः।। ॐ रं, षट्कोणमध्यनिलयाय षट्किरीटधराय श्रीमते षडाधाराय षडाननाय ललाटषण्णेत्राय अभयवरदहस्ताय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिरसे स्वाहा।। ॐ वं, षण्मुखाय शरजन्मने शुभलक्षणाय शिखिवाहनाय षडक्षराय स्वामिनाथाय शिखायै वषट्। ॐ णं, कृशानुसंभवाय कवचिने कुक्कुटध्वजाय शूरमर्दनाय कुमाराय सुब्रह्मण्याय कवचाय हुम्। ॐ भं, कन्दर्पकोटिदिव्यविग्रहाय द्विषड्बाहवे द्वादशाक्षराय नित्यज्ञानस्वह्रपाय द्वादशाक्षाय मूलप्रकृतिरहिताय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ वं, सच्चिदानन्दस्वह्रपाय सर्वह्रपात्मने खेटधराय खड्गिने शक्तिहस्ताय ब्रह्मैकह्रपिणे अस्त्राय फट्। भूर्भुवस्सुवरोमिति दिग्बन्धः।।

ध्यानम्–

ध्यायेत्षण्मुखमिन्दुकोटिसदृशं रत्नप्रभाशोभितं
बालार्कद्युतिषट्किरीटविलसत्केयूरहारान्वितम्।
कर्णालम्बितकुण्डलप्रविलसद्दण्डस्थलैश्शोभितं
काञ्चीकङ्कणकिङ्किणीरवयुतं शृङ्गारसारोदयम्।।१।।

षड्वक्त्रं शिखिवाहनं त्रिनयनं चित्राम्बरालङ्कृतं
वज्रं शक्तिमसिं त्रिशूलमभयं खेटं धनुश्चक्रकम्।
पाशङ्कुक्कुटमङ्कुशं च वरदं दोर्भिर्दधानं सदा
ध्यायेदीप्सितसिद्धिदं शिवसुतं स्कन्दं सुराराधितम्।।

द्विषड्भुजं षण्मुखमम्बिकासुतं कुमारमादित्यसहस्रतेजसम्।
वन्दे मयूरासनमग्निसम्भवं सेनान्यमद्याहमभीष्टसिद्धये।।३।।

अथ पञ्चोपचारपूजा कार्या। लं पृथिव्यात्मने गन्धं समर्पयामि। हं आकाशात्मने पुष्पाणि समर्पयामि। यं वाय्वात्मने धूपमाघ्रापयामि। रं अग्न्यात्मने दीपं सन्दर्शयामि। वं अमृतात्मने अमृतं निवेदयामि। सं सर्वात्मने सर्वोपचारान्समर्पयामि।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहस्रनामस्तोत्रप्रारम्भः

अचिन्त्यशक्तिरनघो ह्यक्षोभ्यस्त्वपराजितः।
अनाथवत्सलोऽमोघस्त्वशोको ह्यजरोऽभयः।।१।।

अत्युदारो ह्यघहरस्त्वग्रगण्योऽद्रिजासुतः।
अनन्तमहिमापारोऽनन्तसौख्योऽन्नदोऽव्ययः।।२।।

अनुत्तमोऽक्षयोऽनादिरप्रमेयोऽक्षरोऽच्युतः।
अकल्मषोऽभिरामोऽग्रधुर्यस्त्वमितविक्रमः।।३।।

अतुलश्चामृतोऽघोरो ह्यनन्तोऽनन्तविक्रमः।
अनाथनाथो ह्यमलो ह्यप्रमत्तोऽमरप्रभुः।।४।।

अरिन्दमोऽखिलाधारो ह्यणिमादिगुणाग्रणीः।
अचञ्चलोऽमरस्तुत्योऽकलङ्कस्त्वमिताशनः।।५।।

अग्निभूरनवद्याङ्गो ह्यद्भुतोऽभीष्टदायकः।
अतीन्द्रियोऽप्रमेयात्मा ह्यदृश्योऽव्यक्तलक्षणः।।६।।

आपद्विनाशनश्चार्य आढ्य आगमसंस्तुतः।
आर्तसंरक्षणश्चाद्य आनन्दी चार्यसेवितः।।७।।

आश्रितेष्टार्थवरद आनन्दार्थफलप्रदः।
आश्चर्यह्यपश्चानन्द आपन्नार्तिविनाशनः।।८।।

आराधितपदद्वन्द्व आगमार्थविशारदः।
आनन्दसुन्दराकार आब्रह्मस्तम्बह्यपकः।।९।।

आधारषट्कनिलय आदिमध्यान्तवर्जितः।
आब्रह्मकीटजनक आखण्डलसुताधिपः।।१०।।

इभवक्रानुजोऽपीष्ट इभासुरहरात्मजः।
इतिहाससुसंस्तुत्य इन्द्रभोगफलप्रदः।।११।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इष्टापूर्तफलप्राप्तिरिष्टेष्टवरदायकः।
इहामुत्रेष्टफलद इष्टदस्त्विन्द्रवन्दितः।।१२।।

ईडनीयस्त्वीशपुत्र ईप्सितार्थप्रदायकः।
ईतिभीतिहरस्त्वीड्य ईषणात्रयवर्जितः।।१३।।

ईश्वरार्पितवेदार्थ ईश्वरप्रियनन्दनः।
ईश्वराङ्कविहारी चेशिता चेश्वरह्वपधृत्।।१४।।

उदारकीर्तिरुद्योगी चोत्कृष्टोरुपराक्रमः।
उत्कृष्टशक्तिरुत्साह उदारश्चोत्सवप्रियः।।१५।।

उज्जृंभ उद्भवश्चोग्र उदग्रश्चोग्रलोचनः।
उन्मत्त उग्रशमन उद्वेगघ्नोरगेश्वरः।।१६।।

उरुप्रभावश्चोदीर्ण उमासूनुरुदारधीः।
उदग्रवैभवोदग्रबुद्धिदोदग्रहेतिमान्।।१७।।

ऊर्ध्वरेतस्सुतश्चोर्ध्वगतिदश्चोर्मिपालकः।
ऊर्जितश्चोर्ध्वगश्चोर्ध्व ऊर्ध्वलोकैकनायकः।।१८।।

ऊर्जावानूर्जितोदार ऊर्जितोर्जितशासनः।
ऊरीकृतधनुर्बाण ऊर्मिषट्कविनाशनः।।१९।।

ऋषिदेवगणस्तुत्य ऋणत्रयविमोचनः।
ऋजुह्वपोह्यृजुकर ऋजुमार्गप्रदर्शकः।।२०।।

ऋतम्भर ऋजुप्रीत ऋषभो ऋद्धिदश्च ऋक्।
ऋग्वेदादिस्वह्वपश्च ऋद्धात्मा ऋषिपूजितः।।२१।।

ऋलेखवत्त्रिनाड्यन्तस्सुषुम्णानाडिमध्यगः।
[1]ऋकृत् स्वप्नाद्यजाग्रान्तमध्यो ह्यृतम्भरात्मकः।।२२।।

लुलितोद्धारको लुब्धजनदूरो लृनामकः।
लुप्ताचारमनोदूरो लुप्तदुःखो लुलत्प्रभः।।२३।।

लूनमायासुरो लूनसंसाराख्यमहावनः।
एणाङ्कधरसत्पुत्र एक एनौघनाशनः।।२४।।

---

1. ॠगतो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकाग्रध्यानशीलश्चाप्येकान्तध्यानपूजितः।
ऐश्वर्यदश्चैन्द्रभोगी चैतिहाश्चैन्द्रवन्दितः।।२५।।

ऐशानपदसन्दायी चैन्द्रदिक्पालजाधिपः।
ओजस्वी चौषधिस्थानमोजोदश्चौदनप्रदः।।२६।।

ओङ्कारह्वपीचौङ्कार ओङ्कारार्थविशारदः।
औदार्यशीलश्चौमेय औग्र औन्नत्यदायकः।।२७।।

औदार्यस्त्वौषधकर औषधश्चौषधाकरः।
अंशुमानंशुमालीड्य अम्बिकातनयोऽन्नदः।।२८।।

अन्धकारिसुतोऽन्धत्वहारी चाम्बुजलोचनः।
अस्तमायस्त्वर्पणार्हस्त्वस्पष्टोऽस्तोकपुण्यदः।।२९।।

अस्तामित्रोऽस्तह्वपश्चाप्यस्खलद्गतिदायकः।
कार्त्तिकेयः कामह्वपः कुमारः क्रौञ्चदारणः।।३०।।

कामदः कारणं काम्यः कमनीयः कृपाकरः।
काञ्चनाभः कान्तियुक्तः कामः कामप्रदः कविः।।३१।।

कीर्तिकृत्कुक्कुटधरः कूटस्थः कुवलेक्षणः।
कुङ्कुमाङ्गः क्लमहरः कुशलः कुक्कुटध्वजः।।३२।।

कृशानुसम्भवः क्रूरः क्रूरघ्नः कलितापहृत्।
कामह्वपः कल्पतरुः कान्तः कामितदायकः।।३३।।

कल्याणकृत्क्लेशनाशः कृपालुः करुणाकरः।
कलुषघ्नः क्रियाशक्तः कठोरः कवची कृती।।३४।।

कोमलाङ्गः कुहूप्रीतः कुत्सितघ्नः कलाधरः।
ख्यातः खेटधरः खड्गी खट्वाङ्गी खलनिग्रहः।।३५।।

ख्यातिप्रदः खेचरेशः खातैनाः खेचरस्तुतः।
खरतापहरः खस्थः खेचरः खेचराश्रयः।।३६।।

खण्डेन्दुमौलितनयः खेलाखेचरपालकः।
खस्थप्रियः खण्डिताघः खेचरीजनपूजितः।।३७।।

खेटाद्यायुधसम्पन्नः खर्वेतरपदप्रदः।
गाङ्गेयो गिरिजापुत्रो गणनाथानुजो गुहः।।३८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोप्ता गीर्वाणसंसेव्यो गुणातीतो गुहाश्रयः।
गतिप्रदो गुणनिधिर्गम्भीरो गिरिजात्मजः।।३९।।

गूढह्रपो गदहरो ग्रहाधीशो गणाग्रणीः।
गोधरो गहनो गुप्तो गर्वघ्नो गुणवर्धनः।।४०।।

गुह्यो गुणज्ञो गीतिज्ञो गतातङ्को गुणोत्तरः।
गद्यपद्यप्रियो गण्यो गोस्तुतो गगनेचरः।।४१।।

गणनीयचरित्रश्च गतक्लेशो गुहाश्रयः।
घूर्णिताक्षो घृणिनिधिः घनगम्भीरघोषणः।।४२।।

घण्टानादप्रियो घोषो घोराघौघविनाशनः।
घनप्रियो घनानन्दो घृणावान् घृष्टपातकः।।४३।।

घृणिर्घृणाकरोऽघोरो घोरदैत्यप्रहारकः।
घटितैश्वर्यसन्दोहो घनर्द्धिर्घनविक्रमः।।४४।।

घृणिमण्डलह्रपश्च घनसम्पत्प्रदो घनः।
ङकारस्वरणस्सर्वरन्ध्रस्थत्रिपुटीप्रभः।।४५।।

ङणत्घण्टारवान्तःस्थो ङणारावततिप्रियः।
ङकाराकारकद्वन्द्वसर्वसन्ध्याप्तचिन्मयः।।४६।।

चित्रकृच्चित्रवर्णश्च चञ्चलश्चपलाद्युतिः।
चिन्मयश्चित्स्वह्रपश्च चिदानन्दश्चिरन्तनः।।४७।।

चित्रकेलिश्चित्रतरश्चिन्तनीयश्चमत्कृतिः।
चोरघ्नश्चतुरश्चारुश्चामीकरविभूषणः।।४८।।

चन्द्रार्ककोटिसदृशश्चन्द्रमौलितनूद्भवः।
चेटीभूतप्रपञ्चश्च चण्डश्चण्डोरुविक्रमः।।४९।।

छादिताङ्गच्छद्महन्ता छेदिताखिलपातकः।
छेदीकृतमहाक्लेशश्छत्रीकृतमहायशाः।।५०।।

छेदिताशेषसन्ताप[1]श्छुरितानीकसागरः।
छेदिताशेषदैत्योघश्छातैनाश्छिन्नसंशयः।।५१।।

---

1. छुरछेदने इति धातुः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छन्दोमयश्छन्दगामी छिन्नपाशश्छविच्छदः।
छेदिताशेषसंसारश्छव्यग्नीन्दुविलोचनः।।५२।।

जगद्धितो जगत्पूज्यो जगज्ज्येष्ठो जगन्मयः।
जनको जाह्नवीसूनुर्जितामित्रो जगद्गुरुः।।५३।।

जयी जितेन्द्रियो जेता जरामरणवर्जितः।
ज्योतिर्मयो जगन्नाथो जगज्जीवो जनाश्रयः।।५४।।

जगद्वन्द्यो जगच्छ्रेष्ठो जितक्लेशो जगद्विभुः।
जगत्सेव्यो जगत्कर्ता जगत्साक्षी जगत्प्रियः।।५५।।

जम्भारिवन्द्यो जयदो जगज्जनमनोहरः।
जगदानन्दजनको जनजाड्यापहारकः।।५६।।

जपाकुसुमसङ्काशो जनलोचनशोभनः।
जनेश्वरो जगद्भव्यो जनजन्मनिबर्हणः।।५७।।

जयदो जन्तुतापघ्नो जितदैत्यमहापथः।
जितमायो जितक्रोधो जितसङ्गो जनप्रियः।।५८।।

झंझलिनमहावेगो [1]झटिताशेषपातकः।
झर्झरीकृतदैत्यौघो झल्लरीवाद्यसुप्रियः।।५९।।

ज्ञानमूर्तिर्ज्ञानगम्यो ज्ञानी ज्ञानमहानिधिः।
ज्ञानोपदेशकर्ता च ज्ञानदो ज्ञानदेशिकः।।६०।।

टङ्कारनृत्तविभवष्टङ्कवज्रध्वजाङ्कितः।
[2]टङ्किताखिललोकश्च टङ्कितैनस्तमोरविः।।६१।।

''कारमध्यनिलयष्ठवर्णाकारमण्डलः।
उपदान्तश्श्रूयमाणनादह्वपष्ठकारकः।।६२।।

डम्बरप्रभवो डम्भो डमड्डमरुकप्रियः।
[3]डमरोत्कटसन्नादो डिम्भह्वपस्वह्वपकः।।६३।।

---

1. झटितः=नाशितः।
2. टकिबन्धने।।
3. डमरः=शस्त्रकलहः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढक्कानादप्रीतिकरो ढालितासुरसंकुलः।
ढौकितामरसन्दोहो ढुण्ढिविघ्नेश्वरानुजः।।६४।।

णकारबिन्दुद्वन्द्वैक्यज्ञानेनाश्चर्यकारकः।
णबिन्दुत्रयवन्मध्यबिन्द्वाश्लिष्टद्विवल्लिकः।।६५।।

तत्त्वज्ञस्तत्त्वगस्तीव्रस्तपोह्वपस्तपोमयः।
त्रयीमयस्त्रिकालज्ञस्त्रिमूर्तिस्त्रिगुणात्मकः।।६६।।

त्रिदशेशस्तारकारिस्तापघ्नस्तापसप्रियः।
तुष्टिदस्तुष्टिकृत्तीक्ष्णस्तपोह्वपस्त्रिकालवित्।।६७।।

स्तोता स्तव्यः स्तवप्रीतः स्तुतिः स्तोत्रं स्तवप्रियः।
तारेशपूजितस्तथ्यस्तुम्बुह्वनारदार्चितः।।६८।।

स्थिरस्स्थायी स्थापकश्च स्थूलसूक्ष्मप्रदर्शकः।
स्थविष्ठः स्थविरस्थूलस्थानदस्स्थैर्यदस्स्थिरः।।६९।।

दान्तो दयापरो दाता दुरितघ्नो दुरासदः।
दर्शनीयो दयासारो देवदेवो दयानिधिः।।७०।।

दुराधर्षो दुर्विगाह्यो दक्षो दर्पणशोभितः।
दुर्धरो दानशूरश्च द्वादशाक्षो द्विषड्भुजः।।७१।।

द्विषट्कर्णो द्विषण्णेत्रो दीनसन्तापनाशनः।
दन्दशूकेश्वरो देवो दिव्यो दिव्याकृतिर्दमः।।७२।।

दीर्घपृष्ठो दीर्घबाहुर्दीर्घदृष्टिर्दिवस्पतिः।
दण्डो दमयिता दर्पो देवसिंहो दृढव्रतः।।७३।।

दुर्लभो दुर्गमो दीप्तो दुष्प्रेक्ष्यो दिव्यमङ्गलः।
दुरोदरघ्नो दुःखघ्नो दुरारिघ्नो दिशां पतिः।।७४।।

दुर्जयो देवसेनेशो दुर्ज्ञेयो दुरतिक्रमः।
दंभो दृप्तश्च देवर्षिर्दैवज्ञो दैवचिन्तकः।।७५।।

धुरन्धरो धर्मपरो धनदो धृतिवर्द्धनः।
धर्मेशो धर्मशास्त्रज्ञो धन्वी धर्मपरायणः।।७६।।

धनाध्यक्षो धनपतिर्धृतिमान्धूतकिल्बिषः।
धर्महेतुर्धर्मगुरुर्धर्मकृद्धर्मविद्ध्रुवः।।७७।।

धाता धीमान्धर्मचारी धन्यो धुर्यो धृतव्रतः।
धरित्रीमण्डलाध्यक्षो धनधान्यविवर्द्धनः।।७८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्योत्सवो नित्यतृप्तो निर्लेपो निश्चलात्मकः।
निरवद्यो निराधारो निष्कलङ्को निरञ्जनः।।७९।।

निर्मायो निरहङ्कारो निर्मोहो निरुपद्रवः।
नित्यानन्दो निरातङ्को निष्प्रपञ्चो निरामयः।।८०।।

निरवद्यो निरीहश्च निर्द्वन्द्वो निर्मलात्मकः।
नीरजाक्षो निर्जरेशो निस्सङ्गो निगमस्तुतः।।८१।।

निष्कण्टको निरालम्बो निष्प्रत्यूहो निरुद्भवः।
नित्यो नियतकल्याणो निर्विकल्पो निराश्रयः।।८२।।

नेता निधिर्नैकरूपो निराकारो नदीसुतः।
नानायुधधरो नाथो नानासाम्राज्यदायकः।।८३।।

नागपाशधरो नन्दी नारदादिसुपूजितः।
नाट्योत्सुको नदीसूनुर्नगारिप्रियदायकः।।८४।।

नक्षत्ररूपी नक्षत्रं नेता नित्योत्सुको नटः।
निर्मलो निरहङ्कारो नित्याभीष्टफलप्रदः।।८५।।

पुलिन्दकन्यारमणः पुरजित्परमप्रियः।
प्रत्यक्षमूर्तिः प्रत्यक्षं परेशः पूर्णपुण्यदः।।८६।।

पुण्याकरः पुण्यरूपः पुण्यः पुण्यपरायणः।
पुण्योदयः परज्योतिः पुण्यकृत्पुण्यवर्द्धनः।।८७।।

परानन्दः परतरः पुण्यकीर्तिः पुरातनः।
प्रसन्नरूपः प्राणेशः पन्नगः पापनाशनः।।८८।।

प्रणतार्तिहरः पूर्णः पार्वतीनन्दनः प्रभुः।
पूतात्मा पुरुषः प्राणः प्रभवः पुरुषोत्तमः।।८९।।

प्रसन्नः परमश्रेष्ठः पटुः परिवृढः परः।
परमात्मा परब्रह्म परर्द्धिः प्रियदर्शनः।।९०।।

पवित्रं पुष्टिदः पूर्तिः पिङ्गलः पुष्टिवर्द्धनः।
पापघ्नः पाशहस्तश्च प्रमत्तासुरशिक्षकः।।९१।।

पावनः पावकः पूज्यः पूर्णानन्दः परात्परः।
पुष्करः प्रवरः पूर्वः पितृभक्तपुरोगमः।।९२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राणदः प्राणिजनकः प्रतिष्ठा पावकोद्भवः।
परब्रह्मस्वह्नपश्च परमैश्वर्यकारणम्।।९३।।

परर्द्धिदः पुष्टिकरः प्रकाशात्मा प्रतापवान्।
प्रज्ञाकरः प्रकृष्टार्थः पृथुः पृथुपराक्रमः।।९४।।

पूतनाजीवहरणजामाता पूर्णविग्रहः।
फणीश्वरः फणिवरः फणामणिविभूषितः।।९५।।

फलदः फलहस्तश्च फुल्लाम्बुजविलोचनः।
फडुच्चाटितपापौघः फणिलोकविभूषणः।।९६।।

फणिसङ्घाऽऽदरापीतनिजवाणीरसामृतः।
बाहुलेयो बृहद्रूपो बलिष्ठो बलवान्बलः।।९७।।

ब्रह्मेशविष्णुह्नपश्च बुद्धिर्बुद्धिमतां वरः।
बालह्नपो बृहद्गर्भो ब्रह्मचारी बुधप्रियः।।९८।।

बहुश्रुतो बहुमतो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः।
बलप्रमथनो ब्रह्मा बहुह्नपो बहुप्रदः।।९९।।

बृहद्भानुतनूद्भूतो बृहद्बाहुर्विलीशयः।
बहुबाहुर्बलश्रीमान् बहुदैत्यविनाशकः।।१००।।

बिलद्वारान्तरालस्थो बृहच्छक्तिधनुर्धरः।
बालार्कद्युतिमान्बालो बृहद्वक्षा बृहद्धनुः।।१०१।।

बद्धत्तूणीरांसदेशो बद्धपाशविमोचनः।
भव्यो भोगीश्वरो भाव्यो भवनाशो भवप्रियः।।१०२।।

भक्तिगम्यो भयहरो भावज्ञो भजनप्रियः।
भुक्तिमुक्तिप्रदो भोगी भगवान्भाग्यवर्द्धनः।।१०३।।

भ्राजिष्णुर्भावनो भर्ता भीमो भीमपराक्रमः।
भूतिदो भूतिकृद्भोक्ता भूतात्मा भुवनेश्वरः।।१०४।।

भावुको भीकरो भीष्मो भावुकेष्टो भवोद्भवः।
भवतापप्रशमनो भोगवान्भूतभावनः।।१०५।।

भोज्यप्रदो भ्रान्तिनाशो भानुमान्भुवनाश्रयः।
भूरिभोगप्रदो भद्रो भजनीयो भिषग्वरः।।१०६।।

भक्तेष्टदाननिरतो भार्गवाद्यभिवन्दितः।
महासेनो महोदारो महाशक्तिर्महाद्युतिः।।१०७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाबुद्धिर्महावीरो महोत्साहो महाबलः।
महाभागो महामायी मेधावी मेखली महान्।।१०८।।

मुनिस्तुतो महामान्यो महानन्दो महायशाः।
महोर्जितो माननिधिर्मनोरथफलप्रदः।।१०९।।

महोदयो महापुण्यो महाबलपराक्रमः।
मानदो मतिदो मानी मुक्तामालाविभूषणः।।११०।।

मनोहरो महामुख्यो महर्द्धिर्मूर्तिमान्मुनिः।
महोत्तमो महोपायो मोक्षदो मङ्गलप्रदः।।१११।।

मुदाकरो मुक्तिदाता महाभोगो महोरगः।
यशस्करो योगयोनिर्योगिष्ठो यमिनां वरः।।११२।।

यशस्वी योगपुरुषो योग्यो योगनिधिर्यमी।
यमिसेव्यो योगयुक्तो योगविद्योगसिद्धिदः।।११३।।

यन्ता यन्त्री च यन्त्रज्ञो यन्त्रवान्यन्त्रनायकः।
यातनारहितो योगीयोगीशो योगिनां वरः।।११४।।

योगाराध्यपदद्वन्द्वो यमाद्यष्टाङ्गसाधकः।
रमणीयो रम्यरूपो रसज्ञो रसभावुकः।।११५।।

रञ्जनो रञ्जितो रागी रुजारी रुद्रसम्भवः।
रणप्रियो रणोदारो रागद्वेषविनाशनः।।११६।।

रत्नार्चीरुचिरो रम्यो रूपलावण्यविग्रहः।
रत्नाङ्गदधरो रत्नभूषणो रमणीयकः।।११७।।

रुचिकृद्रोचमानश्च रञ्जितो रोगनाशनः।
राजीवाक्षो राजराजो रक्तमाल्यानुलेपनः।।११८।।

राजद्वेदागमस्तुत्यो रजस्सत्त्वगुणान्वितः।
रजनीशकलारम्यो रत्नकुण्डलमण्डितः।।११९।।

रत्नसन्मौलिशोभाढ्यो रणन्मञ्जीरभूषणः।
रसवक्त्रधरो रागी रञ्जनीयपदाम्बुजः।।१२०।।

लोकैकनाथो लोकेशलालितो लोकनायकः।
लोकशिक्षो लोकरक्षो लोकलोचनरञ्जितः।।१२१।।

लोकचूडामणिर्लोलो लावण्यो लयवर्जितः।
लोकाध्यक्षो लोकवन्द्यो लोकोत्तरगुणाकरः।।१२२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

लोकबन्धुर्लोकदाता लोकत्रयमहाहितः।
लोकातीतगुणोपेतो लोकालोकस्वह्रपवान्।।१२३।।

लास्यप्रियो लास्यदर्शी लताकुसुमपूजितः।
लब्धमानो लब्धरसो लब्धहर्षो लसत्करः।।१२४।।

वरिष्ठो वरदो वन्द्यो विशिष्टो विक्रमी विभुः।
विबुधाग्रचरो विश्वं विकल्पपरिवर्जितः।।१२५।।

विपाशो विगतातङ्को विचित्राङ्गो विरोचनः।
विद्याधरो विशुद्धात्मा वेदाङ्गो विबुधप्रियः।।१२६।।

वर्चस्करो व्यापकश्च विज्ञानी विनयान्वितः।
विद्वत्तमो विरोधिघ्नो वीरो वीरासनो विधिः।।१२७।।

वीतरागो विनीतात्मा वेदगर्भो विराड्वपुः।
विश्वदीप्तिर्विशालाक्षो विजितात्मा विभावनः।।१२८।।

वेदवेद्यो विधेयात्मा वीतदोषा वसुप्रदः।
विश्वकर्मा वीतभयो वागीशो वासवार्चितः।।१२९।।

वेदविद्विश्वह्रपश्च विश्वमूर्तिर्वरासनः।
वाग्मी वेदधरो विद्वान् विशाखो विमलो वटुः।।१३०।।

वीरचूडामणिर्वीरविजयो विबुधाश्रयः।
विजयी विनयी वेत्ता वरीयान्विरजा वसुः।।१३१।।

वीरघ्नो विज्वरो वेद्यो वेगवान्वीर्यवान्वशी।
वरशीलो वरगुणो विशोको वज्रधारकः।।१३२।।

शरजन्मा शक्तिधरश्शत्रुघ्नश्शिखिवाहनः।
श्रीमान् शिष्टश्शुचिश्शुद्धश्शाश्वतः श्रुतिसागरः।।१३३।।

शरण्यश्शुभदश्शर्म शिष्टेष्टश्शुभलक्षणः।
शान्तश्शूलधरश्श्रेष्ठश्शुद्धात्मा शङ्करश्शिवः।।१३४।।

शितिकण्ठात्मजश्शूरश्शान्तिदश्शोकनाशनः।
शूरसंहारदक्षश्च शिष्टचारप्रपूजितः।।१३५।।

षाण्मातुरष्षण्मुखश्च षड्गुणैश्वर्यसंयुतः।
षट्चक्रस्थष्षडूर्मिघ्नष्षडङ्गश्रुतिपारगः।।१३६।।

षड्भावरहितष्षट्कष्षट्शास्त्रस्मृतिपारगः।
षड्वर्गह्रपष्षड्ग्रीवष्षडरिघ्नष्षडाश्रयः।।१३७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षट्किरीटधरश्श्रीमान् षडाधारश्च षट्क्रमः।
षट्कोणमध्यनिलयष्षण्डत्वपरिहारकः।।१३८।।

सेनानीस्सुभगस्स्कन्दस्सुरानन्दस्सतां गतिः।
सुब्रह्मण्यस्सुराध्यक्षस्सर्वज्ञः सर्वगस्सुखी।।१३९।।

सुलभस्सिद्धिदस्सौम्यस्सिद्धेशस्सिद्धिसाधनः।
सिद्धार्थस्सिद्धसङ्कल्पस्सिद्धस्साधुस्सुरेश्वरः।।१४०।।

सुभुजस्सर्ववित्साक्षी सुप्रसादस्सनातनः।
सुधापतिस्स्वयंज्योतिस्स्वयंभूस्सर्वतो मुखः।।१४१।।

समर्थस्सत्कृतस्सूक्ष्मस्सुमुखस्सुखदस्सुहृत्।
सुप्रसन्नस्सुरश्रेष्ठस्सुशीलस्सत्यसाधकः।।१४२।।

संभाव्यस्सुमनस्सेव्यस्सकलागमपारगः।
सुव्यक्तस्सच्चिदानन्दस्सुवीरस्सुजनाश्रयः।।१४३।।

सर्वलक्षणसम्पन्नस्सत्यधर्मपरायणः।
सर्वदेवमयस्सत्त्वं सदामृष्टान्नदायकः।।१४४।

सुधन्वा सुमतिस्सत्यस्सर्वविघ्नविनाशकः।
सर्वदुःखप्रशमनस्सुकुमारस्त्रिलोचनः।।१४५।।

सुग्रीवस्सुशिरास्सारस्सुराध्यक्षस्सुरारिहा।
सुविक्रामस्सर्ववर्णस्सर्पराजस्सदाशुचिः।।१४६।।

सप्तार्चिर्भूस्सुरवरस्सर्वायुधविशारदः।
सर्वलोकैकनाथश्च साम्बाराधनतत्परः।।१४७।।

हस्तिचर्माम्बरसुतो हस्तिवाहनसेवितः।
हस्त्यश्ववाहनो हस्ती हर्षदैत्यहरानुजः।।१४८।।

हकाररूपी हंसात्मा हलभृद्धरिपूजितः।
हविर्हरिद्रावर्णश्च हृताघो हसिताननः।।१४९।।

हेमभूषो हरिद्वर्णो हृष्टिदो हृष्टिवर्द्धनः।
हेलाद्रिविध्वंसकारी हुङ्कारहृतकिल्बिषः।।१५०।।

हिमाद्रिजातनूद्भूतो हरिकेशो हिरण्मयः।
हृद्यो हृष्टो हरिसखो हंसो हंसगतिर्हविः।।१५१।।

---

1. हर्ष इति कश्चनदैत्यः तस्य संहर्ता गणेशः तस्यानुजः। हृतदैत्योहरात्मजः इत्यपि क्वचित्पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिरण्यवर्णो हितकृद्धर्षदो हेमभूषणः।
हरप्रियो हितकरो हतपापो हृदोद्भवः।।१५२।।

क्षेमदः क्षेमकृत्क्षेम्यः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रवर्जितः।
क्षेत्रपालः क्षमाधारः क्षेम्यः क्षेत्रं क्षमाकरः।।१५३।।

क्षुत्तृड्घः क्षान्तिदः क्षेमी क्षितिभूषः क्षमाश्रयः।
क्षळिताघः क्षितिधरः क्षीणसंरक्षणक्षमः।।१५४।।

फलश्रुतिः

नाम्नां सहस्रं स्कन्दस्य [1]वेदभूतधरामितैः।
श्लोकैरनुष्टुप्छन्दोभिर्बद्धं साम्राज्यदायकम्।।१५५।।

अकारादिक्षकारान्तनाम्नामेतद् गुहस्य तु।
योऽसौ तात्पर्यतः पाठी सर्वज्ञस्सुखितो भवेत्।।१५६।।

इति-नामसहस्रं हि षण्मुखस्य च नारद।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा।
स सद्यो मुच्यते पापैर्मनोवाक्कायसम्भवैः।।१५७।।

सर्वरोगप्रशमनं सर्वसम्पत्करं शुभम्।
सर्वदारिद्र्यशमनं सर्वमङ्गलवर्द्धनम्।।१५८।।

सर्ववश्यकरं नृणां सर्वरक्षाकरं परम्।
सर्वसिद्धिप्रदं सद्यस्सर्वबन्धविमोचनम्।।१५९।।

आयुर्वृद्धिकरं पुंसां स्थैर्यवीर्यविवर्द्धनम्।
स्तवराजमिदं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्।।१६०।।

वाक्येनैकेन वक्ष्यामि वाञ्छितार्थान्प्रयच्छति।
इदं रहस्यं परमं स्तोत्रमेतन्मयोदितम्।
तस्मात्सर्वार्थसिद्ध्यर्थं नियमेन जपेत्सुधीः।।१६१।।

श्रीस्कान्दे महापुराणे ब्रह्मनारदसंवादे
सुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

❖❖

---

1. चतुष्पञ्चाशदधिकशतसंख्याकैः (154) श्लोकैरित्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

SKANDA-YĀGAḤ OR DHŪRTAKALPAḤ (ATHARVA_PARIṢIṢṬA XX.)

(Ritual Of A Ceremony In Honour Of Skanda)
(Editied By Goodwin, Jaos., XV. P.V. FF.)

(१)

१. अथाऽतौ धूर्तकल्पं व्याख्यास्यामः।

२. चतुर्षु चतुर्षु मासेषु फाल्गुणाऽऽषाढकार्तिकपूर्वपक्षेषु नित्यं कुर्वीत।।

३. श्वो भूते षष्ठ्यामुपवासं कृत्वा, प्रागुदीचीं दिशं निष्क्रम्य, शुचौ दिशे मनोहरे नो 'षरे मण्डलं त्रयोदशाऽरत्निं कृत्वा, मध्ये मण्डपस्य, सर्ववानस्पत्यां मालां कृत्वा, घण्टा-पताकास्रजः प्रतिसरं च मालापृष्ठे कृत्वा, मध्ये दर्पणांश्चोऽपकल्पयित्वा, तत्र यं वहन्ति हव्या श्वेत्वा इत्यावाहयेत्।।१।।

(२)

१. यं वहन्ति हयाः श्वेता नित्ययुक्ता मनोजवाः।
तमहं श्वेतसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

२. यं वहन्ति गजाः सिंहा व्याघ्राश्चाऽपि विषाणिनः।
तमहं सिंहसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

३. यं वहन्ति मयूराश्च चित्रपक्षा विहंगमा।
तमहं चित्रसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

४. यं वहन्ति सर्ववर्णाः सदायुक्ता मनोजवा।
तमहं सर्वसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

५. यस्याऽमोघा सदा शक्ति नित्यं घण्टापताकिनी।
तमहं शक्तिसंनाहं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. यश्च मातृगणै र्नित्यं सदा परिवृतो युवा।
तमहं मातृभिः सार्द्धं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

७. यश्च कन्यासहस्रेण सदा परिवृतो महान्।
तमहं मातृभिः सार्द्धं धूर्तमावाहयाम्यहम्।।

८. आयातु देवः सगणः ससैन्यः सवाहनः साऽनुचरः प्रतीतः।
षडाननोऽष्टादशलोचनश्च सुवर्णवर्णो लघुपूर्णमासः।

९. आयातु देवो मम कार्त्तिकेयो ब्रह्मण्यपित्रै सह मातृभिश्च।।
भ्रात्रा विशाखेन च विश्वह्वप इमं बलिं साऽनुचरः जुषस्व।।

१०. संविशस्वेऽति संवेशयेत्।।२।।

(३)

१. संविशस्व वरघण्टाऽप्सरःस्तवे यत्र सुभुजो हि निर्मितः।
संविष्टो मे धेहि दीर्घमायुः प्रजां पशूश्चैव विनायकेन।।

२. इमा आप इति गन्धोदकं पाद्यं दद्यात्।।
प्रतिगृह्णातु भगवान् देवो धूर्त इति।।

षट्चैव हिरण्यवर्णा इतीमे दिव्यो गन्धर्व इति
गन्धान् यस्ते गन्ध इति चेमाः सुमनस इति सुमनसः।।

प्रियं धातुरिति .....।

३. वनस्पतिरसो मेध्य इति धूपम्।। यद्येण ते दिवा
अग्निः शुक्रश्चेति दीपम्।। ये विश्वतः सुप्रतीक इति पर्णानि।।

४. प्रक्षाल्य हविष्युपसादये दध्योदनं क्षीरोदनं गुडोदनं मुद्गपायसमिश्र-धान्यमोदकानि सर्वगन्धान् सर्वरसानुदक- पूर्वं मूलपूर्णं पुष्पपूर्णं फलपूर्णं रसपूर्णं चापकल्पयित्वा।।

५. इन्द्रः सीतामिप्युल्लिख्याग्ने प्रेहीत्यग्निं प्रणीय, प्रज्वाल्य, प्राञ्चमिथ्यमुप-समाधाय भग ऐतमिथ्यामिति विसृमि, रेतमिथ्यं सुगार्हपत्य इत्युपसमाधाय, समिद्धो अग्निरिति समिद्धमनमन्त्रयते।।३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(४)

१. भद्रमिच्छन्तो हिरण्यगर्भो ममाग्ने वर्चस्त्वया मन्यो यस्ते मन्यो यद् देवा देव हेडनमिति षट्, कामसूक्ताऽ- "दयो दश, महीपतये स्वाहा"।।

२. धूर्ताय स्कन्दाय विशाखाय पिनाकसेनाय भ्रातृस्त्रीकामाय स्वच्छन्दाय वरघंटाय निर्मिलाय लोहितगात्राय शालकटंकटाय स्वाहेति हुत्वा, अग्नये प्रजापतये ये देवा दिव्येकादशस्थेत्यनुमतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति च।।४।।

(५)

१. शिवाग्निकृत्तिकानां तु स्तोष्यामि वरदं शुभम्।
स मे स्तुतो विश्वह्वपः सर्वानर्थान्प्रयच्छतु।।

२. धनधान्यकुलान् भोगान् स मे वचनवेदनम्।
दासीदासं तथा स्थानं मणिरत्नं सुराञ्जनम्।।

३. ये भक्त्या भजने धूर्तं ब्रह्मण्यं च यशस्विनम्।
सर्वे ते धनवन्तः स्युः प्रजावन्तो यशस्विनः।।

४. यथेन्द्रस्तु वरान्लब्ध्वा प्रीतस्तु भगवान् पुरा।
देहि मे विपुलान्भोगान् भक्तानां च विशेषत इति।।

५. कामसूक्तेनोपहारमुपहरेत्।।

६. उपहारमिमं देव मया भक्त्या निवेदितम्।
प्रतिगृह्य यथान्यायमकुद्धः सुमना भव।।५।।

(६)

१. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवे-भवेनाऽदिभवे भजस्व मां भवोऽद्भवेति भवाय नमः।।

२. देवं प्रपद्ये वरदं प्रपद्ये स्कन्दं प्रपद्ये च कुमारमुग्रम्।
षण्णां सुतः, कृत्तिकानां षडास्यमग्नेः पुत्रं साधनं गोपथोक्तैः।।

३. रक्तानि यस्य पुष्पाणि रक्तं यस्य विलेपनम्।
कुक्कुटा यस्य रक्ताक्षाः स मे स्कन्दः प्रसीदतु।।

४. आग्नेयं कृत्तिका पुत्रमैन्द्रं केचिदधीयते।
केचित्पाशुपतं रौद्रं योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु त इति।।

५. स्वामिने नमः शंकरायाग्निपुत्राय कृत्तिकापुत्राय नमः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. भगवान् क्वचिदप्रतिह्वपः स्वाहा भगवान् क्वचिद् अप्रतिह्वपः।।

७. मणिरत्नवरप्रतिह्वपः।। काञ्चनरत्नवरप्रतिह्वप इति।।

८. एते (ते) देव गन्धा एतानि पुष्पाण्येषु धूप, एतां मालां त्रिः प्रदक्षिणां कृत्वा, आदित्यकर्तितं सूतमिति प्रतिसरमाबध्नीयात्।।६।।

(७)

१. आदित्यकीर्तितं सूत्रमिन्द्रेण त्रिवृतीकृतम्।
अश्विभ्यां ग्रथितोग्रन्थैर्ब्रह्मणा प्रतिसरः कृतः।।

२. धान्यं यशस्यमायुष्यमशुभस्य च घातनम्।
बध्नामि प्रतिसरमिमं सर्वशत्रुनिबर्हणम्।।

३. रक्षोभ्यश्च पिशाचेभ्यो गन्धर्वेभ्यस्तथैव च।
मनुष्येभ्यो भयं नाऽस्ति यच्च स्याद् दुष्कृतं कृतम्।।

४. स्वकृतात्परकृताच्च दुष्कृतात् प्रतिमुच्यते।
सर्वस्मात्पातकान्मुक्तो भवेद् वीरस्तथैव च।।

५. अतिचाराच्च कृत्यातः स्त्रीकृतादशभं च यत्।
तावत् तस्य भयं नाऽस्ति यावत्सूत्रं धारयेत्।।

६. यावदापश्च गावश्च यावत्स्थास्यन्ति पर्वताः।
तावत्तस्य भयं नाऽस्ति यः सूत्रं धारयिष्यतीति।।

७. अन्वायं मुक्त्वा देवं विसर्जयेत्।।
प्रमदो नाम गन्धर्व प्रदोषो परिधावति।
मुञ्च शैलमयात् पापान् मुञ्च-मुञ्च प्रमुञ्च च।।

८. (यावद्) इमा आपः पवनेन पूता हिरण्यवर्णा अनवद्यह्वपाः।
तावदिमं धूर्तं प्रवाहयामि प्रवाहितो मे देहि वरान् यथोक्तान्।।

९. उदितेषु नक्षत्रेषु गृहान् प्रविष्टो गृहिणीं पश्येत्, धनवति धनं मे देहीति।। यद् भोक्तुं कामजातं जगत्यां मनसा समीहते तत्तद् द्विजन्मा पिनाकसेन यजमानात् काममुपभुक्तो, भुक्त्वाऽमृतत्वं तद्वदेवाऽभ्युपैति, तावदेवा भ्युपै (ती)ति।।७।।

इति स्कन्दयागः समाप्तः।।२०।।

प्रथमा विंशतिः समाप्ता।। एवं खाण्ड।।१२४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीसुब्रह्मण्यहृदयस्तोत्रप्रारम्भः

अस्य श्रीसुब्रह्मण्यहृदयस्तोत्रमहामन्त्रस्य- अगस्त्यो भगवान् ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीसुब्रह्मण्यो देवता। सौं बीजम्। स्वाहा शक्तिः। श्रीं कीलकम्। सुब्रह्मण्यप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।।

सुब्रह्मण्याय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। षण्मुखाय तर्जनीभ्यां स्वाहा। शक्तिधराय मध्यमाभ्यां वषट्। षट्कोणसंस्थिताय अनामिकाभ्यां हुम्। सर्वतोमुखाय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। तारकान्तकाय करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। सुब्रह्मण्याय हृदयाय नमः। षण्मुखाय शिरसे स्वाहा। शक्तिधराय शिखायै वषट्। षट्कोण-संस्थिताय कवचाय हुम्। सर्वतोमुखाय नेत्रत्रयाय वौषट्। तारकान्तकाय अस्त्राय फट्। भूर्भुवस्सुवरोमिति दिग्बन्धः।।

ध्यानम्-

षड्वक्त्रं शिखिवाहनं त्रिनयनं चित्राम्बरालङ्कृतं
वज्रं शक्तिमसिं त्रिशूलमभयं खेटं धनुश्चक्रकम्।
पाशं कुक्कुटमङ्कुशञ्च वरदं दोर्भिर्दधानं सदा
ध्यायेदीप्सितसिद्धिदं शिवसुतं श्रीद्वादशाक्षं गुहम्।।

लं पृथिव्यात्मने इत्यादिना पञ्चपूजा कार्या।।*

सत्यलोके सदानन्दे मुनिभिः परिवेष्टितम्।
पप्रच्छुर्मुनयस्सर्वे ब्रह्माणं जगतां गुरुम्।।१।।

भगवन् सर्वलोकेश सर्वज्ञ कमलासन।
सदानन्द ज्ञानमूर्ते सर्वभूतहिते रत।।२।।

बहुधा प्रोक्तमेतस्य गुहस्य चरितं महत्।
हृदयं श्रोतुमिच्छामस्तस्यैव क्रौञ्चभेदिनः।।३।।

---

*. द्रष्टव्यम्— पृ. 60 - तदनुसारं सर्वं विधेयम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मोवाच

श्रृण्वन्तु मुनयस्सर्वे गुह्याद्गुह्यतरं महत्।
सुब्रह्मण्यस्य हृदयं सर्वभूतहितोदयम्।।४४।।

सर्वार्थसिद्धिदं पुण्यं सर्वकार्यैकसाधनम्।
धर्मार्थकामदं गुह्यं धनधान्यप्रवर्धनम्।।५।।

रहस्यमेतद्देवानामदेयं यस्य कस्यचित्।
सर्वमित्रकरं गोप्यं तेजोबलसमन्वितम्।।६।।

प्रवक्ष्यामि हितार्थं वः परितुष्टेन चेतसा।
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये ध्यायेत्सर्वमनोहरम्।।७।।

सुवर्णमण्डपं दिव्यं रत्नतोरणराजितम्।
रत्नस्तम्भसहस्रैश्च शोभितं परमाद्भुतम्।।८।।

परमानन्दनिलयं भास्वत्सूर्यसमप्रभम्।
देवदानवगन्धर्वगरुडैर्यक्षकिन्नरैः।।९।।

सेवार्थमागतैस्सिद्धैस्साध्यैरध्युषितं सदा।
महायोगीन्द्रसंसेव्यमन्दारतरुमण्डितम्।।१०।।

मणिविद्रुमवेदीभिर्महतीभिरुदञ्चितम्।
तन्मध्येऽनन्तरत्नश्रीच्छटामण्डलशोभितम्।।११।।

रत्नसिंहासनं दिव्यं रविकोटिसमप्रभम्।
सर्वाश्चर्यमयं पुण्यं सर्वतस्सुपरिष्कृतम्।।१२।।

तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुद्यदर्कप्रभोदयम्।
निगमागमरोलम्बलम्बितञ्चिन्मयोदयम्।।१३।।

दिव्यं ज्योतिर्मयं दिव्यं देवताभिर्नमस्कृतम्।
देदीप्यमानं रुचिभिर्विशालं सुमनोहरम्।।१४।।

तन्मध्ये सर्वलोकेशं ध्यायेत्सर्वाङ्गसुन्दरम्।
अनन्तादित्यसङ्काशमाश्रिताभीष्टदायकम्।।१५।।

अचिन्त्यज्ञानविज्ञानतेजोबलसमन्वितम्।
सर्वायुधधरन्दिव्यं सर्वाश्चर्यमयं गुहम्।।१६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महार्हरत्नखचितषट्किरीटविराजितम्।
शशाङ्कार्धकलारम्यसमुद्यन्मौलिभूषणम्।।१७।।

मदनोज्ज्वलकोदण्डमङ्गलभ्रूविराजितम्।
विस्तीर्णारुणपद्मश्रीविलसद्द्वादशेक्षणम्।।१८।।

चारुश्रीवर्णसम्पूर्णमुखशोभाविभासुरम्।
मणिप्रभासमग्रं श्रीस्फुरन्मकरकुण्डलम्।।१९।।

लसद्दर्पणदर्पाढ्यगण्डस्थलविराजितम्।
दिव्यकाञ्चनपुष्पश्रीनासापुटविराजितम्।।२०।।

मन्दहासप्रभाजालमधुराधरशोभितम्।
सर्वलक्षणलक्ष्मीभृत्कम्बुकन्धरसुन्दरम्।।२१।।

महानर्घमहारत्नदिव्यहारविराजितम्।
समग्रनागकेयूरसन्नद्धभुजमण्डलम्।।२२।।

रत्नकङ्कणसंभास्वत्कराग्रश्रीमहोज्ज्वलम्।
महामणिकवाटाभ-वक्षःस्थलविराजितम्।।२३।।

अतिगाम्भीर्यसम्भाव्यनाभीनवसरोरुहम्।
रत्नश्रीखलिकाबद्धलसन्मध्यप्रदेशकम्।।२४।।

स्फुरत्कनकसंवीतपीताम्बरसमावृतम्।
शृङ्गाररससम्पूर्णरत्नस्तम्भोपमोरुकम्।।२५।।

स्वर्णकाहलरोचिष्णु जङ्घायुगलमङ्गलम्।
रत्नमञ्जीरसन्नद्धरमणीयपदाम्बुजम्।।२६।।

भक्ताभीष्टप्रदं देवं ब्रह्मविष्ण्वादिसंस्तुतम्।
कटाक्षैः करुणादक्षैस्तोषयन्तं जगत्पतिम्।।२७।।

चिदानन्दज्ञानमूर्तिं सर्वलोकप्रियङ्करम्।
शङ्करस्यात्मजं देवं ध्यायेच्छरवणोद्भवम्।।२८।।

अनन्तादित्यचन्द्राग्नितेजस्संपूर्णविग्रहम्।
सर्वलोकैकवरदं सर्वविद्यार्थतत्त्वगम्।।२९।।

सर्वेश्वरं सर्वविभुं सर्वभूतहिते रतम्।
एवं ध्यात्वा तु हृदयं षण्मुखस्य महात्मनः।।३०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वान् कामानवाप्नोति सम्यग्ज्ञानञ्च विन्दति।
शुचौ देशे समासीनश्शुद्धात्मा चरिताह्निकः।।३१।।

प्राङ्मुखो यतचित्तश्च जपेद्धृदयमुत्तमम्।
सकृदेव मनुं जप्त्वा संप्राप्नोत्यखिलं शुभम्।।३२।।

इदं सर्वाघहरणं मृत्युदारिद्र्यनाशनम्।
सर्वसंपत्करं पुण्यं सर्वरोगनिवारणम्।।३३।।

[1]सर्वकर्मकरन्दिव्यं सर्वाभीष्टप्रदायकम्।
प्रजाकरं राज्यकरं भाग्यदं बहुपुण्यदम्।।३४।।

गुह्याद्गुह्यतरं भूयो देवानामपि दुर्लभम्।
इदन्तु नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।।३५।।

न चाशुश्रूषत्रे देयन्न मदान्धाय कर्हिचित्।
सच्छिष्याय कुलीनाय स्कन्दभक्तिरताय च।।३६।।

सतामभिमतायेदन्दातव्यं धर्मवर्धनम्।
य इदं परमं पुण्यं नित्यं जपति मानवः।।
तस्य श्रीभगवान् स्कन्दः प्रसन्नो भवति ध्रुवम्।।३७।।

इति श्रीस्कान्दे ब्रह्मर्षीश्वरसंवादे सुब्रह्मण्यहृदयं संपूर्णम्।।

1. 'सर्वधर्मकरं' इति क्वचित्पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुब्रह्मण्य षोडशाक्षरी मन्त्रः

ओं अस्य श्रीसुब्रह्मण्यषोडशाक्षरीमहामन्त्रस्य— अमृताकर्षणदक्षिणामूर्तिः ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, प्रसन्नस्कन्दो देवता। सौं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, श्रीं कीलकम्। श्रीसुब्रह्मण्येश्वरप्रसादसिद्ध्यर्थे ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।।

शरवणभव परावराय ब्रह्ममयाय विद्यादेहाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। रवणभवशब्रह्मचर्याय तर्जनीभ्यां नमः। वणभवशरस्कन्दस्वामिकुमाराय मध्यमाभ्यां नमः। णभवशरवब्रह्मतेजोमयाय अनामिकाभ्यां नमः। भवशरवणद्वादशनेत्राय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। वशरवणभब्रह्मरुद्रतेजोमयाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।। शरवणभवपरावराय ब्रह्ममयाय विद्यादेहाय हृदयाय नमः। रवणभवशब्रह्मचर्याय शिरसे स्वाहा। वणभवशरस्कन्दस्वामिकुमाराय शिखायै वषट्। णभवशरवब्रह्म-तेजोमयाय कवचाय हुम्। भवशरवणद्वादशनेत्राय नेत्रत्रयाय वौषट्। वशरवणभब्रह्मरुद्रतेजोमयाय अस्त्राय फट्। ओं भूर्भुवस्सुवरोमिति दिग्बन्धः।।

ध्यानम्–

सिन्दूरारुणमिन्दुकान्तिवदनं केयूरहारादिभि-
र्दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं स्वर्गादिसौख्यप्रदम्।
अम्भोजाभयशक्तिकुक्कुटधरं [1] सर्वाङ्गतेजोमयं
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां [2] सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।

शक्तिहस्तं विह्वपाक्षं शिखिवाहं षडाननम्।
दारुणं रिपुरोगघ्नं भावयेत्कुक्कुटध्वजम्।।
लमित्यदिना पञ्चपूजा कार्या।।

(मूलमन्त्रः) ओं, सौं, श्रीं, ह्रीं, क्लीं, ऐं, नं, लं, शरवणभवाय नमः।। जपान्तेऽपि हृदयादिन्यासः पञ्चपूजे कार्ये।।

इति सुब्रह्मण्यषोडशाक्षरीमन्त्रः।।

❖❖

1. रक्ताङ्गरागोज्ज्वलमित्यपि पाठः।
2. भीतिप्रणाशोद्यतमित्यपि पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम : प्रो. शीतलाप्रसाद पाण्डेय

जन्म तिथि : 28 जनवरी 1962 ई.

पता : ग्राम व पोस्ट- कुरहुआ (द्वारा- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), वाराणसी - 221011

पिता : स्व. पं. श्री रामनाथ पाण्डेय

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा : 1 से 10 प्रायः ग्रामीण विद्यालय, प्रायः प्रथम श्रेणी।

उच्च शिक्षा : शास्त्री (ससम्मान) प्रथम श्रेणी आचार्य-धर्मागम (स्वर्णपदक प्राप्त)

पी.एच-डी.- धर्मागम, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005

उपलब्धियाँ : भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् नई दिल्ली, द्वारा पोस्ट डाक्टरल फेलोशिप प्राप्त। प्रयाग स्थित धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय द्वारा शास्त्ररक्षा सम्मान से सम्मानित, असम-बङ्गीय-ज्योतिष व तन्त्र-समिति तथा ऋषि बङ्किम कृष्टि-हेरिटेज परिषद्, नेहाटी पश्चिम बंगाल द्वारा विवेकानन्द-पुरस्कार प्राप्त तथा अखिल भारतीय-विद्वत्-परिषद् काशी द्वारा आगमविज्ञान क्षेत्र में विशेष कार्य हेतु माहेश्वर-पुरस्कार प्राप्त। प्रायः 50 शोध निबन्ध प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित। प्रायः 50 राष्ट्रीय एवं अन्ताराष्ट्रिय शोध संगोष्ठियों में भागीदारी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा विविध पुरस्कार से सम्मानित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी एवं महाकवि जयशंकर प्रसाद न्यास, नयी दिल्ली से डॉ. गोपीनाथ कविराज प्रतिभा सम्मान से पुरस्कृत, मेम्बर ऑफ एकेडमिक कौंसिल, बी.एच.यू.।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi